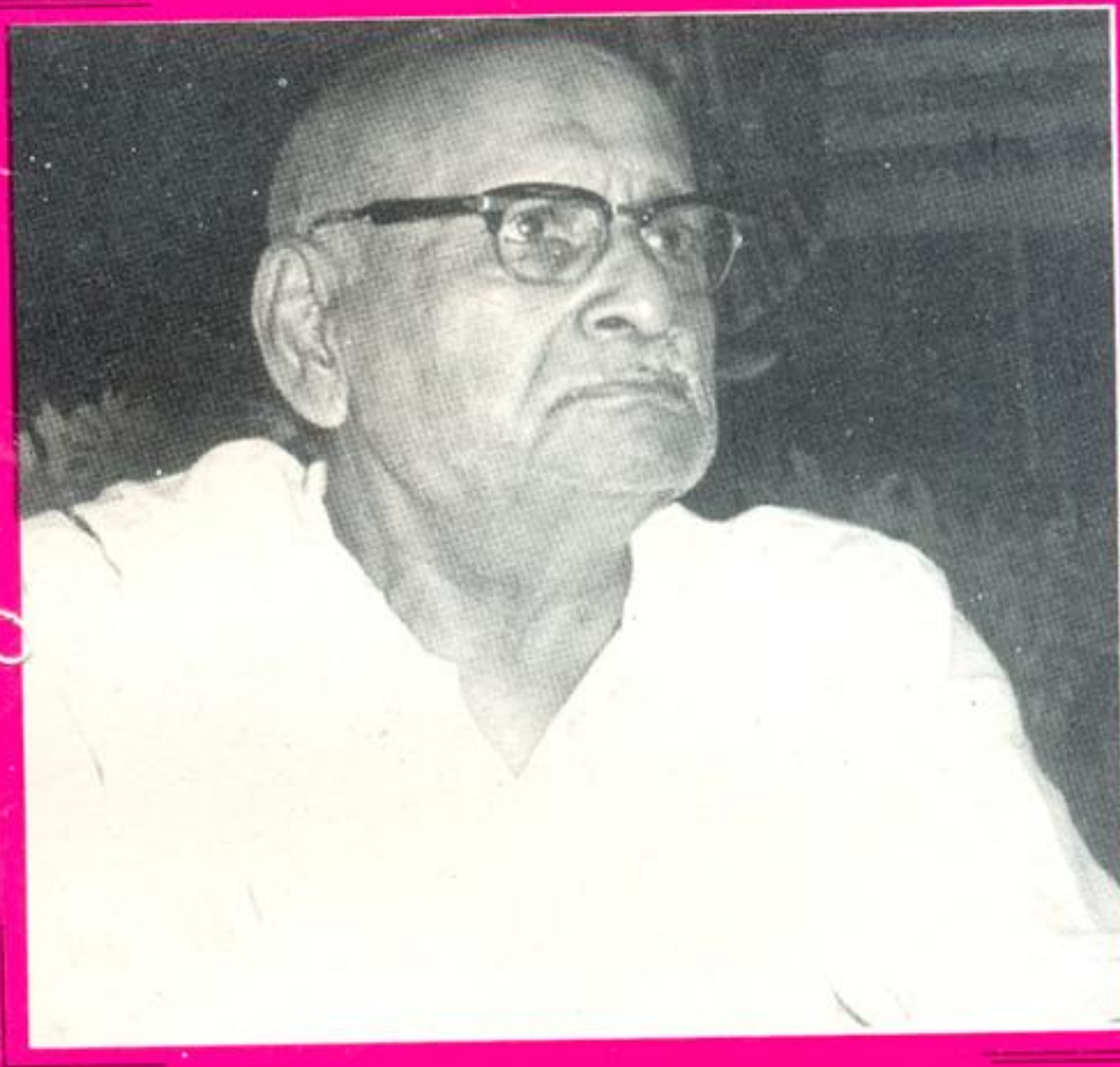

अन्तरंग—वार्तालाप

(रस-सिद्ध-संत भाईजी श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार का
विशिष्ट एवं स्नेही स्वजनोंके साथ वार्तालाप एवं दुर्लभ पत्र)

संकलन-संयोजन

श्यामसुन्दर दुजारी

'रस-सिद्ध संत श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी जीवन झाँकी'

भगवान्‌के 'विशेष कार्य' हेतु १७ सितम्बर १८९२ ई०, दिन शनिवारको आपका जन्म शिलांगमें हुआ। कुल देवता श्रीहनुमानजीकी कृपासे जन्म होनेके कारण आपका नाम 'हनुमानप्रसाद' पड़ा। युवावस्थामें देश-सेवा—समाजसेवाकी प्रवृत्ति प्रबल होनेके कारण स्वदेशी आन्दोलनमें शुद्ध खादी प्रयोगका व्रत ले लिया। आपके क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण शिमलापालमें २१ माह तक नजरबन्द किया गया। बंगालके क्रान्तिकारियों अरविन्द घोष आदिसे आपका निकट सम्पर्क हुआ। १९१८ में आप बम्बई आ गये। वहाँ लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, पं०मदनमोहन मालवीय, संगीताचार्य विष्णु दिगम्बरजीसे घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। सभीके द्वारा प्रेमपूर्वक आपको भाई सम्बोधन करनेके कारण आपका उपनाम 'भाईजी' पड़ गया।

भगवन्नामनिष्ठाके फलस्वरूप वनवेशधारी भगवान् सीतारामके दर्शन हुये तदनन्तर पारसी प्रेतसे साक्षात् वार्तालापके परवर्तीकालमें अनेक दिव्यलोकोंसे सम्पर्क स्थापित किये। सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिका 'कल्याण' के १९२६ ई०में प्रकाशन प्रारम्भ होनेपर उसके सम्पादनका गुरुतर दायित्व आपने सफलतापूर्वक निर्वाह किया और अपने भगीरथ प्रयत्नोंसे उसे शिखरपर पहुँचाया।

श्रीभाईजीमें अपने यश प्रचारका लेश भी नहीं था। इसी कारण उन्होंने 'रायबहादुर', 'सर' एवं 'भारतरत्न' जैसी राजकीय उपाधियोंके प्रस्तावको नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा उनकी अमूल्य हिन्दी-सेवाके सम्मानार्थ प्रदत्त 'साहित्य—वाचस्पति' की उपाधिका अपने नामके साथ कभी प्रयोग नहीं किया। हालाँकि भाईजीकी शिक्षा पारिवारिक, पारम्परिक ही रही लेकिन यह चमत्कार है कि कई भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार था। उनके द्वारा हिन्दी साहित्यको मौलिक शब्दोंका नया भण्डार मिला। उनकी गद्य-पद्यात्मक रचनायें अपने विषयकी पोलकी पत्थर हैं। पोद्दारजीके

प्रमुख काव्य 'पद-रत्नाकर' की कुल पंक्तियाँ १९६७० है जो गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस, विनय पत्रिका और गीतावलीकी कुल पंक्तियाँ क्रमशः १२५८२, ३२२२ और ३४०२ के योग १९२०५ से अधिक है। इसके अतिरिक्त उनके गद्य साहित्यका विपुल भण्डार है। इनकी ९० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिसमें 'राधा-माधव-चिन्तन' प्रमुख है। उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण'के ४४ विशेषांक अपने विषयके विश्वकोष हैं। हमारे आर्ष ग्रन्थोंको विपुल मात्रामें प्रकाशित करके विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचा दिये जिससे वे सुदीर्घ कालके लिये सुरक्षित हो गये। हिन्दी और सनातन धर्मकी उनकी सेवा युगोंतक लोगोंके लिये प्रेरणास्रोत रहेगी।

भगवद्दर्शनकी प्रबलोत्कण्ठा होनेपर १९२७ ई० में भगवान् विष्णुने दर्शन देकर उन्हें प्रवृत्तिमार्गमें रहते हुये भगवद्भक्ति तथा भगवन्नाम प्रचारका आदेश दिया। क्रमशः दिव्यलोकोंसे सम्पर्कके साथ ही अलक्षित रहकर विश्वभरके आध्यात्मिक गतिविधियोंके नियामक एवं संचालक दिव्य संत-मण्डलमें अन्तर्निवेश हो गया। कृपाशक्तिपर पूर्णतया निर्भर भक्तपर रीझकर भगवान्‌ने समय-समयपर उन्हें श्रीराम, शक्ति, शिव, गीतावक्ता श्रीकृष्ण, श्रीव्रजराजकुमार एवं श्रीराधाकृष्ण दिव्य युगलरूपमें दर्शन देकर तथा अपने स्वरूप तत्त्वका बोध कराकर कृतार्थ किया। १९३६ ई० में गीतावाटिकामें प्रेमभक्तिके आचार्य देवर्षि नारद और महर्षि अंगिरासे साक्षात्कार हुआ और उनसे प्रेमोपदेशकी प्राप्ति हुई। अपने ईष्ट आराध्य रसराज श्रीकृष्ण और महाभावरूपा श्रीराधा किशोरीकी भाव साधना, स्वरूप चिंतनसे उनकी एकाकार वृत्ति इष्टके साथ प्रगाढ़ होती गयी और वे रसराजके रस-सिन्धुमें निमग्न रहने लगे। भागवती स्थितिमें स्थित होनेसे उनके स्थूल कलेवरमें श्रीराधाकृष्ण युगल नित्य अवस्थित रहकर उनकी सम्पूर्ण चेष्टाओंका नियन्त्रण-संचालन करने लगे। सनकादि ऋषियोंसे उनके वार्तालाप अब छिपी बात नहीं है।

भगवत्प्रेरणासे भाईजीने अपने जीवनके बाह्यरूपको अत्यन्त साधारण रखते हुये इस स्थितिमें सबके बीच ७८ वर्ष रहे। कुछ श्रद्धालु प्रेमीजनोंको

छोड़कर उनके वास्तविक स्वरूपकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका। जो उनके निकट आये वे अपने भावानुसार इसकी अनुभूति करते रहे। किसीने उन्हें विद्वान् देखा, किसीने सेवा-परायण, किसीने आत्मीय स्नेहदाता, किसीने सुयोग्य सम्पादक, किसीने सच्चा सन्त, किसीने उच्चकोटिका व्रजप्रेमी और किसीको राधा हृदयकी झाँकी उनके अन्दर मिली। यद्यपि किसी संतकी वास्तविक स्थितिका अनुमान लगाना बड़ा कठिन है तथापि भाईजी निर्विवाद रूपसे उस कोटिके सन्त थे जिनके लिये नारदजीने कहा है—'**तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्**'—भगवान् और उनके भक्तोंमें भेदका अभाव होता है।

हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें कठिनता होगी कि बीसवीं सदीके आस्थाहीन युगमें जो कार्य कई संस्थायें मिलकर नहीं कर सकतीं वह कल्पनातीत कार्य एक भाईजीसे कैसे सम्भव हुआ। राधाष्टमी महोत्सवका प्रवर्तन और रसाद्वैत—राधाकृष्णके प्रति नयी दिशा एवं मौलिक चिन्तन इस युगको उनकी महान देन है। उनके द्वारा कितने लोग कल्याण पथपर अग्रसर हुये, वे परमधामके अधिकारी बने इसकी गणना सम्भव नहीं है। महाभाव—रसराजके लीलासिन्धुमें सर्वदालीन रहते हुये २२ मार्च १९७१ को इस धराधामसे अपनी लीलाका संवरण कर लिये।

'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्'

आलोक : विस्तृत जानकारीके लिये गीतावाटिका प्रकाशन, गोरखपुरसे प्रकाशित 'श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति' पुस्तक अवश्य पढ़ें।

ANTARANG VARTALAP

गीतावाटिका प्रकाशन
पो०—गीतावाटिका, गोरखपुर
फोन : २२८७७४२, २२८४५८२, २२८२१८२
e-mail : rasendu@vsnl.com

प्रथम संस्करण
श्रीगुरुपूर्णिमा वि०सं० २०६०
(१३ जुलाई सन् २००३)

मूल्य : ३० रुपये

नम्र निवेदन

देवर्षि नारदके सूत्र 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' के अनुसार भगवान् एवं उनके परम भक्तमें भेदका अभाव हो जाता है। ऐसी परिस्थितिमें संतके बारेमें कुछ लिखना भगवान्‌के संबंधमें लिखनेसे भी कठिन है क्योंकि सच्चे भक्त हमेशा अपनेको गुप्त रखनेका पूर्ण प्रयास करते हैं। फिर पूज्य श्रीभाईजीमें तो यह बात पराकाष्ठापर थी। वैसे तो उपर्युक्त सूत्रके अनुसार तत्त्वतः भक्तोंमें भेद रहता ही नहीं पर यह बात वैसी ही है जैसे श्रीकृष्ण, श्रीराम और मत्स्यावतार तथा कूर्मावतारमें कोई भेद नहीं। तत्त्व तो एक ही है और वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। इसलिये श्रीकृष्ण और मत्स्यरूपमें तत्त्वतः भेद न होनेपर भी उपासना अधिकांशमें श्रीकृष्ण, श्रीरामकी ही होती है। इसी तरह तत्त्वतः सभी भक्त एक होते हुए भी अन्तर उनकी सेवा-लीला भेदसे हो जाता है। श्रीभाईजीके अन्तरमें प्रकट प्रभुने जो आदर्श उपस्थित किया वह अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता। वे एक साथ ही शास्त्रों और धर्मका प्रचार करनेवाले 'श्रीवेदव्यास' भी थे, आचार-विचारको सुनियंत्रित करनेवाले मनुके समान स्मृतिकार भी थे। सरस काव्य रचनामें 'सूर-तुलसी' के समान थे और लीला-सिन्धुमें डूबे रहनेमें 'श्रीचैतन्य महाप्रभु' के समान थे। जिनके लिये पू० बाबाने मेरे पिताजी आदि अनुगतोंके सामने कहा कि "भाईजीका सूक्ष्म शरीर सर्वथा श्रीराधाजीका स्वरूप हो गया है।" साथमें पू० बाबाने कहा कि इस बातको सुनने-पढ़ने पर भी कोई ग्रहण उतना ही कर सकेगा जितना उसका अन्तःकरण भजनसे शुद्ध हो गया है।

इस पुस्तकमें वार्तालापके शब्द ज्यों-के-त्यों पूज्य भाईजीके नहीं कहे जा सकते क्योंकि लोगोंने वार्तालापके पश्चात् भावोंकी रक्षा करते हुए लिखा है। पत्र सभी श्रीभाईजीके हाथके लिखे होनेसे शब्द वही हैं। इस व्यक्तिगत सामग्रीको प्रकाशित करनेका उद्देश्य यही है कि वैसे भाव वाले लोग प्रेरणा ले सकें। मेरे एक परम मित्रके पास कुछ दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण सामग्री थी यह मैं जानता था। पर मैंने और कुछ अन्य लोगोंने जितने भी प्रयास उसके लिये किये, कोई सफल न हो सके। इस बार पता नहीं प्रभुकी इच्छा हुई या कोई अन्तर्जगत्‌की प्रेरणा कि वह सारी सामग्री एक बार लिखते ही उन्होंने उदारता पूर्वक मुझे दे दी और बिना उनका नाम दिये प्रकाशनकी अनुमति दे दी। यह मेरे लिये एक अत्यन्त सुखद आश्चर्य था। फिर प्रेरणा हुई कि इसके साथ पू० पिताजीके संग्रहमें भी जो ऐसी सामग्री है उसे भी प्रकाशित कर दिया जाय। इसीका मधुर फल आपके हाथमें समर्पित करके अपनेको धन्य अनुभव कर रहा हूँ। संकलनमें जो भी त्रुटियाँ रही हैं, वे सर्वथा मेरी हैं और उनके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। मेरे मित्र श्रीमनोहरलालजी चौधरी एवं श्रीबृजदेवजी दूबेके सहयोगके बिना यह कार्य इतना शीघ्र होना संभव नहीं था। क्योंकि ३ जून २००३ तक योजना तो दूर—इसकी कोई कल्पना भी नहीं थी। मैंने कुछ किया—ऐसा कहना तो सर्वथा अहंकारपूर्ण होगा। मुझे तो उन्होंने निमित्त बनाकर निहाल कर दिया-

'तुच्छ अबोध मलिन इस जनको बना निमित्त कर दिया धन्य।'

—श्यामसुन्दर दुजारी

विषय सूची

क्रम सं०	शीर्षक	पृष्ठ सं०
१-	पूज्य सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका	३
२-	पूज्य श्रीराधा बाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज)	९
३-	पूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज	१२
४-	संत श्रीराधाकृष्ण प्रेम-भिखारीजी (श्रीरोनाल्ड निक्सन)	१५
५-	महात्मा गाँधी	१६
६-	पं०मदनमोहनजी मालवीयजी	१७
७-	श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी	१९
८-	श्रीशुकदेवजी अग्रवाल	२३
९-	श्रीगंगाप्रसादजी अग्रवाल	२६
१०-	श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी	२७
११-	अन्तरंग साधकोंसे	३९
१२-	विभिन्न व्यक्तियोंसे :	
	श्रीरघुनाथदासजी	६१
	श्रीनंदबाबा	६२
	श्रीराहुल सांस्कृत्यायन	६३
	श्रीवचनेशजी त्रिपाठी	६३
	श्रीगोविन्ददासजी	६४
	श्रीगोविन्दवल्लभ पंत	६६
	एक सज्जन	६७
	श्रीभीमसेनजी चोपड़ा	६८
	श्रीहरि प्रसादजी पारीक	६९
	एक जिज्ञासु	७०
१३-	अन्तरंग १०८ पत्र	७४
१४-	अन्तरंग उद्गार	१८१

॥ श्रीहरिः ॥

अन्तरंग वार्तालाप

पूज्य सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका

(गीताप्रेस, गोरखपुरके संस्थापक संतप्रवर श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका जन्म वि०सं० १९४२ की ज्येष्ठ कृ० षष्ठीको चुरू (राजस्थान) में हुआ था। श्रीभाईजी इन्हें गुरूतुल्य मानते थे। बोलचालमें लोग इन्हें 'सेठजी' कहते थे। विशेष जानकारीके लिये 'श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति' पुस्तक देखें।)

(१६ सितम्बर सन् १९२७)

सेठजी—तुम्हें जो विष्णु भगवान्‌का ध्यान होता है, उसके विषयमें तुम्हारी क्या धारणा है? वह ध्यान है या उसे साक्षात्कार मानते हो?

भाईजी—बातचीत व स्पर्श होनेके सिवाय साक्षात् होने जैसा ही लगता है।

सेठजी—तुम साक्षात् समझते हो तो चरण-स्पर्श करनेकी कोशिश नहीं करते? यह तो तुम्हारी दृढ़ भावना ही हो सकती है।

भाईजी—मुझे भी दृढ़ भावना ही लगती है। जबतक मैं ध्यान करता हूँ तबतक मूर्ति दिखती है तथा चलते हुए भी दिखती है, बैठे हुए भी दिखती है और आसपासकी वस्तुएँ भी दिखती हैं।

सेठजी—इसे तो ध्यानकी प्रगाढ़ स्थिति समझनी चाहिये।

(२० सितम्बर, सन् १९२७)

भाईजी—इसबार जसीडीहमें सबके सामने इस प्रकारका अपूर्व प्रभाव दिखाया गया। जो कार्य एकान्तमें होता है, वह इतने लोगोंके समक्ष क्यों हुआ? इसका क्या हेतु है?

सेठजी—इससे जगत्‌को लाभ ही होगा। यह काम समझकर ही हुआ है, परन्तु ऐसी घटना जीवनकालमें प्रकाशमें न आवे तो अच्छा है।

भाईजी—इससे मेरे प्रश्नका पूरा उत्तर नहीं हुआ। मैं तो पूछता हूँ कि इतना प्रत्यक्ष प्रभाव सब लोगोंके सामने होनेमें क्या हेतु है?

सेठजी—मेरा शरीर शान्त हो जाय तो उसके बाद भी सत्संगका प्रभाव खूब फैले। जिसके द्वारा भगवद्भक्तिके प्रचारकी अधिक सम्भावना होती है, उसीको भगवान् इस प्रकार दर्शन देते हैं। दर्शन तो औरोंको भी देते हैं, परन्तु यों सबके सामने नहीं देते। जैसे श्रीरामचन्द्रजी महाराजने सीताकी खोजमें भेजते समय केवल श्रीहनुमानजीको ही अंगूठी दी, वे जानते थे कि इसीके द्वारा काम होनेवाला है। साधारण लोगोंने समझा कि हनुमानमें बल, योग्यता आदि गुण अधिक हैं; इसलिये भगवान्‌ने अँगूठी दी है। परन्तु यह समझकर नहीं दी, भगवान् जानते थे कि इसके द्वारा ही काम होगा; नहीं तो सुग्रीव, अंगद, जाम्बवन्त आदिको पाँच-सात अँगूठियाँ दे देते। इसी प्रकार परमात्मा जिसके द्वारा विशेष काम होनेवाला समझते हैं उसीको अपने हाव-भाव दिखाकर प्रभावित करते हैं।

(जुलाई, सन् १९३०)

भाईजी—सबको शीघ्र लाभ हो, वैसा साधन कैसे हो?

सेठजी—जिस समय श्रीभगवान्‌का स्मरण हो उसी समयसे श्रीभगवान्‌को निरंतर स्मरण करें, भूल जानेपर पुनः उन्हें न भूलनेकी चेष्टा नित्य निरंतर करनेसे बहुत लाभ है। इसी जन्ममें उद्धार होना तो साधारण बात है, विशेष रूपसे स्मरणकी चेष्टा करनेवालेको बहुत शीघ्र भगवद्दर्शन हो सकता है।

(जनवरी, सन् १९३४)

गोपालजी ब्रह्मचारी—आप कृपाकर ऐसी दृष्टि दीजिये जिससे हम श्रीभगवान्‌को पहचान सकें।

सेठजी—श्रीभगवान्‌ने हमें अभी तक ऐसी शक्ति प्रदान नहीं की है। यदि ऐसी शक्ति हमें दे भी दें तो लोग हमें बहुत तंग करने लगेंगे। जिससे मेरा झंझट बढ़ जायेगा और ऐसे झंझटसे मुझे डर लगता है। इसलिये श्रीभगवान् देखते हैं कि यह तो झंझटसे डरता है, तब इसे ऐसी शक्ति क्यों दें। हाँ, यदि आप सब लोग मिलकर श्रीभगवान्‌से मुझको ऐसी शक्ति प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करें तो फिर मैं कंजूसी नहीं करूँगा।

गोपालजी—(गोयन्दकाजीके चरणोंके समीप गिरकर रोते हुए)—आप हमें भुलावेमें मत डालिये। यद्यपि हम अपात्र हैं, अलायक हैं पर आप ही हमें योग्य बनाकर श्रीभगवान्‌के दर्शन कराइये।

भाईजी—(मुस्कुराते हुए)—स्वामीजी बड़े सरल हैं। जो काम इन्हें सौंपा जाता है उसे अपनी योग्यतानुसार कर देते हैं, इनकार नहीं करते और यह तो आपसे यही चाहते हैं कि आप हमें दर्शनोंके योग्य बनाकर भगवान्‌के दर्शन कराइये। इसलिये इनकी प्रार्थना उचित ही है।

सेठजी—बात तो ठीक है। दर्शनोंके लिये उपाय तो मैं बतला सकता हूँ, किन्तु दर्शन कराना तो मेरे वशकी बात नहीं है। आप लोगोंका मार्ग तो ठीक है परन्तु रास्ता चलनेकी गति शिथिल है। उसे तेज करना चाहिये। हमलोग यदि चाहें तो तीन वर्षोंमें मार्ग समाप्त कर सकते हैं। यह अवधि तो बहुत है यदि विशेष चेष्टा की जाय तो तीन महीनोंमें ही मार्ग समाप्त हो सकता है। बहुत तीव्र साधन किया जाय तो तीन दिनोंमें ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

भाईजी—शास्त्रोंमें तो ऐसा वर्णन है कि व्याकुलता वास्तविक होनेसे श्रीभगवान् उसी समय प्रकट होकर दर्शन दे सकते हैं। अतः तीन दिनोंकी भी प्रतीक्षा क्यों करनी चाहिये? साधकोंको तो एक-एक क्षण एक-एक युगके समान प्रतीत होना चाहिये।

सेठजी—यदि ऐसी अवस्था हो जाय तब तो उसके लिये तीन मिनटकी भी देर नहीं हो सकती जैसे अथाह जलमें डूबते हुए व्यक्तिको तीन मिनट भी असह्य होते हैं।

भाईजी—भगवान्‌की तो यह स्पष्ट प्रतिज्ञा है—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।

(गीता १२। ७)

सेठजी—परन्तु जो स्वयं जानबूझकर डूब रहे हैं उनकी भगवान् रक्षा नहीं करते। जो निकलना चाहते हैं उन्हें ही भगवान् निकालते हैं। श्रीगोपालजी महाराज जान बूझकर डूबनेवालोंमें तो नहीं हैं, परन्तु तेज चलनेवालोंमें भी नहीं है, इसलिये इन्हें व्याकुलता बढ़ानेकी चालको तेज करना चाहिये।

गोपालजी—व्याकुलता कैसे बढ़ सकती है? हम तो कुछ जानते नहीं। इसलिये मुझ पर तो आपको तथा श्रीभगवान्‌को ही दया करनी चाहिये।

सेठजी—प्रभुके प्रभावको एवं समयकी अमोलकताको जाननेकी जरूरत है। उदाहरणार्थ—जैसे कोई नदीमें तैर रहा है और ५ मिनटके भीतर ही भयंकर बाढ़ आनेवाली है तो उस तैरनेवालेको शीघ्र ही नदीके किनारे आकर नदीसे बाहर निकल जाना चाहिये। इसी प्रकार हम लोगोंको संसार-समुद्रसे पार जानेके लिये अपने जीवनके अमूल्य समयको केवल भगवत्प्राप्तिके कार्य— भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगमें ही व्यतीत करना चाहिये। भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेपर तो हम अपने जीवनका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देंगे और प्रभुके वियोगको एक क्षणभर भी सहन नहीं कर सकेंगे।

गोपालजी—कैसे व्याकुल होंगे?

सेठजी—जैसे जलके बिना मछली व्याकुल हो जाती है। मछली जलके प्रभावको जानती है, इसलिये जालमें पकड़े जानेपर भी उसमेंसे निकलकर जलमें कूद पड़ती है। सो, जल तो जड़ है इसलिये केवल मछलीको ही कूदना पड़ता है। किन्तु हमारे प्रभु तो चैतन्य हैं इसलिये यदि हम मछलीकी भाँति व्याकुल हो जायं तो फिर हमारे लिये विलम्ब होनेकी स्थिति नहीं है। प्रभु तो अमृतमय हैं। उस अमृतके लिये हमें वैसे ही व्याकुल होना चाहिये जैसे—गोपिकायें, रुक्मिणी, द्रौपदी, गजराज। बहुत छोटा मातृ-परायण शिशु एवं छोटा बछड़ा जैसे अपनी माताके लिये व्याकुल होता है और उसकी पुकार सुनते ही माता तथा गौ तुरन्त उनके समीप आ जाती हैं वैसी ही हमारी सच्ची व्याकुलताकी पुकार होनेसे हमें प्रभुका यही उत्तर मिलेगा कि मैं आ रहा हूँ अधीर मत होओ।

किंतु अभीतक हमलोग ऐसे दयालु प्रभुका प्रभाव ही नहीं जानते। यदि उनका प्रभाव यत्किंचित भी समझमें आ जाय तो उनके बिना रहा ही नहीं जायेगा।

जैसे कंगलेको कोई पारस बता दे, प्यासेको कोई नदी बता दे। तब क्या वे उसके लिये दौड़े बिना रह सकते हैं, इससे भी बढ़कर पानीको जमीन खोदकर वहीं पर कोई निकाल दे तो क्या प्यासा मनुष्य पानी बिना पीये रह सकता है तथा पारससे लोहा स्पर्श कराकर स्वर्ण बना दे तो क्या वह उसे लिये बिना रह सकता है? इसी प्रकार जो मर्मी सज्जन हैं वे सबकुछ जानते

हैं। महापुरुष परमात्माकी प्राप्तिके मार्गको जानते हैं। जिसको प्रभु प्राप्तिकी उत्कट इच्छा होती है उनके पास प्रभु उन महापुरुषोंको भेज देते हैं। कमी केवल श्रद्धाकी है। भगवान् तो इसी स्थान पर उपस्थित हैं, केवल विश्वास करनेकी जरूरत है। जैसे बालूको कोई स्वर्ण बतला दे और उसमें विश्वास हो जाय तो फिर लोग दुःख क्यों पावें।

गोपालजी—बालूमेंसे सुवर्ण कैसे निकाला जाय?

भाईजी—श्रद्धा होनेके पश्चात् बालू दीखती ही नहीं उसे तो सुवर्ण दीखता है।

साधक—भगवद्दर्शनके लिये सरल साधन बताइये?

भाईजी—पहली बात सबमें भगवान्‌को देखना, दूसरी बात जीभसे नाम-जप करना, तीसरी बात एक-आधा घंटा, कुछ समय एकान्तमें बैठकर भगवान्‌की भावना, कल्पना करे—ऐसा करनेसे कुछ दिन बाद आपको बड़ा लाभ होगा। यह मैं आपको पूरा विश्वास दिलाता हूँ; करके देखिये क्योंकि भगवान् तो हैं ही। सत्यमें सत्यका आरोप करनेसे भगवान् हमें क्यों नहीं दीखेंगे। करके देखिये अवश्य दीखेंगे।

साधक—सत्संग कैसे मिले?

भाईजी—चाहसे। यदि कोई सत्संग चाहे तो भगवान् उसे सत्संग भेज देते हैं। श्रद्धा श्रद्धालु पुरुषोंके संगसे होती है।

सेठजी—यह बात कहते तो हैं पर ऐसी कोई क्रिया समझमें नहीं आयी जिससे श्रद्धा हो।

भाईजी—धीरे धीरे होगी। अपनी जानमें संतोंका संग और नाम-जप करता रहे।

सेठजी—संतोंकी पहचान कैसे हो?

भाईजी—सिद्धान्तकी बात है कि संतोंका मिलना दुर्लभ है, अगम्य है, अमोघ है। अमोघ शब्द ऐसा है कि संतको पहिचाने या न पहिचाने वह व्यर्थ नहीं जाता। संतको कोई पहिचाने या न पहिचाने संत अपने मिलनका जो फल होता है वह अपनी कृपा शक्तिसे अवश्य दे देते हैं। भगवान् और संत दो बातोंमें असमर्थ हैं—(१) वह किसीका बुरा नहीं कर सकते

(२) किसीका भला किये बिना रह नहीं सकते। सन्तका होना ही जगत्का बड़ा कल्याण करनेवाला है। संतको न भी मानें, न भी जानें परन्तु संतका मनसे, वाणीसे, शरीरसे, किसी भी प्रकार संग हो गया तो वह सर्वथा अमोघ है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। नारदजीने नल-कूबरको श्राप देकर भी उनका उद्धार ही किया। संत और भगवान् कभी क्रोध करते ही नहीं।

सेठजी—संसारमें संत हैं और भगवान् हैं यह तो मानना ही चाहिये पर इस बातमें श्रद्धा कैसे हो?

भाईजी—इसके लिये भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। वैसे तो बिना श्रद्धाके संग होना भी कठिन है, पर जो आदमी बिना श्रद्धाके भी सत्संग करता है उसके भी अनन्त लाभ हैं।

भाईजी—(किसी भाईके प्रश्नके उत्तरमें) शक्ति और शक्तिमान् एक ही है—राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण। किसीका नाम जपें, किसीका ध्यान करें, एकका करें, दोका करें—सब एक ही बात है।

सेठजी—श्रद्धाकी बातें कही जाती है, सुनी जाती है पर जैसी होनी चाहिये वैसी होती नहीं।

भाईजी—शक्तिके अनुसार चेष्टा नहीं होती, पर कुछ तो करते ही हैं। भगवान् कहते हैं—"*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*"। जीवकी ताकत इतनी ही है, पर भगवान् तो सर्वसमर्थ, सामर्थ्यवान् हैं। जीवने इच्छा की कि भगवान् मुझे मिले—जीवकी इच्छा और भगवान्की इच्छामें बड़ा अन्तर है—जब भगवान्की इच्छा हुई फिर मिलनेमें देर नहीं। एक तरफ है गरूड़, दूसरी तरफ है चींटी। गरूड़ अपनी चालसे चलेगा, चींटी अपनी चालसे। इसी प्रकार भगवान् अपनी हैसियतसे चलेंगे, जीव अपनी हैसियतसे। भगवान् जीवको बदला देंगे तो अपनी हैसियतसे। कोई भी जीव भगवान्का मूल्य दे ही नहीं सकता।

रामसुखदासजी महाराज—कुछ तो इच्छा लेकर सब ही यहाँ आये हैं। इसलिये सबको भगवान् मिलने चाहिये।

भाईजी—भगवान् नहीं मिलेंगे इसका क्या प्रमाण?

सेठजी—भगवान्में प्रेम करना चाहिये यह तो सभी लोग चाहते हैं फिर क्यों नहीं प्रेम होता?

भाईजी—इसकी परीक्षा होती है। कहना तो नहीं चाहिये मैं तो हूँ बालक मेरे सामने यह बात आयी कि मेरे घरमें आग लग गयी है तब मैं माला छोड़कर भाग जाऊँ तो सच्ची इच्छा नहीं।

सेठजी—इच्छा तो सच्ची ही है पर है थोड़ी।

श्रीरामसुखदासजी महाराज—भाईजीका ऐसा कहना है कि जिसने संतको बिना जाने भी संतका दर्शन कर लिया तो उनका कल्याण हो जाता है, हो गया।

(जुलाई, सन् १९४०)

सेठजी—दो-तीन वर्षोंसे अपनी बात नहीं हुई इसीलिये यह बताओ कि आजकल तुम्हारे और श्रीभगवान्‌के बीच क्या-क्या बातें होती हैं?

भाईजी—कुछ वर्ष पहले सं० १९९० में बनारसमें कई लोगोंके सामने कुछ बातें प्रकाशमें आ गयी जिससे डेढ़ वर्ष तक तो मेरा मार्ग रुका रहा। फिर '*ॐ क्लीं श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः*' मंत्रका अनुष्ठान करनेके बाद श्रीकृष्ण भगवान्‌की, युगल सरकारकी अनेक नयी-नयी मधुर लीलाओंके दर्शन होते हैं और वे परस्पर बातें भी करते हैं। वहाँ मेरा बोलनेका अधिकार नहीं है। वे जो कुछ मुझे कहना चाहते हैं सूत्र रूपमें संक्षेपमें कह देते हैं। प्रकट करनेसे मेरी हानि है।

सेठजी—तुम्हारी सलाह हो तो मैं ऋषीकेश-स्वर्गाश्रममें ही रहूँ। और प्रेस तथा कल्याणका सारा कार्य बिना संकोच तुम्हारी इच्छानुसार जैसे तुम ठीक समझो वैसे ही कर सकते हो।

भाईजी—मेरी तो काम करनेकी इच्छा नहीं है। मुझे तो एकान्तमें रह कर भजन करनेसे अधिक लाभ प्रतीत होता है।

पू० श्रीराधा-बाबा(स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज)

(पूज्य बाबा सन् १९३९ से क्षेत्र-संन्यास व्रत लेकर पूज्य भाईजीके साथ ही रहे। विस्तृत परिचयके लिये 'श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति' पुस्तक पढ़ें)

(जनवरी, सन् १९३८)

भाईजी—दुजारीजी मेरे जीवनकी बातोंको नोट करते हैं। इनको

तत्परता देखकर मनमें आदरका भाव आता है पर मैं इसमें जरा भी सहयोग करूँ तो मुझे लज्जा आती है। मुझे मनसे इस काममें बड़ी घृणा है। इसलिये मेरी स्थितिमें आकर आप सलाह दीजिये कि मुझे क्या करना चाहिये?

बाबा—हाँ, ये मेरेसे भी बार-बार कहा करते हैं कि आप भी भाईजीसे मुझे कुछ सहयोग देनेके लिये कहिये।

भाईजी—स्वामीजी! इनके अत्यधिक आग्रहको देखकर कभी-कभी मैं अपने जीवनकी कुछ बातें बता देता हूँ। पर यह मेरे मनके तनिक भी अनुकूल नहीं है। वर्तमानमें मुझे नयी-नयी अन्तरंग लीलाओंके दर्शन होते रहते हैं, उन्हें मैं सर्वथा प्रकट नहीं कर सकता।

दुजारीजी—आपने कहा था कि सेठजीकी जीवनी लिखनेमें आप सहायता कर सकते हैं।

भाईजी—हाँ, उनकी जीवनीके नोट संग्रह करके मुझे दे दिये जाँय तो मैं लिखनेमें सहायता कर सकता हूँ—यदि उनका विरोध न हो तो।

दुजारीजी—भाईजी! जब आप लोग नहीं रहेंगे तब लोग आप दोनोंके जीवनकी घटनाओंको सुननेके लिये लालायित रहेंगे।

भाईजी—तुम्हारी इच्छा हो तो तुम कर सकते हो। अन्यथा श्रीचैतन्य महाप्रभुका जीवन ही पर्याप्त है।

बाबा—भाईजी! चैतन्य महाप्रभु भी स्वरूप दामोदर एवं रघुनाथदासको बहुत-सी बातें बताया करते थे। तब ही तो वे अपनी डायरी(कड़चों)में इतनी बातें लिख सके। जिनसे कविराज कृष्णदासने चैतन्य-चरितामृत तैयार कर दिया—जिससे आज संसारका कितना उपकार हो रहा है। मैंने दुजारीजीसे कहा था कि तुम्हारा कार्य भी श्रीराधाकृष्णकी इच्छासे ही हो रहा है। तुमको ही श्रीराधाकृष्णने इस कार्यमें निमित्त बनाया है। इसलिये तुम्हें खूब उत्साहसे यह कार्य करना चाहिये। भाईजीके सहयोग न देनेपर भी यह कार्य बहुत अच्छा हो सकता है।

भाईजी—यह बात ठीक हो सकती है

दुजारीजी—कभी-कभी तो मनमें आती है कि मैं इतना परिश्रम करता हूँ, पर मेरे मरनेके बाद इसे कौन पढ़ेगा?

बाबा—मैं ऐसी बात नहीं समझता। हो सकता है कभी प्रेसवाले

ही इनकी खुशामद करें। भाईजी! आपके प्रति इनका बड़ा अच्छा भाव है। आप तो एकान्तमें जीवन बिताना चाहते हैं और ये आपकी परवाह न करके लोगोंको आपके पास रखनेके लिये प्रयत्न करते हैं।

भाईजी—इन्होंने बहुतोंको इस नये काममें लगाया है—गोस्वामीजी, रामसुखदासजी महाराज, च्यवनरामजी, बद्रीप्रसादजी आचार्य, शिवकिशनजी डागा, नन्दलालजी जोशी आदि। इनकी नीयत अच्छी है।

(सन् १९४१)

एक दिन बाबा प्रवचन देने जा रहे थे तब उचित अवसर देखकर श्रीभाईजीने बाबासे कहा—आप तो आये थे किसी और कामके लिये, पर आप लग गये धर्म-प्रचार और लोक-सुधारके कार्यमें।

बाबा—मैं आपके कथनका आशय नहीं समझ पाया। आप क्या कहना चाहते हैं?

भाईजी—मैं क्या बताऊँ कि मैं आपको किस रूपमें देखना चाहता हूँ। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि आपका जीवन श्रीकृष्णानुरागिणी व्रजाङ्गनाओंके दिव्य प्रेमका साक्षात् स्वरूप बन जाय। श्रीमद्भागवतका एक श्लोक है—

या दोहनेऽवहने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥
(१०। ४४। १५)

मैं तो चाहता हूँ कि इस श्लोकका सत्य आपके जीवनमें चरितार्थ हो उठे। आपको धर्मोपदेशक बनना है या प्रेम-सिन्धुमें निमज्जन करना है? श्रीकृष्णप्रेमसे परिपूर्ण उस दिव्य जीवनका महत्त्व कुछ अद्भुत ही है। प्रवचन देनेसे बहुतोंको लाभ होगा और आपकी प्रतिष्ठा भी बहुत होगी, परन्तु इस प्रकारकी बहिर्मुखतासे उस दिव्य जीवनकी प्राप्तिमें बहुत अधिक विलम्ब हो जायेगा।

बाबा—आप कहें तो मैं अभी मौन हो जाऊँ?

भाईजी—आज तो आप प्रवचन दे आयें। लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके बाद आप इस प्रवृत्तिसे निवृत्त हो जायँ।

(श्रीभाईजीका इतना संकेत पर्याप्त था। उस दिन बाबाका अन्तिम प्रवचन था)

(एक बार पू०बाबाको भगवान् श्रीकृष्णने बताया कि श्रीपोद्दारजीने जो व्याधि अजमेरमें भोगी, वह तुम्हारा कर्म-फल था। कुछ समय बाद बाबा, भाईजीके पास गये।)

भाईजी—आज इस समय आप कैसे आये?

बाबा—आपसे कुछ बात करनी थी।

भाईजी—बोलिये।

बाबा—वह जो बवासीरकी व्याधि आपने भोगी, वह किसका कर्म-फल था?

भाईजी—यह सब व्यर्थ बातें करनेसे क्या लाभ?

बाबा—मैं व्यर्थ बात नहीं कर रहा हूँ। मुझे उस सर्वोपरि शक्तिसे पता लगा है जिसे कोई अस्वीकार कर ही नहीं सकता।

भाईजी—मैं और आप दो थोड़े ही हैं। अभी आप जाइये, मुझे जरूरी काम करने दीजिये। मुस्कुराहट .....

(२ जुलाई, सन् १९८०)

(पूज्य बाबा बड़ी प्रसन्न मुद्रामें थे एवं बड़े स्नेहसे मुझे पूज्य भाईजीकी पुरानी बातें बता रहे थे। अपने पर भाईजीके विचित्र स्नेहकी बात करते हुए एक वार्तालाप सुनाया।)

बाबा—जबतक आपके पाञ्चभौतिक शरीरमें प्राण है ..... । मैं बात पूरी बोल भी नहीं पाया कि बीचमें वे हँसते हुए बोले—

भाईजी—बाबा! और लोग जो भी मानें आप इस शरीरको पाञ्चभौतिक क्यों मानते हैं।

बाबा—उनके मुँहसे ये शब्द सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

पूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज

(सन् १९३४)

स्वामीजी—अपने किसी प्रेमास्पदमें भगवद्भाव न होनेपर भी यदि प्रेमास्पद ज्ञानी या भक्त हो तो भगवान्‌से भी बढ़कर उसमें प्रेम किया जा सकता है क्या? साधककी उस भक्तमें पूरी श्रद्धा न हो तो भी उसमें प्रेम करनेसे उसका चिन्तन करनेसे बड़ा लाभ है, सो क्या बात है?

भाईजी—स्वामीजी महाराज! किसी भक्तमें प्रतिमाकी भाँति भगवद्भावसे श्रद्धा हो या प्रेम हो तो वह बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु ऐसा भाव भी टिकना बहुत कठिन है क्योंकि मूर्ति तो धातु या पाषाणकी होती है—उसमें दोषोंकी कल्पना भी नहीं होती है किन्तु शरीरधारी व्यक्तिमें गुण-दोष दीखना स्वाभाविक है। इसलिये साधकका शरीरधारी व्यक्तिमें भगवद्भाव टिकना कठिन है। हाँ, उस व्यक्तिको भगवान्‌से भी बढ़कर, समझकर, उसके द्वारा भगवत्प्रेम मार्गमें लाभ हो रहा है और होगा; ऐसे भावसे उसमें प्रेम किया जाय, उसका स्मरण-चिन्तन-ध्यान किया जाय तो बहुत लाभदायक है। किन्तु भगवद्प्रेमका उद्देश्य न रखकर किसी भी व्यक्तिमें केवल उसके शरीरसे ही प्रेम किया जाय तो उसमें गिरनेका डर है। भगवान्‌के स्मरण, चिन्तनका मार्ग जैसा निरापद है वैसा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। क्योंकि उस मार्गमें श्रद्धा न्यून होनेकी गुंजाइश नहीं है। इसलिये भक्तको तो सहायक मानकर भजन, ध्यान, चिन्तन श्रीभगवान्‌का ही करना सबसे श्रेष्ठ और निरापद है।

स्वामीजी—यदि कोई कहे कि भगवान्‌का स्मरण तो मेरेसे नहीं होता और भक्तका होता है तो उसके लिये क्या मार्ग है?

भाईजी—उसके लिये यह मार्ग है कि भक्त और भगवान् दोनोंका स्मरण करे। फिर यदि वह भक्त पूर्ण न होगा तो उसकी पूर्ति भगवान् स्वयं कर देंगे क्योंकि उसका उद्देश्य तो भगवत्प्रेम प्राप्ति करनेसे है और भगवान्‌का स्मरण करनेवालेकी त्रुटियाँ भगवान् स्वयं दूर कर देते हैं। सारांश यह है कि श्रीभगवान्‌का स्थान किसी दूसरे व्यक्तिको नहीं देना चाहिये। भगवान् भगवान् ही हैं और भक्त भक्त ही है।

स्वामीजी—आज प्रातःकालके सत्संगमें आपने ऐसे कहा था कि जिनको भगवान्‌के भक्त मिल गये हैं और उनको संतोष नहीं होता है तो कभी उनको भगवान् मिल जायँ तब उनको संतोष हो जायगा यह बात कैसे समझमें आवे क्योंकि जब वास्तवमें भक्त मिल गये हैं तो एक प्रकारसे भगवान् ही मिल गये हैं। भक्त और भगवान्‌में अन्तर ही क्या है?

भाईजी—(दुजारीजीकी ओर संकेत करते हुए) तुम लोगोंको भ्रम हो रहा है। वास्तवमें अभीतक तुम्हें भक्त ही नहीं मिले, यदि भक्त मिल जाते तो (भक्त मिल जानेका विश्वास हो जाता) क्या तुम लोगोंकी स्थिति परिवर्तित नहीं हो जाती।

स्वामीजी—यदि कोई व्यक्ति अपने व्यापारको, घर-परिवारको छोड़कर किसीके भरोसेपर उसके समीप आकर हर समय रहता है और भरसक उसके कहे अनुसार करनेकी चेष्टा भी करता है फिर भी उसको पूरा लाभ नहीं होता तो क्या भक्तका यह कर्तव्य नहीं होता कि वह उसको लाभ करा दे?

भाईजी—यद्यपि साधक तो बेचारा सब त्रुटि अपनी ही मान लेता है कि मेरेमें श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, वैराग्य, अभ्यास कुछ नहीं है और राग-द्वेष, अहंकार, काम-क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि सब दोष भरे हैं और ऐसा ठीक भी हो तो भी जबकि साधक भक्तके कहे अनुसार चेष्टा करनेकी इच्छा तो रखता है अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धा-विश्वास, प्रेम, आदि करके दुर्गुण छोड़नेकी चेष्टा भी करते हैं फिर भी उसको पूरा लाभ नहीं होता। इसलिये ऐसा ही समझना चाहिये कि अभीतक तो वास्तवमें भक्त ही नहीं मिले और यदि भक्त मिल जाते तथा उनमें पूरा विश्वास हो जाता तो अपना काम कभीका बन जाता। क्योंकि भक्तमें भी कुछ शक्ति होती है। अस्तु। इन लोगोंको जँचे जितनी इस प्रकारकी बातें कह दे। ये लोग एक बात भी नहीं सुनते और अपने मनमाना अर्थ लगा लेते हैं तब क्या किया जाय।

दुजारीजी—भाईजी! हमलोग ऐसी बात सुनना चाहते हैं तब ही बार-बार ऐसी बातें हमें सुनायी जाती हैं।

भाईजी—देख लीजिये, स्वामीजी! जो बात मैंने कही थी वही बात है न। इन लोगोंका भ्रम कैसे दूर हो?

स्वामीजी—यह तो आपके पल्ले बँध गये हैं। आपके जँचे सो ही आप इन्हें कहें। किन्तु ये अपने विचार परिवर्तन थोड़े ही करेंगे।

भाईजी—आप भी इन्हींके पक्षकी बात कहते हैं। आपके मगजमें भी यही बात बैठी हुई है। परन्तु सिद्धान्तकी बात यही है—

भगवान्‌में परम श्रद्धा, गुरुमें श्रद्धा और साधनमें तत्परता रखने वालेको कोई डर नहीं है एवं जिस व्यक्तिके पास रहनेसे दैवी सम्पत्ति बढ़ती है और वह स्वयं दैवी सम्पत्तिवाला हो तो उसके समीप रहनेसे उसका सत्संग करनेसे लाभ ही है। जहाँ रहनेसे दैवी सम्पत्ति बढ़े वहीं रहना चाहिये, क्योंकि दैवी सम्पत्ति ही धन है।

भाईजी—(एक भाईकी जिज्ञासा शान्त करते हुए) यदि गोसन्दकाजीको महात्मा मानते हो तो उनके दर्शन करनेवालोंका कल्याण अवश्य होना चाहिये।

स्वामीजी—इसी जन्ममें कल्याण होगा या अन्य जन्म भी लेना पड़ेगा?

भाईजी—इसका कोई नियम नहीं है।

स्वामीजी—भाईजी! महात्माके प्रभावकी बातें कहिये?

भाईजी—प्रभाव तो मैं जानता नहीं।

स्वामीजी—आप जैसा जानते हों वैसा ही कहिये?

भाईजी—महात्माके दर्शन, स्पर्श, भाषण आदिसे चेतन प्राणी पवित्र हो जायँ इसमें तो आश्चर्य ही क्या है? उनकी जिस जड़ वस्तुपर दृष्टि चली जाय उस जड़ वस्तुके सम्पर्कको पाकर भी मनुष्य पवित्र हो जाता है। जिस वृक्षका फल महात्माने स्वीकार कर लिया, उस वृक्षका फल खानेवाला, उस वृक्षसे स्पर्शकी हुई वायुके स्पर्शसे आसपासवाले वृक्ष एवं मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। महात्माने जिस लालटेनको देख लिया उसको देखनेवाला पवित्र हो जाता है।

श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारीजी (श्रीरोनाल्ड निक्सन)

(श्रीरोनाल्ड निक्सन ब्रिटिश सरकारकी ओरसे प्रथम महायुद्धमें वायुसेनामें लड़े थे। वहीं इन्हें वैराग्य हो गया और भारतमें आकर परम वैष्णव बनकर कंठी, माला, तिलक, चोटी धारण करके श्रीराधाकृष्णकी उपासनामें लग गये।)

(मार्च १९३०)

भाईजी—श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होनेमें आपका विश्वास कैसा है?

राधाकृष्णप्रेम भिखारीजी—मेरा पूर्ण विश्वास है।

भाईजी—क्या आपको कभी दर्शन हुये हैं?

श्रीराधाकृष्णप्रेम भिखारीजी—(भोजन करते हुये रुककर स्तब्धसे हो गये पर कुछ बोले नहीं।)

भाईजी—यदि आपको कहनेमें संकोच हो तो न कहें।

श्रीराधाकृष्णप्रेम भिखारीजी—मैं इस विषयमें अधिक कुछ न

कहकर इतना ही कहता हूँ कि कुछ भगवत्प्रेम मुझे मिला है क्योंकि न तो मैं यह कह सकता हूँ कि मुझे दर्शन नहीं हुए हैं और स्पष्ट ऐसा भी कहना नहीं बनता कि दर्शन हुए हैं।

भाईजी—अधिक कहनेकी आवश्यकता भी नहीं है। हाँ, आप साधनके सम्बन्धमें क्या कहते हैं?

श्रीराधाकृष्णप्रेम भिखारीजी—केवल शरणागति।

भाईजी—शरणागति कैसे प्राप्त होती है?

श्रीराधाकृष्णप्रेम भिखारीजी—सत्संग और भगवन्नाम जपसे।

महात्मा गाँधी

(एकबार गाँधीजी बम्बई पधारे हुये थे। जुहूमें ठहरे हुये थे, कुछ बीमार थे। भाईजी उनसे मिलने गये। रास्तेमें 'नवजीवन' की प्रति मिली जिसमें छपा था—गाँधीजी बीमार हैं, उनसे मिलने कोई न जाय। अतः भाईजी बापूके स्वास्थ्यके विषयमें पूछकर लौटने लगे। भाईजीसे बापूके पुत्र देवदासने कहा—आप आयें हैं, बापूको खबर तो दे दूँ, ठहरिये। लौटकर बोले—बापूने ऊपर बुलाया है। भाईजी ऊपर गये, बापूको प्रणाम किया।)

गाँधीजी—(हँसकर डाँटते हुए)—लौट क्यों रहे थे?

भाईजी—बापू! नवजीवनमें छपा है, इसलिये लौट रहा था।

गाँधीजी—यह घरवालोंके लिये छपा है क्या? देवदास यहाँ नहीं रहेगा क्या? देखो, यह तो उन लोगोंके लिये है, जो यहाँ आये और शिष्टाचारके नाते उनसे मुझे बोलना ही पड़े—चाहे मुझे बोलनेमें कष्ट ही हो। मैं उनसे न बोलूँ तो उनको कष्ट हो, दुःख हो। इसलिये उन लोगोंको आनेसे रोक दिया है। तुम आओ, तुमसे मैं एक शब्द भी न बोलूँ। तुम बैठे रहो, तुमसे न बोलूँ तो तुम्हें उसमें तनिक भी विचार नहीं होगा। अतएव तुम्हारे आनेमें मुझे क्या संकोच है? आये हो, कुछ देर बैठो।

(कल्याणका 'भगवन्नामांक' निकलनेवाला था। सेठ जमनालालजीको लेकर भाईजी रामनामपर कुछ लिखवानेके लिये बापूके पास गये।)

गाँधीजी—(हँसकर)—जमनालालजीको साथ नहीं लाये हो? क्या

मैं इनकी सिफारिश मानकर लिख दूँगा? तुम अकेले क्यों नहीं आये?

भाईजी—बापू! बात तो सच है, मैं इनको इसीलिये लाया था कि आप लिख ही दें।

गाँधीजी—अच्छा, इस बार माफ करता हूँ। आइन्दा ऐसा अविश्वास मत करना। (फिर कलम उठाकर तुरंत सन्देश लिख दिये।)

गाँधीजी—(मुस्कुराते हुए) तुम मुझसे ही संदेश लेने आये हो जगत्को उपदेश देनेके लिये या खुद भी कुछ करते हो? रोज नाम जपका नियम लो तो तुम्हें संदेश मिलेगा, नहीं तो मैं नहीं दूँगा।

भाईजी—बापू! मैं जप तो रोज करता ही हूँ, अब कुछ और बढ़ा दूँगा।

गाँधीजी—भाई! बिना कीमत ऐसी कीमती चीज थोड़े ही दी जाती है।

(भाईजीको बापूका संदेश मिल गया और आज्ञा प्राप्त करके लौट आये)

पं० मदनमोहनजी मालवीय

(दिसम्बर मासमें अमृतसरमें कांग्रेसका अधिवेशन था। भाईजी बम्बईसे अमृतसर गये। कड़ाकेकी सर्दी थी। किन्तु वैसी सर्दी देखी हुई न होनेसे केवल एक चद्दर एवं हल्का-सा कम्बल साथ ले गये थे। एक बड़ी धर्मशालामें (जहाँ महात्मा गाँधी भी शायद ठहरे थे) मालवीयजीके डेरेपर ठहरे। रातमें चारपाई पर सो गये पर शरीर ठिठुर रहा था, शरीर काँप रहा था। मालवीयजी सबको सँभालते हुए भाईजीकी चारपाईके पास आये।

मालवीयजी—(मुँह ढ़के सिकुड़े हुए देखकर) कौन हो कहाँसे आये हो? खाया कि नहीं?

भाईजी—(मुँहपरसे कपड़ा हटाकर, उठकर चरण स्पर्श करके) बम्बईसे।

मालवीयजी (पहचानकर)—कपड़े कहाँ है?

भाईजी—बिछा-ओढ़ रक्खे हैं न!

मालवीयजी—बस, ये कपड़े हैं? तुम्हें पता नहीं था क्या कि यहाँ कितने कड़ाकेका जाड़ा पड़ता है? अमृतसरको बम्बई समझ लिया?

मालवीयजी—खाया कि नहीं?

भाईजी—खा लिया।

मालवीयजी—देखो, तुमने बड़ी गलती की, जो मुझसे कहा नहीं।

यह तो मैं आ गया नहीं तो तुम लोगोंको रातको बड़ा कष्ट होता और पता नहीं, इसका क्या नतीजा होता। क्यों इतना संकोच किया? मैंने कह दिया है, अभी और कम्बल आ रहे हैं।

(फिर दो-दो कम्बल चारपाइयोंपर बिछाये तथा दो दो कम्बल ओढ़नेके लिये रक्खे गये। गरम-गरम चाय पिलायी एवं जबतक सो नहीं गये तबतक वहीं कुर्सी पर मालवीयजी बैठे रहे। यह ममता देख भाईजीका हृदय भर आया।)

मालवीयजी—जबतक तुमलोग ओढ़कर सो नहीं जाओगे, तबतक मैं नहीं जाऊँगा।

(सन् १९३६)

(एसेम्बली चुनावके सिलसिलेमें कांग्रेसी उम्मीदवारोंकी ओरसे पधारे एवं श्रीभाईजीके बगीचेमें ही ठहरे।)

भाईजी—इनके आजकल ईश्वरकी तरफ समय कम लगता है।

मालवीयजी—इस अखण्ड कीर्तनके काममें इतने रुपये (करीब ४००००) क्यों खर्च करते हैं?

भाईजी—लोग तो वोटरोंके लिये तथा कांग्रेसके लिये ही इतने खर्च कर देते हैं। क्या इनसे भी यह काम अच्छा नहीं है? बिना ईश्वरको साथ रखे कांग्रेस क्या कर सकती है?

(एकबार मालवीयजी गोरखपुर पधारे तथा भाईजीके पास ही दो-तीन दिन ठहरे—)

मालवीयजी—भैया! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको दे रहा हूँ। दीखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी पर है महान् वरदानरूप।

भाईजी—(आतुरतासे) बाबूजी! जल्दी दीजिये, कोई आ जायेंगे।

मालवीयजी—लगभग ४० वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और विनयके साथ मैंने यह वरदान माँगा कि 'मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं कहीं भी जाऊँ तो सफलता प्राप्त

करूँ।' माताजीने स्नेहसे सिरपर हाथ रखा और कहा—'बच्चा! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ तब जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।'

मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मंत्र ले लिया। हनुमान प्रसाद! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो, मेरे जीवनमें चलते-चलते 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र मेरी माताकी दी हुई परम वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।

(यों कहकर महामना गद्‌गद हो गये। भाईजीने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया।)

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

(बीकानेर निवासी गोस्वामीजी 'कल्याण' के सम्पादनमें सहयोग देते थे। वे संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दीके प्रकाण्ड विद्वान् थे। अधिक जानकारीके लिये 'श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति' पुस्तक देखें।)

सन् १९३२

श्रीचिम्मनलालजी बीकानेरसे श्रीभाईजीके समीप निरन्तर निवास करनेके लिये आये। उन्होंने कहा कि—आजकल बीकानेर नरेशके दीवान साहब मनुभाईकी जगह एक दूबेजी आये हैं। वे मुझसे समय बहुत लेते हैं, इससे साधन कुछ नहीं होता।

भाईजी—यदि आपके पिताजी स्वीकार कर लें और आपके मनमें ठीक जँच जाय तो खूब सोच विचार करके आपकी तीव्र इच्छा हो तो आप कल्याण-सम्पादकीय विभागमें काम करनेके लिये मेरे पास आ सकते हैं।

(ऐसा आश्वासन मिलनेपर श्रीगोस्वामीजी बीकानेर राज्यकी नौकरी त्यागकर पत्नी सहित श्रीभाईजीके पास आ गये।)

भाईजी—मुझे जो वस्तु प्राप्त है उसे मैं भगवान्‌की आज्ञाके बिना वितरण नहीं कर सकता।

गोस्वामीजी—आज्ञा लेकर उस शक्तिको काममें लाना चाहिये।

भाईजी—(कुछ रुककर)—आज्ञा माँग नहीं सकता। हाँ, वे चाहें तो प्रदान कर सकते हैं। परन्तु मेरी इच्छासे नहीं हो सकता। मैं दिव्य लीलाओंमें किस प्रकार प्रवेश हो सका हूँ—यह बातें बड़ी रहस्यकी हैं, जिसे मैं कह नहीं सकता। परन्तु मेरा विश्वास है कि भगवत्कृपासे ऐसी शक्ति भी प्राप्त हो सकती है।

भाईजी—(मुस्कुराते हुए)—भगवान् बड़े जादूगर हैं। उनका जादू ब्रह्मा, शंकर, नारद, व्यास, शुकदेव, भीष्म आदि पर भी हो गया। उनके मुखारविन्दमें, बोलीमें, वंशीमें, नूपुरमें, प्रकाशमें—प्रत्येकमें ऐसा जादू भरा है कि इनको देखते ही बेसुध हो जाते हैं।

गोस्वामीजी—हमारे पर जादू क्यों नहीं करते?

भाईजी—करते क्यों नहीं? सबपर जादू कर रखा है—(इसके बाद कुछ रुककर)—शनिवार ना बहुत दूर है—सेवा कुंज भी तो बहुत दूर है—किसीके दोष मत देखो, अविश्वास मत करो, दंभ न करो। (ऐसा बार-बार—कई बार बोले।) भगवान्‌के साथ ही काम, क्रोध लोभ, मोह, द्वेष, अभिमान आदि करने चाहिये। संसारसे न राग रखना चाहिये, न द्वेष। भगवान्‌के साथ खानेमें, उनके साथ चलनेमें, खेलनेमें, कूदनेमें क्या आपत्ति है। चलो, हमलोग साथ चलें। उनकी सबपर अपार कृपा है। हमलोग उनकी कृपाके पात्र हैं। उनकी सभीपर असीम कृपा हो रही है।

गोस्वामीजी—मेरेपर कृपा क्यों नहीं करते?

भाईजी—आपपर कृपा नहीं है ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये। यहाँ उपस्थित लोगोंमें किसीको भी ऐसा नहीं कहना चाहिये।

गोस्वामीजी—आपका और भगवान्‌का तो एक ही वर्ण है।

भाईजी—वर्णका क्या मतलब?

गोस्वामीजी—(हँसकर)आपका भी सांवला रंग है और उनका भी सांवला रंग है।

भाईजी—सब लोग श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण कहो।

(सभीने नामोच्चारण किया)

भाईजी—श्रीकृष्ण आ गये।

(बादमें भाईजी बाह्यज्ञान शून्य होनेसे लुढ़कने लगे तब गोस्वामीजी

एवं बाबूजीने उन्हें संभाला।)

गोस्वामीजी—भगवान्‌के स्मरण करनेसे मुक्ति होती है तो महापुरुषोंके भी स्मरणसे मुक्ति होनी चाहिये।

भाईजी—हाँ, उनकी भी मुक्ति अवश्य होनी चाहिये।

गोस्वामीजी—कोई-कोई प्रेमी सज्जन ऐसा कहते हैं कि भगवान्‌को तत्त्वसे जाने बिना यदि मृत्युकालमें भगवान् समीपमें भी खड़े रहें तो मुक्ति नहीं हो सकती।

भाईजी—यह बात हमारे तो नहीं जँचती। भला, मृत्युके समय भगवान् पासमें खड़े हों और उसकी मुक्ति न हो यह कैसे हो सकता है? यदि मुक्ति न होती हो तो भले ही न हो, परन्तु हमारे तो मृत्यु समयमें श्रीभगवान् हमारे समीप रहने चाहिये। हाँ, मुक्तियोंमें भी कई भेद होते हैं—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य आदि—उनमेंसे कोई भी मुक्ति क्यों न हो पर है तो मुक्ति ही। मैंने तो अपने विश्वासकी बात कही है। मुझको तो ऐसे ही जँचती है।

(सन् १९३४)

(गोस्वामीजी आदिने भाईजीसे निवेदन किया कि आज बहुत महीनोंके बाद ऐसा मौका मिला है। इसलिये शरद-पूर्णिमा वि० सं० १९९१ को जिस प्रकार श्रीभगवान्‌के माधुर्य प्रेम-रास-लीलादिकी बातें हुयी थीं वैसी ही बातें कृपाकर हों।

भाईजी—मुझे तो उस दिनकी बातें याद नहीं हैं।

गोस्वामीजी—आप तो उस दिन बाह्य ज्ञान शून्य हो गये थे इसलिये आपको तो वे बातें कैसे याद होंगी, किन्तु उस दिन आपने ही कहा था कि आज किसीको दर्शन, किसीको स्पर्श, किसीको ध्यान हुआ होगा। सो, हमलोगोंके भी वैसे ही होना चाहिये।

भाईजी—आप लोगोंके सामने मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कहता हूँ क्योंकि आप सब लोग अपने ही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि आप लोगोंसे मुझे अधिक वस्तु प्राप्त है किन्तु जो वस्तु मुझे प्राप्त है वह मैं किसी दूसरेको प्राप्त नहीं करा सकता। क्योंकि वैसी मेरी शक्ति नहीं है। यह मेरी इच्छा रहती है कि मेरे साथियोंको भगवत्प्राप्ति हो किन्तु मैं किसीको प्रेम प्राप्त करा दूँ

ऐसी मुझमें योग्यता नहीं है।

दुजारीजी—आप तो शक्तिका प्रयोग भी करते हैं किन्तु हमारी योग्यता उस शक्तिको ग्रहण करनेकी न होनेसे वह शक्ति लौटकर आपके पास वापस चली जाती है। इसमें तो हमारी ही अपात्रता है। आपकी दयामें तो कोई कमी नहीं है।

भाईजी—हाँ, ... के लिये मैंने बहुत चेष्टा भी की थी किंतु उसका फल कुछ न हुआ क्योंकि उनके द्वारा इसी जन्ममें कुछ उग्र पाप बन गया था इसलिये उसके प्रतिबंधके कारण लाभ नहीं हुआ।

एक सत्संगी भाई—पापोंकी तरफ देखें तब तो हमारे भी बहुत है। इसलिये क्या हमारे प्रेमकी प्राप्ति होनेमें वर्तमानके पाप प्रतिबंधक हैं? या प्रारब्ध अथवा पुरुषार्थकी न्यूनता है?

भाईजी—अलग-अलग बातें सुनकर निर्णय किया जा सकता है। और उसके लाभके लिये अलग-अलग उपाय भी बताये जा सकते हैं, साधारणतया सबके लिये दो ही सर्वोत्तम उपाय हैं—(१) श्रीभगवान्‌की कृपामें विश्वास (२) श्रीभगवान्‌के नाम जपकी चेष्टा।

दुजारीजी—इतनी कृपा होनेपर भी जैसा लाभ होना चाहिये वैसा प्रतीत नहीं होता। ऐसा क्यों?

भाईजी—लाभ तो अवश्य ही होता है परन्तु प्रत्यक्षमें दीखता नहीं। इसीलिये मैं अपने समीप रहनेके लिये लोगोंसे नहीं कहता। अमुक महात्माके समीप रहने मात्रसे ही लाभ हो जायेगा ऐसा भी प्रतीत नहीं होता; इसलिये किसी महात्माके पास रहनेका आग्रह नहीं कर सकता। गोस्वामीजीको बीकानेरमें रहनेकी सलाह देनेमें भी संकोच होता है कि इनके राजकीय कार्यमें पड़ जानेसे लाभके बजाय उल्टे हानि न हो जाय। दुजारीजीको भी यदि अपने पास न रहनेकी कह दी जाय तो यह कोई व्यापार कार्य तो कर सकेंगे नहीं, इधर-उधर भटकेंगे, इसलिये इन्हें भी अलग रहनेकी नहीं कही जाती।

गोस्वामीजी—आपसे जो प्रेम करते हैं उनकी वर्तमानमें पारमार्थिक स्थिति उन्नत न होनेपर भी अन्तमें उनके कल्याणमें संदेह नहीं है।

भाईजी—इस सम्बन्धमें भी निश्चित बात नहीं कही जा सकती।

क्योंकि उनकी अन्तिम स्थितिके अनुसार ही गति होगी।

गोस्वामीजी—आपके प्रेमी जनोंमेंसे जिनकी मृत्यु हो गयी है जैसे मोहनलालजी डागा और उनकी धर्मपत्नीकी क्या गति हुई?

भाईजी—उन दोनोंकी तो अच्छी गति हुई है ऐसा ही समझना चाहिये।

दुजारीजी—हम लोगोंमें जो दोष हैं वे हमारेसे तो छूटते नहीं, इसके लिये हम लोगोंको क्या करना चाहिये?

भाईजी—मैं भी चाहता हूँ कि आप लोगोंमें कोई दोष न रहे। पू० सेठजी भी ऐसा ही चाहते हैं परन्तु उनके विशेष प्रेमी श्रीघनश्यामजी हैं। उनके दोष भी अभी तक भलीभाँति नहीं छूट सके, इसलिये इनके दूर होनेमें पूर्व संचित पाप कर्म एवं पुरुषार्थकी कमी ही माननी पड़ेगी।

दुजारीजी—मेरे तो पाप आपने ले लिये थे।

भाईजी—हाँ, अभी भी लेनेको तैयार हूँ।

दुजारीजी—लेकिन हम लोग ऐसा मानते भी कहाँ है?

अच्छा, प्रसंग कुछ दूसरे ही चलने लग गये हैं। श्रीभगवान्‌की लीलाका ध्यान करनेके लिये हम लोग प्रार्थना करनेवाले थे। सो, अब वैसी कृपा होनी चाहिये।

भाईजी—अभी तो मुझे कोई बात याद नहीं आती है, इसलिये कल ब्राह्ममुहूर्तमें उठते ही ४ बजेसे ही वहीं पर एकान्तमें ध्यानकी बातें करनेका विचार रक्खें, किंतु अभी वाले व्यक्तियोंके सिवाय दूसरा कोई व्यक्ति नहीं रहना चाहिये।

श्रीशुकदेवजी अग्रवाल

(ये जयपुरके मांडला ग्रामके निवासी थे। श्रीसेठजीसे मिलनेपर सन् १९२६ में गीताप्रेसमें काम करने आ गये। बहुत अच्छे साधक थे। कोई वेतन न लेकर केवल भोजन, वस्त्र लेकर कोषाध्यक्षके पदपर आजीवन सेवा की।)

शुकदेवजी—अपनी जानमें जी जानसे प्रयत्न करने पर भी श्रीभगवान्‌के दर्शन नहीं होते तो इसके लिये कुएँमें गिर जाना चाहिये।

भाईजी—आप जैसे गीताप्रेसकी रोकड़का काम करते हैं वैसे ही इसे भी भगवान्‌का समझकर करते रहिये आपको कुएँमें कूदनेकी जरूरत नहीं है।

शुकदेवजी—दशहरेके दिन रावणपर रामने विजय प्राप्त की है अतः हमारी भी विजय होनी चाहिये।

भाईजी—कल देखेंगे।

(इसपर शुकदेवजीके मनमें हो गया कि कल प्रातः श्रीभाईजी हमें दर्शन करायेंगे। अतः दिनभर उसी धुनमें विभोर रहे एवं विचार कर रहे थे कि कब सवेरा हो और कब हम भाईजीके पास पहुँचें। शुकदेवजी प्रातः समय ६ बजेसे पहले ही बगीचेमें पहुँचे एवं खूब जोर-जोरसे हँसने लगे और पृथ्वीसे एक-डेढ़ फुट ऊँचे उछल-उछलकर बाह्यज्ञान शून्य होकर अंतरमें न जाने क्या-क्या दृश्य देख रहे थे। कई प्रेमी सदस्य तो प्रसन्न हो रहे थे, पर किसीके मनमें ऐसी कल्पना भी हुई कि शायद ये कुछ ढोंग कर रहे हैं। इसलिये भाईजी उस अश्रद्धालुके संदेहके कारण सबके सामने कहा—शुकदेवजीको जो दृश्य दीख रहा है वह दीखना अभी बंद हो जाय। शुकदेव बाबू उसी समय शांत हो गये और वहीं बैठे रहे।)

भाईजी—थोड़ी देरमें आऊँगा तब बात करूँगा। आप ध्यान करते रहिये।

भाईजी—(थोड़ी देर बाद) क्या चाहते हो?

शुकदेवजी—श्रीभगवान् तो खड़े हैं। इनसे बातें कराइये और वंशी ध्वनि सुनाइये।

भाईजी—एक बात होगी।

शुकदेवजी—वंशी ध्वनि सुनाइये।

(इसके बाद वंशीध्वनि सुनायी देने लगी जिससे वे पुनः बेसुध हो गये।)

भाईजी—(करीब ४ बजे पुनः आकर बोले)—मैं प्रेस जा रहा हूँ। आकर बात करेंगे। आप कुछ खा लेना।

शुकदेवजी—भूख नहीं है (फिर उन्हें वही दृश्य दिखायी देने लगा।)

भाईजी प्रेससे वापस आकर भोजनोपरांत गंगाबाबूको साथ लेकर कमरेमें चले गये एवं श्रीकृष्णके स्वरूपका एवं वंशीध्वनिका वर्णन प्रारंभ किया तब दोनों सज्जनोंको भगवान्‌के स्वरूपका उसी प्रकार दर्शन होने लगा जैसा भाईजी वर्णन करते थे। वंशी ध्वनि केवल शुकदेव बाबूको ही सुनायी देती थी।

(सन् १९३३)

शुकदेवजी—भाईजी! अब दिन निकालने ठीक नहीं हैं। कलसे ही लगातार नित्य प्रति प्रार्थना करानी चाहिये।

भाईजी—ठीक है।

(दूसरे दिन गंगा बाबूकी कुटियामें)

भाईजी—आज शुकदेवजी सबको ले आये हैं। अब निराकार ब्रह्म, विष्णु भगवान्, श्रीराम या श्रीकृष्ण इनमेंसे किनका ध्यान करना चाहिये।

गंगाबाबू—हमें तो आपको जैसा जँचे, उसका हाथ पकड़ा दीजिये।

भाईजी—यह तो मेरे सामर्थ्यके बाहरकी बात है। हाँ, ध्यान करानेकी चेष्टा की जा सकती है।

शुकदेवजी—आज ध्यानकी बात ही क्यों कर रहे हैं, इससे आगेकी बात करनी चाहिये।

भाईजी (गंभीर भावसे)—दिल्लगीकी बातें छोड़कर अब ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। जिसमें—

(१) श्रीभगवान्‌के दर्शन होनेका ही केवल मनोरथ रहे और कोई संकल्प ही न रहे।

(२) उसके लिये अन्तरकी आर्त्त पुकार हो।

(३) श्रीभगवान्‌की कृपापर दृढ़ विश्वास हो और उसीका अवलम्बन हो।

(४) श्रीभगवान् आ रहे हैं यह जानकर उनकी नूपुर-ध्वनि, श्रीचरणोंकी आहट, वंशी-ध्वनि, दिव्य गंध और प्रकाशका अनुभव करें।

(५) मनमें यह दृढ़ निश्चय रक्खें कि हमारा काम हो जायेगा।

(इन पाँच बातोंके लिये जोर देकर फिर बोले)

(६) यहाँ जितने व्यक्ति हैं इन सबका एक ही मन होकर केवल एक अभिलाषा रह जायेगी तो भगवान् प्रकट होकर दर्शन दे सकते हैं।

फिर श्रीभाईजीने आर्त्त शब्दोंमें श्रीभगवान्‌से प्रार्थना की। इसके बाद नूपुर-ध्वनि तथा दिव्य गन्धकी तरफ लक्ष्य कराया और कहा—महान् प्रकाशका पुंज सामनेकी तरफसे आ रहा है एवं क्रमशः सर्वत्र फैल गया। इस प्रकाशमेंसे भगवान् आज अनोखा ही वेष धारण करके पधारे हैं। मुकुटकी जगह पीताम्बरको साफेकी तरह बाँधे हुए हैं, जिससे घुँघराले केश

ढक गये हैं, पीताम्बर पहने हुये हैं। फिर बोले—देखिये, देखिये। कुछ देर मौन एवं मुग्ध भावसे बैठे रहे। इसके बाद उनकी लड़खड़ाती वाणीसे लगा कि उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया और वे आवेशमें इस प्रकार कहने लगे—

(१) भगवान्‌को संपूर्ण पाप-पुण्य समर्पण कर दीजिये।

(२) '**ॐ क्लीं श्रीकृष्णाय नमः**' इस मंत्रकी ५० माला नित्य प्रति एक मास तक फेरिये, यह साधन पालन हो जानेसे प्रेम प्राप्त हो जायेगा।

(३) रात दिन उठते-बैठते खाते-पीते इसी बातका ध्यान रहना चाहिये कि हमें भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति अवश्य होगी।

(४) भगवान्‌ने हमें अपना लिया है।

(५) भगवान् ही सब जगह हैं, भगवान् ही सब कुछ हैं। सर्वत्र उन्हींकी लीला हो रही है। साथ ही भगवान्‌का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—भगवान् पीताम्बर पहने हुये हैं—माथेपर झड़ूले (जूड़ा) में मोरपंख लगे हुए हैं। भगवान् मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे हैं .....।

श्रीगंगाप्रसादजी अग्रवाल

(ये भिर्जापुरके रहनेवाले थे। पहले टाटानगरके कारखानेमें काम करते थे। सन् १९२६ के लगभग श्रीसेठजीका सत्संग सुनकर गीताप्रेसमें काम करने आ गये। बड़े अच्छे साधक थे। बिना वेतनके भोजन, वस्त्र लेकर गीताप्रेसकी तत्परतासे आजीवन सेवा की)

गंगाबाबू—(एकान्तमें) मेरे लिये साधन बताइये?

भाईजी—आपको प्रेसका थोड़ी देर काम सम्हालकर शेष समयमें एकान्तमें बैठकर भक्त-गाथाकी पुस्तकोंमेंसे भक्तोंकी जीवनी पढ़ना और भजन, ध्यानके साथ-साथ आर्त्तभावसे श्रीभगवान्‌के सामने दीनतापूर्वक अपना हृदय खोलकर प्रार्थना करनी चाहिये।

एक बार पू० भाईजीने नौ साधकोंको भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करवाया। फिर मानसिक पूजन करवाकी। अन्तमें '**त्वमेव माता .....**' मंत्र बोलकर फिर भगवान्‌की स्तुति की। फिर भगवान् पश्चिमकी तरफ धीरे-धीरे जाकर अन्तर्धान हो गये। फिर जिस जगह भगवान् खड़े थे उस जगह अपने

हाथोंसे पोंछकर मस्तकसे लगाया एवं बोले इस जगह श्रीभगवान् प्रत्यक्ष खड़े थे। इसके बाद श्रीशुकदेवजी फिर पूर्ववत् हँसने लगे और उछलने लगे।

भाईजीने—आज आपका कैसा ढंग रहा?

गंगाबाबू—आज हमारे बहुत अच्छा ध्यान हुआ। पहले नींद आती थी, पर ध्यानकी बातें आरम्भ होते ही सब कहीं चली गयी।

भाईजी—हमारा काम तो हो गया, क्योंकि आज गंगाबाबूके बहुत अच्छा ध्यान हुआ।

बादमें भाईजीने गोस्वामीजीसे गीता अ०११ श्लोक ३६ से ४६ की स्तुति करवायी। श्रीभाईजी उठने लगे तब गंगाबाबूने उनके शरीरका स्पर्श करके उन्हें ठहरनेके लिये इशारा किया।

श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी

(श्रीभाईजीके अनन्य भक्त मेरे पिताजी श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीका जीवन भाईजीको समर्पित था। भाईजी कब, कहाँ जाते हैं, उनसे कौन कब मिलने आता है, सत्संगमें उन्होंने क्या कहा आदिका विवरण और भाईजीके पत्रोंकी प्रतिलिपि नियमित रूपसे संग्रह करते। वे सदैव साथ रहनेकी चेष्टा करते और उनके जीवनकी छोटी-से-छोटी बात एवं घटनाको लिखते रहते। आज श्रीभाईजीके बारेमें जो कुछ ज्ञात है वह इन्हींके सद्प्रयासोंका परिणाम है।)

दुजारीजी—भगवान्‌की लीलामें आपका प्रवेश है। कृपया बतायें कि वहाँ क्या विशेषता रहती है?

भाईजी—उस समय स्थूल शरीरसे सम्बन्ध नहीं रहता है। उस समय भगवान् तथा वहाँ उपस्थित होनेवाली सब वस्तुयें चिन्मय हुआ करती हैं।

दुजारीजी—आज कृपा करके दिव्य लीलाके दर्शन कराइये?

भाईजी—आपकी आध्यात्मिक उन्नति शीघ्र से-शीघ्र हो, उसकी मेरे मनमें बहुत लगी रहती है। परन्तु मेरे वशकी बात नहीं है। यदि मेरे वशकी बात होती तो अभीतक यह कार्य हो जाता। हाँ, मुझे जो वस्तु प्राप्त है, उसे मैं बिना आज्ञाके वितरण नहीं कर सकता। वे चाहें तो प्रदान कर सकते हैं, परन्तु मेरी इच्छासे नहीं हो सकता। मैं दिव्य लीलाओंमें किस प्रकार प्रवेश हो सका हूँ, उसे मैं कह नहीं सकता।

दुजारीजी—क्या हम अपात्र हैं? इसलिये आप हमारे सामने नहीं कहते हैं?

भाईजी—यह बात नहीं है। यदि आपकी जगह नारदजी आवें, जिनके चरण रजसे ही मैं पवित्र हो सकता हूँ, उनसे बढ़कर कौन अधिकारी हो सकता है, परन्तु मैं उनके सामने भी उन बातोंको प्रकट नहीं कर सकता।

दुजारीजी—क्या ऐसी स्थिति प्राप्त हो सकती है?

भाईजी—वह स्थिति सबको प्राप्त हो सकती है, ऐसा मेरा विश्वास है। हाँ, इतना जरूर कर सकता हूँ कि उन्हें साधन बता सकता हूँ। उसके अनुसार वे करें तो अवश्य लाभ हो सकता है।

दुजारीजी—आप पूर्ण स्थिति किसको कहते हैं?

भाईजी—जिसके काम-क्रोधादि विकार किंचित् मात्र भी न हो।

दुजारीजी—आप जो भगवान्‌का वर्णन करते हैं वह कैसा है?

भाईजी—वैसे तो मेरे मनके संकल्पके अनुसार जो-जो मैं वर्णन करता हूँ, उसी-उसी दृश्यको मैं देखता जाता हूँ, बाकी दो दिनसे मैं वृन्दावनमें जाकर प्रत्यक्ष लीलाका दर्शन कर रहा हूँ।

जबतक मैं बोलता हूँ, या बाह्यज्ञान जबतक मेरा रहता है, तबतक तो प्रायः ध्यानकी ही अवस्था समझनी चाहिये और जब बोलना बन्द हो जाय तथा बाह्यज्ञान न रहे, तब प्रत्यक्ष हुए समझना चाहिये।

दुजारीजी—जो साधन मुझसे हो सके और जिससे शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्‌के दर्शन हो सके, ऐसा साधन बतलानेकी कृपा करिये?

भाईजी—सबसे शीघ्र फल देनेवाला साधन तो यह है कि सबकुछ भगवान्‌के ऊपर छोड़ दो। किसी बातकी इच्छा न करो, जो कुछ भी वे करें उसीमें आनन्द मानो। इस साधनसे बहुत शीघ्र दर्शन हो सकते हैं।

दुजारीजी—भाईजी! इसका यथार्थ रहस्य तो हमलोग समझते नहीं हैं और वैसे वर्षोंसे उनपर छोड़े हुए ही हैं किन्तु अभीतक तो दर्शन नहीं हुए इसलिये हमारे द्वारा जो साधन हो सके, वह बतलाइये?

भाईजी—दूसरे नम्बरका साधन यह है कि भगवान्‌के दर्शनके लिये जैसे बने, उसी उपायसे उत्कण्ठा बढ़ाइये। तीव्र उत्कण्ठा होनेसे वे दर्शन दे सकते हैं।

दुजारीजी—यह भी हमारे वशकी बात नहीं दीखती। आप ही चेष्टा करके हमारेमें उत्कण्ठा उत्पन्न करा दीजिये।

भाईजी—तब प्रसन्न रहिये, उकतानेकी कोई जरूरत नहीं है। मेरे द्वारा जैसी बन सकती है वैसी चेष्टा कर रहा हूँ।

दुजारीजी—श्रीभगवान्‌के चरणोंके नीचे कमल है, उसका रंग कैसा है?

भाईजी—(रंगका संक्षेपमें वर्णन करके)—जसीडीहमें दर्शनके समय भगवान्‌के मुखारविन्द और चरणोंके सिवाय किसी अन्य वस्तुकी तरफ लक्ष्य भी नहीं जाता था। एक दो बार दूसरे अंगोंकी ओर लक्ष्य गया था तो मूर्तिके चारों तरफ जो प्रकाश ही प्रकाश रहता है; उसी प्रकाशको चीरकर उसमें एक मूर्ति दिखायी देती है।

दुजारीजी—मूर्तिकी जगह प्रकाश कुछ अधिक प्रतीत होता है या सामान्य ही?

भाईजी—उस जगह प्रकाशके भीतर ही एक मूर्ति (प्रकाश-पुञ्ज) अलग प्रतीत होती है।

दुजारीजी—उस मूर्तिमेंसे प्रकाश निकलकर सर्वत्र फैल रहा है या कैसे?

भाईजी—प्रकाश तो सामान्य रूपसे सर्वत्र ही व्यापक है।

भाईजी—(सेठजीसे) आज तो दुजारीजीका चेहरा उदास है।

सेठजी—(दुजारीजीसे) आज आप उदास क्यों हैं?

दुजारीजी—महापुरुषोंकी इतनी अधिक दया है कि जिसकी तुलना भी नहीं हो सकती फिर भी इतनी दया होते हुए मेरा न तो साधन ही बढ़ता है और न उनमें प्रेम ही होता है।

सेठजी—इसके लिये उदास नहीं होना चाहिये क्योंकि कोई व्यक्ति समुद्रमें डूब रहा हो और उसको कोई नाविक पकड़कर जहाजमें बिठा ले तो फिर उसे चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है? कोई व्यक्ति गंगाजीके दर्शन करनेके लिये खूब तेजीसे दौड़ रहा है। गंगाजी वहाँसे दस-बीस कोस ही दूर रह गयी हैं तब वह बीचमें लोगोंसे पूछे कि गंगाजी अब कितनी दूर है तो उसे बात करनेमें जो समय लगा, उतना तो पहुँचनेमें विलम्ब ही हुआ।

उसे तो तेजीके साथ दौड़ते ही रहना चाहिये ताकि गंगाजीके समीप शीघ्रसे शीघ्र पहुँच सके। इसी प्रकार साधकको भगवत्प्राप्तिके लिये साधन करते ही रहना चाहिये। इस दृष्टान्त और भगवत्प्राप्तिकी साधनाके क्रममें इतना अन्तर है कि गंगाजीके पास जानेवालेको तो वहाँतक जानेसे ही गंगाजी मिलेंगी, किंतु भगवान्‌की प्राप्तिके लिये साधक जितना उनके समीप जाता है, श्रीभगवान् भी उतना ही उसके समीप आते हैं। इसलिये उसे विशेष परिश्रम न होकर बीचमें ही श्रीभगवान् मिल जाते हैं। अतः चिन्ता तो कभी नहीं करनी चाहिये। भगवत्प्राप्तिके लिये खूब तेजीसे साधन करना चाहिये।

भाईजी—छोटा बालक जैसे मातापर निर्भर रहता है वैसे ही साधकको श्री भगवान्‌पर निर्भर रहना चाहिये।

दुजारीजी—आपके अनुकूल कार्य करनेका हर संभव प्रयास करनेके बाद भी मेरे कुछ व्यवहार आपको अच्छे नहीं लगते, इसके लिये मैं क्या करूँ?

भाईजी—तुम्हारा मेरे साथ जो बर्ताव होता है वह सर्वथा सरल प्रेमका होता है। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ और तुम्हारे भावोंको दबाकर जब मैं तुम्हें रोकता हूँ तो मुझे बड़ा असमंजस होता है; इसलिये कि यदि तुम्हें रोका जायेगा तो तुम्हारे मनको धक्का लगेगा और यदि न रोका जाय तो लोगोंको उद्वेग होगा। उस समय मुझे कभी तुम्हारे और कभी उन लोगोंके अनुकूल व्यवहार करना पड़ता है। क्योंकि यदि मैं तुम्हें अपने समीप रहनेसे न रोकूँ तो लोग समझते हैं कि इनके साथ पक्षपात है। तुम्हारा मेरे साथ जो प्रेम है उसमें कितना हिस्सा तो मेरे शरीरसे मोहका है। तुम मेरे शरीरकी सम्हाल रखा करते हो। इसमें यद्यपि कोई दोष नहीं है तथापि लोगोंको उद्वेग हो वैसा कार्य नहीं करना चाहिये। तुम मुझको अपना जानते हो इससे तुम्हारा मुझमें ममत्व है और कई अंशोंमें मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। तुमसे काम लेनेमें मुझे संकोच भी नहीं होता परन्तु सबके सामने ऐसा करना उचित नहीं है।

दुजारीजी—मैं नहीं जानता कि मेरा ऐसा बर्ताव क्यों होने लगा। इस प्रकारसे संग रहनेकी इच्छा तो मेरी कभी नहीं हुई थी। इसमें भगवत्कृपाके सिवाय कोई बात समझमें नहीं आती।

दुजारीजी—(श्रीसेठजीसे)—आपसे प्रार्थना है कि अब तो शीघ्र ही प्रेमका प्रवाह खूब जोरसे बहानेकी जरूरत है; जिससे प्रेमके प्रवाहमें बिना प्रयत्न ही कलिकलुषित जीव आ-आकर बह जायँ। वैसे तो आपने प्रचारके लिये शक्ति दे ही रखी है पर जिस प्रकार कलकत्तामें आजकल श्रीभगवन्नाम कीर्तनका प्रचार गीताजयन्ती समारोहके बादसे हो रहा है उससे भी बढ़कर बम्बई तथा बीकानेरके ग्रामोंमें होना चाहिये।

सेठजी—इस प्रकारकी प्रार्थना तो हम सबको मिलकर श्रीभगवान्‌से करनी चाहिये। मैंने तो कह ही रखा है कि हनुमानके द्वारा सबसे ज्यादा भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार होनेवाला है।

दुजारीजी—भाईजी! एक तरफ तो आप पू०सेठजीमें पूर्ण रूपसे गुरुभाव रखते हैं और एक तरफ आप उनके विचारोंसे अपने विचार सर्वथा भिन्न रखते हैं इसमें क्या रहस्य है? कृपाकर समझाइये।

भाईजी—यद्यपि यह बात है तो बहुत गोपनीय परन्तु तुम्हें तो कह रहा हूँ। मेरा श्रीसेठजीमें गुरुभाव तो है परन्तु मैंने अपना आत्मसमर्पण श्रीभगवान्‌के प्रति किया हुआ है। इसलिये उनके विचारोंसे भिन्न मेरे मनमें स्फुरणा होना कोई दोषयुक्त नहीं है। इसमें और भी अनेक कारण हैं—मेरे आध्यन्तरिक जीवनका अभीतक किसीको यत्किंचित भी पता नहीं है। मेरा जीवात्मा इस स्थूल शरीरसे निकलकर कहीं ऐसी वस्तुमें घुल-मिल गया है कि जिसकी लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। वास्तवमें श्रीसेठजीमें और मेरेमें कोई भेद नहीं है।

दुजारीजी—आपके और गोयन्दकाजीके विचारोंमें क्या अन्तर है?

भाईजी—जो लोग यह समझते हैं कि मेरे और गोयन्दकाजीके विचारोंमें मतभेद है वे भूल करते हैं। मत हो तो मतभेद हो, बात दोनों एक ही कहते हैं। समझके भेदसे भिन्न मालूम होती है। सम्भव है कोई एक ही शक्ति दो रूपोंमें कार्य करा रही है, सामञ्जस्यके द्वारा।

भाईजी—(दुजारीजीको उदास-सा देखकर) हर समय प्रसन्नचित्त रहना चाहिये।

दुजारीजी—यह बिल्कुल सत्य है पर अपने वशकी बात प्रतीत नहीं होती।

भाईजी—जब प्रभुने अपनेको अपना लिया है तब असीम आनन्द ही रहना चाहिये। (फिर सभी उपस्थित लोगोंको सम्बोधित करते हुए) इनका मुझमें तो सच्चा प्रेम है पर सेठजीमें जितना होना चाहिये उतना नहीं है; इसलिये इनको अधिक लाभ नहीं होता। मुझमें सच्चा प्रेम तभी समझा जाय जब मुझसे भी अधिक प्रेम श्रीसेठजीके प्रति हो।

दुजारीजी—मेरी हार्दिक इच्छा है कि अपने जीवनकी कुछ विशेष घटनाओंको (महात्मा गाँधीकी आत्मकथाकी तरह) क्रमबद्ध लिख देनेकी कृपा करें। इससे बहुत मनुष्योंको लाभ होनेकी संभावना है।

भाईजी—मेरी इच्छा बिल्कुल नहीं है और यह होना सर्वथा असंभव ही है। इसीलिये तो मैंने अपनी पुरानी बहुत-सी डायरियोंको नष्ट कर दिया था। अतः ऐसी आशा मत करिये।

दुजारीजी—आपका स्वयं लिखना असंभव हो तो कोई हर्ज नहीं किसी दूसरेको लिखवानेमें तो कोई हर्ज नहीं है; लिखवा ही दीजिये।

भाईजी—यदि कोई इस प्रकारकी इच्छासे मुझसे पूछेगा तो मैं बतलाऊँगा भी नहीं।

दुजारीजी—बम्बईके श्रीगोपाल चैतन्यजी वैद्य बोले कि इस बगीचेमें अन्तरिक्षके दिव्य आत्माओंको विचरण करते हुए मैंने प्रत्यक्ष देखा है और सुना है कि यहाँ रहनेवाले साधकोंकी साधनाकी वे रक्षा करते हैं।

भाईजी—दस वर्षतक एक हजार आदमियोंके सामने लगातार व्याख्यान देनेसे जितना काम नहीं हो सकता उतना कार्य भगवत्कृपाके बलसे एक दिनके शुभ संकल्पसे हो सकता है। परन्तु ऐसी शक्ति प्राप्त करनेके लिये साधन करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। एकान्तमें रहकर साधन करनेसे ऐसी शक्ति प्राप्त की जा सकती है।

अभी इस प्रकारके प्रयोग कभी-कभी किये जाते हैं किंतु सामने पात्र न होनेसे वह शक्ति लौटकर वापस आ जाती है।

दुजारीजी—गुरुके जूठनका क्या महत्व है?

भाईजी—भोजनके समय जहाँतक सम्भव हो किसी पापी आदमीके साथ बैठकर भोजन नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ बैठकर भोजन करनेसे बड़ा लाभ होता है, क्योंकि उस समय परमाणु अधिक फैलते हैं। इसीलिये गुरुदेवकी जूठन-चरणोदक, चरणरज, वस्त्र, जल इत्यादि लेनेका तन्त्र-शास्त्रोंमें जगह-जगह विधान है, क्योंकि हाथ-पैरोंमें, खासकरके उनकी अंगुलियोंके द्वारा परमाणु अधिक विकसित होते हैं।

इनके चरण रजकी महिमाका प्रत्येक शास्त्र एवं सम्प्रदायमें वर्णन है। **'बिना महत्पाद रजोभिषेकम्''**

ऐसा करनेसे सिद्ध पुरुषोंको तो कोई हानि नहीं है और साधकको सब प्रकारसे लौकिक एवं पारलौकिक लाभ है।

दुजारीजी—फिर सिद्ध पुरुष इसका विरोध क्यों करते हैं?

भाईजी—लोक-संग्रहकी दृष्टिसे। क्योंकि ऐसा प्रचार करनेसे जगह-जगह चरण पुजानेवाले महात्मा बन जाते हैं, जिससे हानि होती है।

दुजारीजी—व्रजलीलाके ध्यानके अधिकारी क्या सभी हैं?

भाईजी—व्रजलीलाके ध्यानके अधिकारी विरले ही हैं। इसके लिये तीव्र वैराग्य और बड़े प्रेमकी आवश्यकता है, नहीं तो इसमें गिरनेका बड़ा भय है।

दुजारीजी—वात्सल्य लीला एवं सखाओंके साथ प्रेम लीलाके ध्यानमें यह भय नहीं रहता। क्या यह ठीक है?

भाईजी—यह बात ठीक है। परन्तु मेरे तो व्रजके माधुर्य लीलाओंका ही अभ्यास है। वे बड़ी ही पवित्र लीलायें हैं। इनकी बराबरी करनेवाले तो दूर रहे, इनके रहस्यको जाननेवाले भी पूरे नहीं हैं।

दुजारीजी—भाईजी! भगवान्‌में प्रेम नहीं होता इसमें क्या हेतु है?

भाईजी—भगवान्‌में प्रेम नहीं होता यह कैसे माना जाय?

दुजारीजी—प्रेमका कोई लक्षण दिखायी नहीं देता है, इसलिये समझमें यही आता है कि अभीतक प्रेम-राज्यसे बहुत दूर हैं।

भाईजी—भगवान्‌के भक्तोंमें जो प्रेम है वह भी तो श्रीभगवान्‌में ही

प्रेम है ऐसा मानना चाहिये क्योंकि श्रीभगवान्‌में और उनके भक्तोंमें भेद तो किंचितमात्र भी है नहीं। फिर ऐसा क्यों मानना चाहिये कि हमारा भगवान्‌में प्रेम नहीं है।

दुजारीजी—उनके भक्तोंमें प्रेम है यह भी तो समझमें नहीं आता है।

भाईजी—क्या प्रेम करनेवाला ऐसे कभी समझता है कि मेरा अपने प्रेमास्पदमें प्रेम है क्योंकि प्रेमीका तो यह भी एक लक्षण है कि अपना प्रेम है, वह कभी ऐसे मानता ही नहीं। उसे तो अपने प्रेममें न्यूनता ही न्यूनता प्रतीत होती है। इसलिये यह नहीं समझना चाहिये कि मेरा प्रेम नहीं है।

दुजारीजी—यह भी कैसे माना जाय कि भक्तोंमें यत्किंचित प्रेम है?

भाईजी—प्रेम हुए बिना संग नहीं हो सकता और संग होता है इसलिये मानना ही चाहिये कि प्रेम है।

दुजारीजी—क्या प्रेम हुए बिना किसीका संग नहीं होगा?

भाईजी—हाँ, जिस व्यक्तिका जिस वस्तुमें अधिक प्रेम होगा उसको उसीका संग अधिक होगा, जैसे धनके लोभीका धन कमानेके कामोंमें अधिक संग होगा उसी प्रकार भगवान्‌से प्रेम होनेकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिका भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका संग अधिक होगा अर्थात् वह व्यक्ति भक्तोंका संग करनेकी अधिक-से अधिक चेष्टा करेगा। प्रेमीके लिये इसके सिवाय अन्य किसी साधन करनेकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि प्रेमी तो केवल प्रेम ही चाहता है और प्रेमी भक्तोंका संग करना यही सर्वोत्तम साधन प्रेम होनेके लिये माना गया है।

दुजारीजी—प्रेमीके जैसे लक्षण हुआ करते हैं उनमेंसे तो एक भी लक्षण अपनेमें प्रतीत नहीं होता।

भाईजी—यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रेमीको अपने प्रेममें न्यूनता ही न्यूनता प्रतीत हुआ करती है और ऐसा होना भी प्रेमका ही एक लक्षण है तथा प्रेमका एक लक्षण यह भी है कि प्रेमको चाहनेवाला व्यक्ति चातककी भाँति यह सदा ही हर समय चाहता रहे कि मुझे कैसे प्रेम हो, इसलिये यह कभी मानना नहीं चाहिये कि मेरा प्रेम नहीं है।

दुजारीजी—श्रद्धाका स्वरूप क्या है?

भाईजी—श्रद्धा अन्धी है।

दुजारीजी—मेरे साधनकी चाल रुक गयी है या कुछ हो रहा है? मुझे तो कुछ भी पता नहीं लगता, इसलिये कृपया आप ही बताइये।

भाईजी—तुम अपनी चाल देखते ही क्यों हो? तुम तो चलते रहो। पीछे फिर कभी विचार ही न करो कि मेरी चाल कैसी है।

दुजारीजी—दूसरोंके भजन, साधन, ध्यानमें उन्नति देखकर कभी-कभी मुझे निरुत्साह-सा हो जाता है कि अपनेसे तो कुछ भी भजन ध्यान नहीं होता।

भाईजी—ध्यानके लिये चेष्टा करनी चाहिये; भजन तो तुम करते ही हो।

दुजारीजी—चेष्टा भी कैसे हो?

भाईजी—ध्यानके लिये लगातार एकान्तमें नियमित रूपसे समय निकाला जाय और मन न लगनेपर भी लगातार चेष्टा की जाय।

दुजारीजी—न तो इतना समय मिलता है, न एकान्तके लिये ऐसा स्थान है और न वास्तवमें ऐसी लगन ही है।

× × × ×

दुजारीजी—भाईजी! सत्संगमें अपने घरवालोंको संगमें रखनेसे उनका हित ही होता है, पर अपना समय साधनमें कम लगता है। इसलिये कैसे, क्या करना चाहिये?

भाईजी—अपने-अपने भावोंके अनुसार दोनोंसे लाभ हो सकता है, इसलिये जैसी जिस समय परिस्थिति हो वैसा ही करना चाहिये।

× × × ×

दुजारीजी—गीतामें प्रेमका वर्णन कहाँ है?

भाईजी—**तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायंप्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।**
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥

(गीता ११। ४४)

इस श्लोकमें प्रेमके वात्सल्य, सख्य और माधुर्य इन तीनों भावोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

इस श्लोकमें माधुर्य प्रेमका ही वर्णन है। इस श्लोकके अर्थका चाहे जितना विस्तार किया जा सकता है।

दुजारीजी—परन्तु इनमें भगवान्‌के जैसा तो प्रेमका वर्णन नहीं आया और आये भी कहाँसे। गीताके ज्ञानको प्राप्त करनेके बाद तो अर्जुन प्रभास क्षेत्रमें भगवान्‌की आज्ञासे गोपिकाओंसे प्रेमकी दीक्षा लेनेका अधिकारी हुआ है। इसलिये ज्ञानसे भी प्रेम श्रेष्ठ है क्या?

भाईजी—अवश्य श्रेष्ठ है। यह बात गीताके श्लोकोंसे ही सिद्ध हो जाती है। गीतामें भगवान् अनेकों स्थलोंपर अर्जुनको इस प्रकारकी आज्ञा देते हैं—

'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु' (९। ३४)

'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि' (१८। ५८)

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' (१८। ६५)

इत्यादि अनेकों वाक्य हैं; परन्तु व्रजाङ्गनाओंके लिये ऐसा कहीं भी उपदेश नहीं है। उनके लिये तो भगवान् कहते हैं—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४)

गोपाङ्गनाओंकी प्रेमलीलाका विशद वर्णन एक ही जगह देखना हो तो श्रीमद्भागवत्‌के दशम स्कन्धके अध्याय २९ से ३३ तक (रासपञ्चाध्यायी) में देख सकते हैं। उस रासपञ्चाध्यायीको केवल श्रद्धासे पढ़ने और सुनने मात्रसे कामका तत्काल नाश हो जाता है। ऐसा शुकदेवजी महाराज जैसे मुनि, वीतरागी महात्मा ने वर्णन किया है।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

जब इस रासलीलाके श्रवण मात्रसे, पढ़ने मात्रसे ही कामका नाश हो जाता है और भगवान्‌की पराभक्ति (जिसे ज्ञान भी कहते हैं) प्राप्त हो जाती है फिर जो इस प्रेममार्गके वास्तविक उपासक हैं उनमें तो कामकी गंध भी कैसे रह सकती है। अस्तु, यह गोपी-प्रेम बड़ी ही उच्च वस्तु है। न तो इसे

कोई जान सकता है और न इसका वर्णन शब्दोंमें किया ही जा सकता है और न ही वर्णन करनेकी आवश्यकता ही है।

× × × ×

दुजारीजी—भाईजी! मेरी ऐसी अवस्था कब तक रहेगी?

भाईजी—(कुछ रुककर) तुम्हारी ऐसी अवस्था खराब कैसे है?

दुजारीजी—न तो भजन, ध्यान ही होता है और न ही अन्य साधन।

भाईजी—तुम भजन तो करते ही हो। यह कैसे कहते हो 'भजन नहीं होता।'

दुजारीजी—अभिमानसे तो अन्तःकरण पहलेसे ही जर्जरित हो रहा है फिर आप ऐसी बात कह देते हैं तब तो कहना ही क्या? इसीसे आप संतुष्ट हैं क्या? अब तो आपको विशेष कृपा करनी चाहिये जिससे निरन्तर भजन होने लग जाय।

भाईजी—भगवान्‌की कृपा तो सदा सर्वदा अनिर्वचनीय है ही उसके रहस्यको समझकर साधकको साधनके लिये चेष्टा करते रहना चाहिये।

× × × ×

दुजारीजी—गोलोककी लीलाओंमें आपका प्रवेश किस रूपमें है?

भाईजी—गोलोककी लीलाओंमें सशरीर प्रवेश है। वहाँ इस शरीरका ज्ञान नहीं रहता।

दुजारीजी—भगवान्‌के दर्शन एवं उनके ध्यानके अन्तरका पता कैसे लगे?

भाईजी—दर्शनमें मूर्ति स्वतः आ जाती है। ध्यानमें वृत्तिकी प्रधानता रहती है। दर्शनमें बाह्यज्ञानका लोप हो जाता है। ध्यानमें बाह्यज्ञानका लोप हो भी जाता है और नहीं भी होता है।

दुजारीजी—क्या गोपीभावकी प्राप्तिके लिये विशेष साधनाकी आवश्यकता है?

भाईजी—हाँ, अर्जुनको भी रास-दर्शनके लिये देवीकी उपासना करनेपर स्त्री शरीर प्राप्त करके ही गोपीभावसे रास-प्रवेशका अधिकार मिला था।

दुजारीजी—जब आपकी साधना भगवान् विष्णुकी थी और उनके दर्शन भी हो गये फिर श्रीकृष्णके दर्शनका क्या हेतु है?

भाईजी—विष्णु भगवान्‌के दर्शन होनेके बाद श्रीकृष्ण भगवान्‌के

दर्शन होनेमें हेतु पूर्व जन्मकी उपासनाका अवशेष रहना है।

दुजारीजी—श्रीसेठजीकी उपासना निराकार ब्रह्मकी है फिर उनको भगवान् विष्णुके दर्शन क्यों हुए?

भाईजी—श्रीसेठजीको श्रीविष्णु भगवान्‌के दो-तीन बार दर्शन हुये थे। वह केवल भक्तिके प्रचारकी आज्ञा देनेके लिये हुए थे वैसे उनकी रुचि पहलेसे ही निराकार ब्रह्मकी थी और दर्शन होनेके बाद भी उनकी रुचि उसी तरफ है।

दुजारीजी—इस वृन्दावनको कुछ लोग चिन्मय मानते हैं। क्या यह ठीक है?

भाईजी—गोलोक नित्य धाम है, वहाँके सभी पदार्थ चिन्मय है उसी गोलोक धामके वृन्दावन एवं व्रजका इस भूलोक पर अवतरण हुआ है। अतः श्रद्धालु भक्तोंकी दृष्टिमें यह चिन्मय है।

दुजारीजी—अन्तर्जगत्‌की देवियाँ कैसी हैं?

भाईजी—इस अन्तर्जगत्‌की देवियोंका इतना प्रभाव है कि उनके प्रति स्वाभाविक ही मातृभाव हो जाता है।

दुजारीजी—आपमें ठीक-ठीक विश्वास हो गया है—इसे कैसे जानें?

भाईजी—जो मेरे सामने अपने दोषोंका दिग्दर्शन जितना खुलकर करता है उतना ही उसका मेरे प्रति विश्वास अधिक है।

दुजारीजी—विश्वास बढ़ानेका प्रधान साधन क्या है?

भाईजी—विश्वास बढ़ानेका यही सर्वोत्तम अन्तरंग साधन है कि अपने श्रद्धास्पदके सामने हृदय खोलकर अपने दोषोंका वर्णन करता रहे।

दुजारीजी—भगवद्दर्शनके समय मेरे लिये आप भगवान्‌से प्रार्थना करें?

भाईजी—भगवान्‌से प्रार्थना करनेका मेरा अधिकार नहीं है। पहले उनसे बातें होती थी आजकल नहीं। इसमें उन्हींकी इच्छा प्रधान है जब उनके दर्शन होते हैं तब इतनी विलक्षण अनिर्वचनीय मुग्ध अवस्था हो जाती है कि इस संसारकी बातोंका स्मरण ही नहीं रहता फिर प्रार्थना और वार्तालाप कैसे हो सकता है।

दुजारीजी—आपकी यथार्थ स्थिति जगत्‌को कैसे मालूम हो?

भाईजी—अपनी स्थितिको अत्यन्त गुप्त रखनेका भगवान्‌का आदेश है।

पुजारीजी—आपके समीप रहनेवाले जो आपके स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं क्या उन्हें भी लाभ होगा ?

भाईजी—गुलाबके बगीचेके समीप रहनेवालोंको जैसे उसकी सुगंधित वायु बिना परिश्रम ही स्पर्श करती है वैसे ही मेरे पास रहनेवालोंको मेरे अन्दरके परमाणु बाहर निकलकर वायु द्वारा स्पर्श करते ही हैं।

अन्तरंग साधकोंसे

(जनवरी १९५८)

(जिन अन्तरंग साधकोंके साथ वार्तालाप हुआ वे अभी जीवित हैं, उनके नाम देनेमें उन्हें संकोच है। इसलिये नाम नहीं दिये जा रहे हैं।)

क— जैसे जसीडीहमें आपको भगवान्‌के दर्शन हुए थे, वैसे मुझे भी करा दीजिये ?

भाईजी—ये सब व्यर्थकी बातें नहीं करनी चाहिये।

क—गोपी भावकी साधना कैसे की जाती है ?

भाईजी—पहले ध्यान होता है। फिर आगे जाकर भावमय देह मिलता है, भावमय देहसे ही लीलामें प्रवेश होता है। वह भी अधिकारके अनुसार ही लीलामें रहता है। सदा भी रह सकता है अथवा दिनमें कई बार जा सकता है या कई दिनोंमें अथवा कई वर्षोंमें एक बार।

क—भावमय देह क्या होता है ?

भाईजी—भावमयदेह बनता है; यह केवल मन की वृत्ति नहीं है।

क—भावमयदेह कैसे मिलता है ?

भाईजी—यह केवल उनकी कृपासे मिलता है। अपना काम तो केवल लालसा बढ़ाना है। अपना काम लालसा-उत्कंठा तीव्र करना है।

क—मनमें क्या भाव रखना चाहिये ?

भाईजी—वे प्रेमास्पद यदि लीलामें प्रवेश करानेसे राजी हों तो उनकी राजी, उनके सुखमें सुखी रहना है। वे न ले जानेमें सुखी हों तो न ले जायें।

क—प्रेममें रूठना भी होता है क्या ?

भाईजी—प्रेममें रूठना भी होता है। मान भी होता है। कभी खुशामद

कराना होता है, कभी खुशामद करना होता है। पर ये सब लौकिक भाव नहीं होते। अलग-अलग गोपियों के अलग-अलग भाव होते हैं। सबके भाव एक जैसे नहीं होते पर सबके मूलमें एक ही भाव रहता है कि प्रत्येक चेष्टासे प्रेमास्पद सुखी हों। उनकी प्रत्येक चेष्टा प्रेमास्पदको सुखी करने की होती है।

क—हम लोगोंपर कृपा करें।

भाईजी—तुम लोगों को देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। यह मैं केवल मुँह पर नहीं कहता। केवल तीन-चार व्यक्ति ही ऐसे हैं। कलकत्तेमें दो ही हैं।

क—प्रेममार्गके साधनमें विशेष क्या-क्या ध्यान रखना चाहिये?

भाईजी—दो बातों का विशेष ध्यान रखें। (१) प्रेमास्पदके सुखमें सुखी रहना, और (२) विषयोंमें आसक्तिका सर्वथा अभाव।

गोपियोंकी प्रत्येक चेष्टा होती थी उनको सुखी करनेके लिये। वे खाती थीं तो अपने स्वादके लिये नहीं बल्कि उनके खानेसे श्रीकृष्ण सुखी होंगे। दूसरा, इस बातका पूरा ध्यान रखें कि प्रेमके नामपर विषयोंमें आसक्त न हो जाय। ये चक्रधरजी महाराज हैं—कितने त्यागसे रहते हैं पर भीतरमें कितनी शृंगारकी लीलायें चलती हैं।

क—उनके सुखमें सुखी रहने की पहचान कैसे हो?

भाईजी—अपने मनके अनुकूल न होकर प्रतिकूल बात हो जाय तब भी वही प्रसन्नता रहे। यह भाव आवे कि इसमें वे सुखी हैं न? जप, ध्यान आदि साधन अन्तःकरणके शुद्ध होनेमें हेतु हैं।

क—एक दिन आप ध्यान कराइये।

भाईजी—मैं ध्यानका वर्णन बोल नहीं सकता। ऐसे-ऐसे दृश्य सामने आते हैं जो उच्चारण नहीं किये जा सकते। निकुञ्जकी लीलायें सामने आ जाती हैं। जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। दूसरी बात जब बोलने लगता हूँ तो वे दृश्य सामनेसे हट जाते हैं। यदि लीलाकी तरफ ध्यान रक्खूँ तो उसमें इतना तल्लीन हो जाता हूँ कि फिर बोल नहीं सकता।

क—स्त्रियोंसे सम्पर्क रखें कि नहीं?

भाईजी—चैतन्य महाप्रभु स्त्रीका नाम नहीं लेते थे। स्त्रीको प्रकृति कहते थे। एक बार उनका एक प्रिय शिष्य एक वृद्ध माईसे भिक्षा माँगकर ले आया। उनको पता लगने पर उसे निकाल दिया कि तुम संन्यासी होकर स्त्रीके

पास एकान्तमें जाकर भिक्षा माँगकर ले आये। स्त्रीका स्पर्श तो बहुत दूरकी बात, स्त्रीका दर्शन भी नहीं होना चाहिये।

क—निकुञ्ज किसे कहते हैं?

भाईजी—जहाँ बहुत सघन कुञ्ज, बिलकुल एकान्त हो, जहाँ कोई दूसरा जा ही न सके।

क—जो निकुञ्ज-लीला वाले गुप्त पद हैं, वे पढ़नेको दीजिये।

भाईजी—अभी तक उन्हें खोजा नहीं है। खोजकर दूँगा।

क—गोपीभावकी और क्या विशेषता है?

भाईजी—गोपियाँ श्रीकृष्णके सुखमें सुखी तो रहती ही थीं। उनमें एक और विशेष भाव यह रहता था कि वे श्रीराधा-माधवके आपसके विहारसे ही सुखका अनुभव करती थीं। स्वयं श्रीकृष्णके साथ विहार करना नहीं चाहती थीं। उनके मनमें यही रहता था कि राधा-माधवसे और माधव-राधासे सुखी होते रहें।

क—ऐसी उपासना करनेवाले आपके सम्पर्कवालोंमें कौन-कौन हैं?

भाईजी—गोस्वामीजी हैं तथा इलाहाबादके जज साहब और उनकी पत्नी हैं। उनकी स्थिति भी अच्छी है। अभी मेरे ध्यानमें ये ही हैं। गोस्वामीजी सर्वथा मेरे अनुगत हैं। वे सत्संगमें नहीं आते। इस मार्गकी ओर लोगोंकी रुचि कम ही होती है।

क—दुकानमें ग्राहक आते हैं, तब लीला-चिन्तन कैसे हो?

भाईजी—जब मन लीलामें विशेष लगे उस समय भगवान्‌से कह दिया करो कि ग्राहकोंको तुम्हीं सँभालो।

(फिर पदमें जो गोपीजनोंका ध्यान है उसका विस्तारसे अर्थ समझाया और कहा कि इसमें कुछ क्लिष्ट शब्द इसलिये रख दिये जिससे हर एक व्यक्ति पूरा समझ न सके। कुछ और पदोंके भाव बताये। 'ख' के बारेमें बोले उसका भाव सच्चा है और साधनाकी रुचि भी बहुत अच्छी है। उसको मैंने इतना समय नहीं दिया। लीलाकी कुछ बातें सुनाकर गोपियों और राधाजीके त्यागके भावोंको समझाने लगे।)

ये लीलायें कहने-सुनने की नहीं है। श्रीशुकदेवजी जैसे विरक्त कहनेवाले और परीक्षित जैसा मरणासन्न सुननेवाला फिर भी रासके प्रसंगको सुनाकर परीक्षितके मनमें शंका हो गयी तो शुकदेवजीने आगे वर्णन करना बन्द कर दिया।

क—मेरी काम-वासना तो अभी समाप्त नहीं हुई है।

भाईजी—काम-वासना थोड़ी बहुत है तो वह अपने ही समाप्त हो जायगी। उसके लिये चिन्ता मत करो।

क—मेरी आपसे प्रार्थना है कि ऐसी कृपा करें जिससे लीला चिन्तन होने लगे।

भाईजी—लीलामें मन भी लग जायगा—प्रेम भी हो जायगा। तुम्हारी स्मृति कई बार आती है।

क—कुछ पद निकुञ्ज लीलाके दीजिए।

भाईजी—पद तुम्हें पढ़ाये तो जा सकते हैं। परन्तु मनमें यह बात आती है कि मेरे मरनेके बाद लोग क्या कहेंगे कि कैसे भावोंका प्रचार करता था।

मेरे पास इतने पत्र आते हैं उनमें केवल तुम दोनोंके तथा दो-चार और लोगोंके ऐसे ही साधनकी बातोंके पत्र आते हैं। ऐसे पत्रोंको मैं पूरे ध्यानसे पढ़ता हूँ।

क—व्रजकी मधुर उपासनाकी कुछ विशेष बातें बतलाइये ?

भाईजी—व्रजकी मधुर उपासनामें प्रधानतया तीन भाव हैं।

(१) भगवान् मुरली मनोहर श्यामसुन्दर ही लक्ष्य और सेव्य हैं। श्रीराधा सहित असंख्य गोपीजन नित्य उनकी सेवामें संलग्न हैं। भगवान् श्यामसुन्दर सभी गोपियोंके साथ रास विलास करते हैं। यह रासका भाव है। अनन्त गोपियोंकी सेवा करके श्रीश्यामसुन्दर सुख प्राप्त करते हुए उन्हें सुखी करते हैं।

(२) श्रीयुगल स्वरूप सेव्य हैं—इसमें राधाजी सहित श्रीकृष्ण हैं—परन्तु प्रधानता श्रीकृष्णकी है। यहाँ भी अनन्त गोपीजन श्रीमाधव-राधाकी सेवामें लगी हैं तथा उनके सुख-सम्पादनमें प्रयत्नशील हैं। श्रीराधाकी प्रेम सेवामें सब अनुगत तथा सहायक हैं। श्रीकृष्णके सुखार्थ श्रीराधाकी प्रत्येक चेष्टामें गोपियोंका यथायोग्य सहयोग है। दोनोंके मिलनमें सबको परम सुख है। यह निकुञ्जलीलाका एक प्रधान अंग है।

(३) निकुञ्ज-लीला परम रहस्यमयी अनन्त गोपनीय है। उस निकुञ्जगत उपासनामें परमाह्लादिनी महाभावरूपा निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा ही आराध्या है। स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र, गोपीजन, सखी, मञ्जरी—सभी प्राणी और व्रजका सभी कुछ—वृक्ष, लता, सरिता, सरोवर—श्रीराधाके सुखकी अनन्य कामना करते हुए उनके सुख सम्पादनमें संलग्न है। यहाँ श्रीकृष्णकी प्रत्येक चेष्टा महिमामयी श्रीराधाके

सुखार्थ ही होती है।

इनमें भी प्रथम शृंगारमयी श्रीकृष्णोपासना है।

दूसरीमें शृंगारमयी युगलोपासना है।

तीसरीमें शृंगारमयी श्रीराधा उपासना है।

इन तीनोंमें ही अपनी रुचि, मानस-स्थिति, अधिकार तथा योग्यताके अनुसार प्रेमी साधक अपनी सेवाका स्थान और रूप चुनकर तदनुसार उपासना कर सकता है। जितनी-जितनी ही भोग-विरागकी अधिकता, चित्तकी निर्मलता तथा विशुद्धभावकी प्रगाढ़ता होगी, उतनी-उतनी ही साधना अधिक रसमयी, गहरी तथा इष्टको प्रिय होगी।

(जनवरी १९५९)

क—आप मनसे पत्र कैसे देते हैं और किस-किसको देते हैं?

भाईजी—जब समय और कार्योंमें निकल गया और पत्र लिखनेका समय नहीं बचा तो मनसे तुम लोगोंको पत्र लिखता हूँ। उनमें भगवान्‌की बातें ही रहती हैं। पत्र कभी छोटा होता है, कभी बहुत बड़ा हो जाता है। मनसे मिलता भी हूँ। स्मरण अलग है, मनसे मिलन अलग है। मैं मिलता हूँ। सब लोगोंसे नहीं मिलता केवल कुछ व्यक्तियोंसे ही मिलता हूँ। (सोच-सोचकर कुछ नाम बताये।) तुम लोगोंसे अन्तरंग बातें करनेमें हर्ज नहीं है। लोगोंमें इन बातोंका प्रचार हो जाये इससे बहुत डरता हूँ। तुम्हारे मनमें कोई विपरीत भावना आ जाय—ऐसी मुझे बिल्कुल आशा नहीं है। जैसे श्रीकृष्णके पास एक दिन युधिष्ठिर गये तब उनके बड़े जोरसे श्वास चल रही थी। जब युधिष्ठिरने इसका रहस्य पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं भीष्मसे मिलने गया था। वैसी ही बात अपने मिलनेकी है।

क—लीलाके साधनमें क्या सावधानी रखनी चाहिये?

भाईजी—इसमें तीन बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये। (१) लीलामें कोई लौकिक बात न आवे। (२) अपने स्वयं लीलाका अनुकरण कभी न करे, और (३) काम-वासना पैदा न हो।

क—उस समय स्वयं श्रीकृष्णसे मिलने की आ जाती है।

भाईजी—यह ऊँचा भाव तो नहीं है। ललिता आदि आठ सखियाँ थीं, उनमें तो नायिका और सखी दोनों भाव थे। कई और अन्तरंग सखियाँ थीं, उनको प्रिय सखी भी कहते हैं। वे केवल प्रिया-प्रियतमको मिलानेमें तथा उनके सुख-

सम्पादनमें ही लगी रहती थीं। श्रीराधाजीने इनकी परीक्षा लेकर देखी पर वे श्रीकृष्णसे मिलती नहीं। उनको इन दोनोंके मिलनमें ही सुख होता है। ये सखियाँ श्रीराधाजीको अत्यन्त प्यारी थीं। गुप्त लीलामें जहाँ ललिता आदि भी नहीं रहतीं, वहाँ भी वे जा सकती हैं। क्योंकि उनमें वहाँ नायिका भाव आनेकी कोई गुँजाइश ही नहीं। मधुर भावके उपासक बहुत कम है।

क—बाबा (स्वामी चक्रधरजी महाराज) से हम लोगोंके बारेमें क्या बात होती है?

भाईजी—कोई निश्चित नहीं है कभी कुछ हो जाती है, कभी कुछ। वे एक दिन बोले इनको भगवान्‌का प्रेम प्राप्त होगा। जब आज मैंने कहा कि वे लोग आये हैं तो बहुत प्रसन्न हुए।

तुम.....से लीला की बात करते हो सो ठीक है पर उसमें भी मधुरलीलाके कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो मुँहसे नहीं बोलने चाहिये। .....से भगवान्‌की या मेरी बातें किया करो। उसके भाव बहुत सुन्दर हैं पर मधुर भावकी लीलामें उसका प्रवेश नहीं है। इसलिये मधुर भावकी लीलाकी बात उसके सामने नहीं करनी चाहिये। पर हर एकके सामने मेरी बात भी नहीं करनी चाहिये। जैसे ..... के सामने मेरी बड़ाई शुद्ध नियतसे करते थे पर उनके असर उलटा पड़ा। वे मेरेमें दोष देखने लगे।

क—मैं दूसरोंके सामने नहीं करता। केवल निकटके लोगोंके साथ करता हूँ।

भाईजी—उसमें हर्ज नहीं है पर देखो, इसमें भी एक बात आ ही जाती है। जैसे कोई तुम्हारी बड़ाई मेरे सामने करे और मुझे अच्छी लगे तो मेरे मुँहसे निकल ही जाता है कि उसका भाव अच्छा है, उसके लीला-चिन्तन होता है—वैसे ही जहाँ प्रेम होता है, अपनत्व होता है वहाँ उसकी बड़ाईकी बात निकल ही जाती है।

क—चैतन्य महाप्रभुके सखी-भाव, राधा-भाव दोनों रहते थे क्या?

भाईजी—उनके तो राधा-भाव ही था। अपने लोग तो इन भावोंके योग्य नहीं है। अपने तो कृपासे ही होता है। वे तो सर्वथा योग्य थे।

क—पूज्य बाबाके हाथके लिखे कुछ कागज जो आपके बारेमें थे जिसे रतनगढ़में पढ़नेके लिये दिये थे—उन बातोंको स्पष्ट रूपसे समझाइये?

भाईजी—इस ढाँचेमें जो हनुमानप्रसाद पोद्दार था वह तो राधारानीमें लीन हो गया—उसका राधारानीके साथ तादात्म्य हो गया। * अब तीन अवस्था है—(१) वह राधामें लीन हो गया तो राधारानीकी लीला श्रीकृष्णके साथ चल रही है। (२) पाञ्चभौतिक ढाँचेका सब व्यवहार श्रीकृष्ण कर रहे हैं। (३) इसके जो भोग हैं वे प्रारब्धके अनुसार हो रहे हैं और इसका संचालन—देखना, सुनना, बोलना सब श्रीकृष्ण कर रहे हैं। जिनकी श्रद्धा है उनके लिये तो श्रीकृष्ण ही हैं, उन्हें वही लाभ मिलेगा। नहीं तो जो कल्याणका काम कर रहा है—यही सामने दिखायी देता है। तीनों चीजें ठीक एक कालमें एक साथ चल रही हैं।

ये बातें अत्यन्त गुप्त हैं, मैंने आज तक किसीको नहीं बताई। तुम लोगोंके सामने कैसे निकल गई, पता नहीं श्रीकृष्णकी इच्छा होगी। मैंने गोस्वामीजीको भी नहीं बतायी। बाबाको कैसे पता चल गया, मुझे तो पहले यह भी पता नहीं था। तुम भी ये बातें किसीको मत कहना। केवल अपने तक ही सीमित रखना। अब यहाँ अधिक दिन रहनेकी इच्छा नहीं होती।

क—हम लोगोंका क्या होगा?

भाईजी—होगा क्या—मंगल होगा। सम्यक् हो गया सो हो गया।

तुम लोग तो मनसे साथ रहते ही हो। यदि भावमें एकदम तल्लीनता हो तो भगवान् वहाँ सशरीर प्रकट हो सकते हैं। अभी बनारसमें बद्रीदासजीकी बड़ी अच्छी मृत्यु हुई। वे मरते समय बोले—'मैं तो आपको छोड़कर आ गया पर आपने मेरेको नहीं छोड़ा। प्राण निकलनेके समय बोले—मेरे सामने गोपालजी हैं—एक तरफ भाईजी खड़े हैं और एक तरफ बाबा खड़े हैं। बाबा कह रहे हैं—तुम घबराना मत—तुम्हारे लिये रास्ता साफ कर दिया है।'

मनसे तो तुम लोग पास रहते ही हो। तुम चार-पाँच व्यक्तियोंका भाव मुझे बहुत अच्छा लगता है; और लोग तो प्रायः मेरे पास भगवान्‌की बातें न करके संसारकी बातें ही करने आते हैं। तुम लोगोंकी याद भी बराबर आती रहती है।

क—मुझको लीला एक-सी नहीं चलती।

---

* : 'गूढ़उ-तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं'॥ (मानस/बाल०/१०९/२) इस अर्धालीमें संत-शिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने बहुत सुन्दर सिद्धान्तकी बात कही है कि संत लोग जहाँ अधिकारी पात्र पाते हैं, वहाँ उससे गुप्ततत्त्व नहीं छिपाते। यह सिद्धान्त भी उन्होंने कोई नया नहीं बताया। इसका प्रतिपादन तो 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' ने किया, जो विश्वके सर्वोत्कृष्ट उपदेश माने जाते हैं। अर्जुनने जब कहा—'शिष्यस्तेऽहं शाधि

भाईजी—तुम चिन्ता मत करो—श्यामसुन्दर जानें। पुरुषोंको व्यापार आदिकी खटपट ज्यादा आती है। स्त्रियोंमें श्रद्धा भी स्वाभाविक ही अधिक होती है।

क—आप हमलोगोंके लिये कोई अनुष्ठान कर दें जिससे हम सब आपके पास ही रहने लग जायँ।

भाईजी—(हँसते हुए) मैं कहाँ अनुष्ठान करता हूँ।

मां त्वां प्रयत्नम्।' (गीता २।७) तब भगवान्‌ने उपदेश शुरू किया। इसे गीताजीका बीज कहा जाता है। अर्जुन बहुत वर्षोंसे भगवान्‌के सखा थे; साथ रहते, खाते पीते थे पर उपदेश कभी नहीं लिया। यह हमारी भारतीय परम्परा है कि उपदेश पात्रको ही दिया जाता है। जब अर्जुनने कहा कि मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरणापन्न हुए मुझे शिक्षा दीजिये—तभी उपदेश प्रारम्भ हुआ। सारा उपदेश देकर जब उपसंहार करने लगे तो वे १८ वें अध्यायके बासठवें श्लोकमें भगवान्‌ने कहा—**'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।'**

यद्यपि गीतामें ऐसे शब्द तो नहीं हैं पर जिन संतोंने इस लीलाको प्रत्यक्ष देखा उनके मुँहसे सुननेको मिला कि ये शब्द सुनते ही अर्जुनके आँसू आ गये कि मैंने इनकी शरण होकर अपने कल्याणका साधन पूछा और ये कहते हैं—'तुम उस परमेश्वरकी शरणमें जा, उनकी कृपासे तुम परम शान्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त होगे।' अर्जुनके आँसू देखते ही भगवान् द्रवित हो गये और तुममें उपयुक्त पात्रता देखकर दो श्लोकोंके बाद ही तुरन्त अपनी शैली बदलकर बोले—'मन्मना भव मद्भक्तो ..... मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने।' अरे! तू कहाँ उस परमेश्वरकी शरण जायगा। तू तो मेरेमें ही मन लगा दे, मेरा भक्त बन जा और तो क्या तू सब धर्मोंको त्यागकर केवल मेरी शरणमें आ जा। यह कहते ही भगवान्‌के ध्यानमें आया और अगले ही श्लोकमें उन्होंने कहा—इस गुप्त सत्यको कभी भी मेरे अभक्त या मुझमें दोष देखनेवालेको कभी नहीं बताना।

यह केवल भगवान्‌की ही बात नहीं है सभी सच्चे संतोंके जीवनमें यही बात आती है। जिन लोगोंने पावनावतार चैतन्य महाप्रभुके जीवनका अनुशीलन किया है वे अच्छी तरह जानते हैं कि योग्य पात्रोंके सामने वे भगवान्‌के स्थानपर स्वयं पूजा स्वीकार करते थे; और अपने मुँहसे कहते थे—मेरी पूजा करो। क्या वे अपनेको **'तृणादपि सुनिचेन'** मानते थे और अपात्रके द्वारा अपमान किये जानेपर मरनेको तैयार हो जाते थे अथवा यह दंभ था? कदापि नहीं—यहाँ अधिकारी भेदकी बात आ जाती है जिसका तुलसीदासजीने प्रारम्भमें लिखी अर्धालीमें संकेत किया है। अधिकारीके समक्ष गुप्त बात कही जाती है और यही बात अन्य सभी संतोंमें—पौराणिक, रामकृष्ण परमहंस आदिके जीवनमें मिलती है। विशेषतया भक्ति मार्गके संतोंमें यह बात अधिक देखनेको मिलती है।

यहाँ एक बात और लिखना चाहता हूँ। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको जिन्हें भाईजी गुरुतुल्य मानते थे, एक कट्टर मर्यादावादी संत थे। अपनी करनी और कथनी दोनोंमें पूर्ण मर्यादाका पालन करते थे। उनके अन्तरंग साधक जो आज भी हैं वे जानते हैं कि उनकी प्राइवेट सत्संगकी गोष्ठी कई बार होती थी। उसमें इने गिने व्यक्तियोंका ही प्रवेश था जिनके सामने वे अपने प्रभावकी बातें कुछ खुले रूपमें कहते थे। भगवान्‌की विशेष कृपा एवं पू० श्रीसेठजीके अत्यन्त स्नेहके फलस्वरूप कुछ वर्षोंतक मुझे भी इन गोष्ठियोंमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य मिला है। यद्यपि इन बातोंको प्रकट करना उचित नहीं

क—हमलोग आपसमें बात करते हैं कि हमलोग आगे भी श्रीराधारानीके पास एक साथ ही रहेंगे।

क—आगेके लिये क्यों चिन्ता करते हो। भगवान्‌के सब ध्यानमें है। तुम लोगोंको भगवान्‌के पार्षदत्वकी प्राप्ति होगी, स्थान सबको भावानुसार मिलेगा।

क—सखी भावकी कुछ बातें बताइये ?

भाईजी—सखी कभी नायिका बनना नहीं चाहती। श्रीराधाके सुखमें

होगा क्योंकि अभी जो उनके अनुगत हैं उनसे उपलब्ध सूचनेको मिलेगा पर प्रसंगवशके केवल दो बातें मैं प्रकट कर रहा हूँ। एक तो पू० श्रीसेठजीने कहा था कि अपनावाले कुछ श्लोकोंको छोड़कर बाकी गीताजी मैं अपनी तरफसे श्रद्धालुजनोंके सामने कह सकता हूँ। यह प्रकारान्तरसे भगवान्‌के साथ तादात्म्यकी ही बात है। दूसरी बात, श्रीघनश्यामदासजी जालानका पू० सेठजीमें अत्यधिक प्रेम था। जिनके लिये श्रीसेठजीने स्वयं अपने पत्रमें श्रीभाईजीको लिखा कि 'मुझमें सबसे अधिक प्रेम घनश्यामका है।(देखिये ' श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति ' पृ०सं० ४१२ पद्य सं० १०) श्रीघनश्यामदासजीका देहावसान २४ मई १९५८ को गीताभवनके सामने गंगाघाटपर श्रीसेठजी एवं भाईजीके सान्निध्यमें हुआ। देहावसानके पूर्व सबकी उपस्थितिमें घनश्यामजीने पूजा स्वीकार की। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि घनश्यामजीका उनमें भगवद्भाव था और इसी भावसे उन्होंने पूजा की। बादमें श्रीसेठजीने यह कहा कि इनकी अन्तिम अवस्था होनेके कारण उन्हें स्वीकार करना पड़ा। पू० सेठजीके सम्बन्धमें पू० बाबूने अपनी अनुभूति व्यक्त करते हुए अपने अग्रज पं० देवदत्त जी मिश्रको दि० २३-१०-१९३७ के पत्रमें लिखा था—"श्रीसेठजीमें—मैं भगवान् नारायण हूँ'—यह भाव अक्षुण्ण आठों पहर रहता है। ये अपनेको शंख, चक्र, गदा एवं पद्मधारी चतुर्भुज ही देखते हैं। कभी-कभी इनका आन्तरिक भाव पूर्ण विच्छिन्नरूप सच्चिदानन्दघन ब्रह्मस्वरूपमें एकाकार हो जाता है।"

विशिष्ट दिव्यावेशके अतिरिक्तके पावन क्षणोंमें ऐसे परमान्तरिक रहस्योंका अकस्मात् उद्घाटन हो जाया करता है। ऐसे ही पावन क्षणोंमें चैतन्य महाप्रभुने अष्ट प्रहरिया अर्चना करवाई थी। ऐसे ही पावन ही क्षणोंमें श्रीसेठजीने घनश्यामदासजी जालानसे पूजा स्वीकार की और ऐसे ही पावन क्षणोंमें श्रीभाईजी द्वारा अधिकारी पात्रके समक्ष एक अन्तरंगतम तथ्य उद्भासित हुआ और तुरन्त उन्होंने कह भी दिया कि यह एक अत्यन्त गुप्त बात है, तुम्हारे सामने कैसे निकल गयी, पता नहीं; श्रीकृष्णकी इच्छा होगी। यह मैंने आजतक किसीको नहीं कही। न गोस्वामीजीको और न बाबाको ही। बाबाको कैसे पता लगी—मुझे तो पहले यह भी पता नहीं था। तुम कभी इस बातको मेरे जीवनकालमें किसीसे नहीं कहना और श्रोताने इस आज्ञाका पालन भी किया। मैं भी यह कहनेका साहस कर सकता हूँ कि पू० भाईजीकी व्यक्तिगत बातोंका सबसे बड़ा संग्रह मेरे पिताजीके पास ही था तथा अन्य व्यक्तियोंके संग्रह भी देखने पढ़नेका मुझे सौभाग्य मिला है। इस एक स्थानके अतिरिक्त कहीं भी भाईजीके मुँहसे यह कहा हुआ नहीं मिला। उनके महत्त्वकी बहुत विशेष बातें मुझे पिताजीके संग्रहमें मिली हैं और मैंने उन्हें ' श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति 'में तथा इस पुस्तकमें प्रकट भी की है। कुछ अन्य विशिष्ट अनुगतोंके सामने भाईजीने यह तो कुछ स्थानोंपर कहा था कि—' बाबा कई लोगोंके सामने अपना अनुभव बताते हैं कि इस ढाँचेमें जो हनुमान प्रसाद था वह तो कभीका मर चुका अब तो यहाँ श्रीकृष्ण क्रियाशील हैं और यह ढाँचा श्रीकृष्णके संकल्पसे ही टिका हुआ है। इस ढाँचेमें जिनको श्रीनीलसुन्दर नहीं दीखते उनको

ही अपना सुख मानती है। श्रीराधाने कई बार उनकी परीक्षा भी ली। श्रीकृष्णको उनके पास भेजा, पर वे नहीं मिली। राधाजीका ही मिलन चाहा। तुम लोगोंपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। मैं तुम दो-चार व्यक्तियोंके सामने ही इतना खुला हूँ। अपनेमें श्रद्धा करनेकी बात और किसीसे नहीं कहता।

(अप्रैल १९६०)

क—पू० बाबाका आपके प्रति क्या भाव है?

भाईजी—बाबाका मेरे प्रति श्रीकृष्ण-भाव है। .....का भाव अलग है। वह मुझे ही सब कुछ मानती है। वह मुझमें भगवत्ता है—इस भावसे प्रेम नहीं करती। जैसे जो है उसीसे प्रेम करना चाहती है।

यदि भगवत्ता समझकर प्रेम किया जाय तो कोई कभी उसे समझा दे कि इनमें कुछ भगवत्ता नहीं है तो प्रेम कम हो जायगा।

क—हम लोग तो यह समझते हैं कि ये हमारे श्रीकृष्ण जैसे भी है-ये हमारे हैं।

भाईजी—हाँ, यह भाव ठीक है।

आँखोंमें दृष्टि नहीं है।' पर यह बात अपने पूँहसे भाईजीने अन्तिम दिनोंमें विशेष अनुगतोंके सामने ही कही। वैसे इसी तरहकी बात दूसरे शब्दोंमें उन्होंने अपने पदोंकी भूमिकामें लिखी है जिसे गीताप्रेसने 'पद रत्नाकर' में प्रकाशित की है—''इसी बीच मंद-मंद मुस्कुराते हुए जन-मन-मोहन अनन्त आनन्दाम्बुधि श्रीश्यामसुन्दर आते सिरपर वरद हस्त रखकर कहते ..... चल मेरे साथ व्रजमें; देख वहाँ मेरी दिव्य लीला और परमानन्द सागरमें निमग्न हो जा। .....मनने शत-शत विविध विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूप-माधुरी देखी, समझी और किसी-किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। कभी कभी सौन्दर्य-सुधासागरमें जाकर अपने-आपको खो दिया।'' अन्यथा अधिकांशतः वे यही कहा करते थे कि मैं तो अनेक कमजोरियोंसे भरा एक साधारण प्राणी हूँ। यह कहना भी दंभ नहीं था बल्कि चैतन्य महाप्रभु तथा सूर, तुलसी आदि अन्य भक्तोंकी तरह उनका अपना दैन्य था।

देवर्षि नारदकी यह उद्घोषणा है 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।'—श्रीभगवान् और उनके परम भक्तमें भेदका अभाव हो जाता है। पर ये सब बातें कहने लिखनेमें आजके युगमें सबसे बड़ा संकोच है कि इन बातोंका अपात्रों द्वारा दुरुपयोग करना। यद्यपि दुरुपयोग करनेवाले तो स्वयं भगवान्‌की लीलाओंका भी दुरुपयोग करते हैं, फिर इन बातोंका करनेमें क्या आश्चर्य है। न तो वैसे अधिकारी पात्र आजके समयमें मिलते हैं और असंत तो संतके पदपर बैठकर स्वयं कहकर अपनी पूजा तो करवाते ही हैं और भी न जाने क्या-क्या करके अपने लिये और तथाकथित शिष्य-शिष्याओंके लिये नरकका द्वार खोलते हैं पर ऐसे दुरुपयोगके भयसे सत्यको छिपाना भी अनुचित प्रतीत होता है। जिनको अपनी वासनाकी पूर्ति करनी है वे किसीके कहने-लिखनेकी अपेक्षा नहीं रखते हैं। पारस पारस ही रहेगा और पत्थर-पत्थर ही—चाहे दोनोंके देखनेमें साम्य हो या नहीं।

— श्यामसुन्दर दुजारी

क—हम तीनोंका मन अब आपका है।

भाईजी—यह सौदा कर लिया है न! अब कभी वापस मत माँगना। अब तुम लोग निश्चिन्त रहो। तुम लोगोंका मन अब मेरा हो गया है। अब जो मुझे करना है वह मैं करूँगा। बाबा तुम लोगों पर बहुत प्रसन्न हैं।

(अप्रैल १९६०, दूसरी बैठकमें)

भाईजी—बाबाने कहा कि इन लोगोंको कह देना कि इस हाड़-मांसके ढाँचेमें ही आसक्ति न करें। नहीं तो यह गिरनेपर निराशा हो जायेगी। प्रधानता तो नील-श्यामकी है। वह नील-श्याम ही यह बना हुआ है। हनुमानप्रसाद नामक जो व्यक्ति था, वह तो कभीका मर चुका। यह ढाँचा केवल श्रीकृष्णका संकल्प है।

तुम लोगोंको कभी नील-श्याम, कभी उसकी जगह ढाँचा, कभी नील-श्याम दिखायी देना चाहिये। इस तरह वही नील-श्याम यह बना हुआ है—यह एकात्मता होनी चाहिये। अगर तुम लोग दो देखोगे तो यह शरीर जाते ही निराशा हो जायेगी, अपनेको असहाय मानोगे कि हनुमान प्रसाद अब नहीं है।

क—यह जो हमारे सामने हैं ये ही नील-श्याम हैं?

भाईजी—ऐसा न करके-वे ही ये हैं यह मानना चाहिये। क्योंकि श्रीकृष्ण ही ये हैं—ऐसा मानोगे तो यह अदृश्य होवें तब भी वह तो बना ही रहेगा।

क—गोपियाँ तो नटवर वेशको ही अपना मानती थीं।

भाईजी—वह नटवर वेश तो स्थिर था, वह चिन्मय था। यह तो नाश हो जायगा। तुम लोगोंपर यह श्रीकृष्णकी अत्यन्त कृपा है जो सुविधाके लिये उन्होंने अपना प्रतीक सामने रखा है। जिससे तुम लोगोंको सेवा करनेमें कोई तकलीफ न हो। तुम समझ गये होगे। नील-श्यामको न मानना ठीक नहीं क्योंकि इससे उनकी अवज्ञा होती है। उसको न मानो तो तुम लोगोंने उसे बहुत छोटा बना दिया। इतने महानको इतना छोटा बना दिया?

क—हमें आधा घण्टा हमेशा समय दे दिया करिये?

भाईजी—मैं तो खुद चाहता हूँ तुम लोगोंसे बात करना पर क्या करूँ यहाँ इतनी भीड़में कठिन हो जाता है।

क—मैं अभी गा रहा था—

सहज अकिंचन तन मन सगरे भरे रहें पिय नेह।

आठौं जाम धाम प्रियतमके बरसत रस को मेह ॥

भाईजी—बहुत सुन्दर है; ऐसा मन बन जाना चाहिये। प्रेममें मिलनेपर भी अतृप्ति बनी रहती है। देखो, प्रेमास्पद प्रेमीके हर समय पास रहता है। वह प्रेमीसे इतना अधिक आतुर रहता है कि वह बिना बताये—जैसे प्रेमी अपने प्रेमको छिपाये रखता है वैसे ही वह प्रेमास्पद अपने प्रेमको छिपाये हुए उसके पास रहता है। उसके लिये नहीं अपितु स्वयं रस लेनेके लिये। तुम जिस स्थान पर उसे नहीं रखना चाहते हो उस स्थानपर भी वह पासमें रहता है। उस प्रेमीसे प्रेमास्पदका मन बहुत अधिक रहता है। वह प्रेमी तो पास रहनेमें असमर्थ है पर प्रेमास्पद असमर्थ नहीं है। इसलिये वह नित्य-निरन्तर पास रहता है। उसको बीच-बीचमें प्रत्यक्षकी तरह दिखा-दिखाकर और भी अधीर बना देता है। तुम सब समझ गये होगे। तुम लोग प्रेम दो।

क—देनेको कुछ है ही नहीं।

भाईजी—फिर, लो।

क—लेनेकी इच्छा है नहीं।

भाईजी—तब डूबे रहो प्रेममें। सोच लेना; डूबनेपर फिर निकल नहीं सकोगे, फिर तो सबकुछ जला देना पड़ेगा। उसकी होलीपर नाचना पड़ेगा। भय प्रलोभन बहुत तरहसे आयेंगे। बड़े-बड़े देवता मान-सम्मान देंगे। सबका तिरस्कार करके केवल प्रेमास्पदकी चाह हो।

देखो, घरवाले सब दुकरा देंगे। संसारमें अपमान हो जायगा, सब कुछ छीना जायेगा और फिर जिस प्रेमास्पदके लिये यह सब सहा—वह भी छिटका देगा। इसपर भी भाव न गिरे। तब वह उसका बंदी बन जायगा। गोपियोंका, श्रीराधाका यही भाव था। श्रीकृष्ण उन्हें छोड़कर मथुरा चले गये। गोपियोंको लोग कलंकिनी बताते थे।

(दिसम्बर १९६३)

क—यहाँ लोग कहते हैं—बाबाके द्वारा ही चीज मिलेगी—तुम लोगोंकी पद्धति ठीक नहीं है।

भाईजी—तुम लोगोंकी पद्धति बहुत ठीक है। लोग अपनी आँखसे बोलते हैं। वे कहते हैं कि बाबा जिस आँखसे मुझे देखते हैं—वैसी आँख बाबाकी कृपासे ही मिलेगी। भाईजी तो अपने बारेमें कुछ कहेंगे नहीं केवल

सत्संगकी बातें कहेंगे पर मैं स्वयं सब बातें बोलता हूँ यह उनको मालूम नहीं है। तुम्हें अलग (मेरे अतिरिक्त) और बातें जाननेकी कोई जरूरत नहीं है। जो कुछ करना-कराना है मैं अपने आप कर लूँगा।

क—बाबा कहते हैं नील वरद दिखते हैं कि ही, इसका क्या मतलब?

भाईजी—मनमें एक ही निश्चय कि भगवान् नहीं है। निश्चय एक ही रहे और सम्बन्ध बिल्कुल अपना जो है वही माने। कोई आवश्यकता नहीं कि नीलवरद ही दीखे—मनका जो निश्चय है भगवान्‌का वही नीलवरद देखना है। अभी तक ममता, आसक्ति, जगत छूटा नहीं है, इस स्थितिमें यह भगवान् वाला भाव बचा देगा। यह जो विशुद्ध अनुराग है यही भगवान्‌का स्वरूप है।

(अगस्त १९६६)

क—.....के आजकल अशान्ति बहुत अधिक रहती है?

भाईजी—अशान्ति तो मनके अनुकूल चाहनेसे होती है। भगवान्‌का मंगल विधान माननेसे अशान्ति मिटेगी।

क—वह कहती है कि भगवान्‌ने ही तो ऐसी दशा कर रखी है?

भाईजी—ऐसे भगवान्‌को फिर छोड़ दे या उनके विधानमें प्रसन्न रहे। भगवान् अमंगल कर ही नहीं सकते—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**'। मैं तो आजकल लोगोंसे बहुत घबराता हूँ। चाहता हूँ चुपचाप अकेला पड़ा रहूँ।

क—फिर आपने इतने लोगोंको पीछे लगाया ही क्यों था?

भाईजी—.....(हँसने लगे।)

क—मैं राधाष्टमीके पहले दिन नहीं आऊँ या एक-दो दिन पहले आ जाऊँ?

भाईजी—जब जँचे तब आ जाना। माताजी-पिताजीको साथ नहीं लाना चाहिये।

क—पूज्य बाबा कहते हैं कि तुम लोगोंको पोद्दारजी नवनीरद वरद दीखते हैं कि नहीं? इसका क्या अर्थ है?

भाईजी—इसका अर्थ यह है कि बाबाने पाँच-सात व्यक्तियोंसे पहले कह दिया था कि भाईजीमें साक्षात् श्रीकृष्ण उतर गये हैं और मुझे साक्षात् श्रीकृष्णने कहा है कि हनुमानप्रसादमें मैं ही हूँ। इस बातसे कुछ व्यक्तियोंपर असर ठीक नहीं पड़ा। इसके बाद बाबा भाईजीको जो भगवान् कहते या मानते हैं, उनसे पूछते हैं कि तुम्हें क्या दीखता है? जो कहते हैं कि यह ढाँचा ही

दीखता है तो कहते हैं भगवान् कहाँ दीखे। नवनीरद दीखनेका अर्थ है—बस मेरे लिये ये बिलकुल भगवान् हैं। यह जो भाव है यही नवनीरद-वरद् दीखना है। उसके लिये अलग नवनीरद दीखनेकी जरूरत नहीं है।

क—आपको अधिक-से-अधिक सुख कैसे प्राप्त हो?

भाईजी—मैं जो नहीं चाहता—वैसा मेरे मनके विपरीत कुछ भी न करे। तुम दोनोंपर अधिक जिम्मेवारी है। ऐसा सुन्दर व्यवहार करो कि लोग तुम्हारा आदर्श सीखें। '**तदर्पिताखिलाचारिता**'—अपना काम अलग रहता ही नहीं। '**यो न हृष्यति न द्वेष्टि**' जबतक सुख-दुःख अनुभव करनेवाला मन है तबतक समर्पणमें कमी है। वहाँ तो '**करिष्ये वचनं तव**' होता है।

(जून १९६७)

भाईजी—मेरा जो स्नेह तुम लोगोंपर है वह उसी प्रकार बहुत है। आजकल मुझे जगत्की स्मृति बहुत कम रहती है। जबरदस्ती मन वहाँसे लाना पड़ता है—अभी भी बड़ा जबरदस्तीसे यहाँ ला रखा है। जब तुम्हारी स्मृति आती है तब एक बड़ा ही स्नेह- प्यारका भाव आता है। तुम्हारे जो इस प्रकारके स्वप्न आते हैं—वे तुम्हारे भीतरी भावोंका दिग्दर्शन है। मनुष्यके स्वप्नमें या पागलपनमें उसके भावोंका पता लगता है। उस समय उसका विवेक तो रहता नहीं। जिस प्रकारका जैसा भाव होता है—वही सामने आ जाता है।

क—हमलोग रविवार, गुरुवार दो दिन सप्ताहमें मिलकर साधनकी बातें करते हैं। भाव तो आपके देनेसे होगा। हमारे साधनसे तो कुछ होनेको नहीं है। पहले तो आप बहुत बातें करते थे, आजकल तो उपराम-से लगते हैं।

भाईजी—स्नेह घटनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। मेरी वृत्ति ही जगत्में रहना नहीं चाहती। जहाँ जगत्का सम्बन्ध रहता है, वहाँ घटता है। जहाँ किसी तरहकी कोई कामना नहीं—वहाँ घटनेका प्रश्न ही नहीं होता।

क—मैं अपनी तरफसे आपको सुख कैसे पहुँचाऊँ?

भाईजी—अधिक-से-अधिक भगवान्में लगे रहो। जगत्के प्रपञ्चोंका तो अन्त ही नहीं है। उनमें अनुकूलतासे तो किसीको आजतक शान्ति मिली नहीं।

(फरवरी १९६८)

क—भगवान्की लीला प्रत्यक्ष कैसे दिखती है?

भाईजी—इसी मनमें, इन्द्रियोंमें दिव्यता आ जाती है इससे वें प्रत्यक्ष

दिखती रहती हैं। भाव देह भी मिलता है पर वह बहुत ही कम जैसे रास आदिमें भाव देहसे प्रवेश होता है।

क—श्रीकृष्ण भीतर भी दीखें और बाहर भी दीखें—यह जो कहा जाता है वह कैसे? भीतर तो ठीक है—उसी समय बाहर कैसे?

भाईजी—जहाँ-जहाँ आँखें जाती हैं, जहाँ-जहाँ कान जाते हैं वहाँ-वहाँ प्रियतम दीखें। उनकी वाणी सुनायी दे। ऐसे होता है बाहर भी दिखायी देना।

क—आपको समाधि लगती है, उसमें बादमें वे चीजें रहती हैं कि नहीं?

भाईजी—बहुत थोड़ी, कोई-कोई।

क—पहले आपके मनमें थी कि १०-२० व्यक्ति इस प्रेम मार्गमें आगे बढ़ें—वैसे आपके मन लायक हुए या नहीं?

भाईजी—वैसी चीज हुई नहीं। यहाँ बगीचेमें तो एक गोस्वामीजीको छोड़कर कोई है ही नहीं। बाबाकी बात अलग है। एक जज साहब हैं—वे कुछ इस मार्गके हैं। कुछ और थोड़े हैं उनके नाम नहीं बताऊँगा। तुम लोगोंका उनसे सम्पर्क नहीं है।

क—इस प्रेम मार्गके पथिकको तथा मुझे क्या-क्या बातें विशेष ध्यान रखनी चाहिये?

भाईजी—स्वसुखका त्याग, प्रियतमके सुखका ध्यान। जैसे तुम्हारा मुझसे मिलनेका बहुत मन है। तुम मेरे पास आओ, समय माँगो और मैं तुम्हें डाँट दूँ। उसी समय जो तुमसे कम भाव वाले लोग हैं—उन्हें लम्बा समय दूँ-मिलूँ, स्नेह दूँ। तुमसे १० दिनमें एक बार भी न मिलूँ और कह दूँ कि तुम यहाँसे चले जाओ। इस पर भी तुम्हारे मनमें मुझसे मिलनेकी इच्छा बढ़ती रहे और यह दुःख न हो कि मैं यहाँ १० दिन रहा और मुझसे एक बार भी नहीं मिले और दूसरे जो कम भाव वाले थे, उनसे मिलते रहे। यह चीज बहुत कठिन है और अच्छे-अच्छे व्यक्ति इसमें फेल हो जाते हैं।

क—यह तो आगमें कूदने जैसी बात है।

भाईजी—हाँ, आग तो है पर शीतल आग। ठंडक देनेवाली आग है। बाबाने मुझसे कहा कि मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जिसे मैं अपने मनकी बात सुना सकूँ।

क—बाबा जब आपके पास आये थे तब तो निर्गुण ब्रह्मके उपासक थे

और श्रीकृष्णका मजाक उड़ाते थे। वे ऐसे किस प्रकार बने ?

भाईजी—मैं उन्हें जो भी कह देता वे उसे करनेके लिये प्राण-प्रणसे लग जाते। जैसे मैंने उन्हें प्रतिदिन तीन लाख नाम-जपका कहा तो वे उसीमें लग गये।

क—आप जब शिमलापालमें नजरबन्द थे उस समय आपने नारद भक्ति सूत्रकी व्याख्या 'प्रेमदर्शन' लिखी। उसमें आपने गोपी-प्रेमका बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। यद्यपि उस समय आपकी उपासना तो श्रीविष्णु भगवान्‌की थी। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गोपी-प्रेमवाली बातें आपमें पहलेसे ही थीं।

भाईजी—हाँ, पहलेसे ही थी। बाबामें भी पहलेसे ही थी।

क—कई साल पहले आपसे मनका सौदा हुआ था—आपको याद है न ?

भाईजी—हाँ, हाँ, पूरा याद है। उस पुराने आफिस वाले कमरेमें हुआ था। पूरा याद है।

क—आप और बातें तो भूल जाते हैं, यह बात कैसे याद रही ?

भाईजी—दिया हुआ तो भूल जाता हूँ, लिया हुआ कैसे भूलूँ ?

(जुलाई १९७०)

क—मानसिक चिन्तन और भावमय देहसे चिन्तनमें क्या अन्तर है ?

भाईजी—तीन चीजें होती हैं (१) मानसिक चिन्तन (२) भावमय देह (३) भावमय देह ही आगे जाकर सिद्ध देहमें प्रवेश हो जाता है।

मानस चिन्तनको भी प्रत्यक्ष ही मानना चाहिये क्योंकि भावमय अनुभूति भी इसीमें आगे चलकर हो सकती है। भावमय देह आगे जाकर सिद्ध देहमें मिल जाता है। गोपियाँ भी दो प्रकारकी थीं एक नित्यसिद्धा और दूसरी जो भावमय देहसे गयी थीं।

(फिर भावमय देहका विस्तारसे वर्णन किये।)

क—अपने बारेमें बतायें ?

भाईजी—जबतक पाञ्चभौतिक दीखता है तबतक तो मोह ही है। बाबा कहते हैं मुरली मनोहर दीखता है कि नहीं ? मुरली मनोहर ही हैं। मुरली मनोहर पाञ्चभौतिक बना हुआ है यह ठीक नहीं है। जहाँ पाञ्चभौतिककी कल्पना है वहाँ ठीक नहीं है। गोपियोंको वे बिलकुल भगवान् दीखते थे। वे मुरली मनोहर रूप में दीखें या इस रूपमें। अभिमान नहीं आना चाहिये। गोपियोंको भी अभिमान आया तो भगवान् अन्तर्धान हो गये। फिर राधाजीको अभिमान आया तो उनसे

भी अन्तर्धान हो गये। यह पूर्ण विश्वास रखे कि होगा, निश्चय होगा।

क—पिताजीकी मरणोपरान्त स्थिति क्या है?

भाईजी—वे ऊँचे लोकोंमें बहुत सुखमें हैं। अभी धाममें नहीं गये हैं, मरते समय कोई चित्तकी वृत्ति अटक गयी होगी।

क—क्या वे पुनः जन्म-मरणके चक्करमें आयेंगे?

भाईजी—ऐसा क्यों मानो।

क—अपने पदोंके बारेमें बताइये?

भाईजी—इन पदोंको समझनेवाले बहुत कम है। वे ही लिखवाते हैं। आजकल नहीं लिखवाते तो नहीं लिखे जाते।

क—प्रेमराज्यमें भोग है क्या?

भाईजी—प्रेमराज्यमें यहाँके भोगोंकी कल्पना ही नहीं है। ज्यों-ज्यों साधक उसमें आगे बढ़ता है त्यों-त्यों ये नष्ट हो जाते हैं।

क—ये बाहरी काम कैसे होते हैं?

भाईजी—श्रीकृष्ण ही अपने दूसरे रूपमें करवाते रहते हैं। वह चलता ही रहता है वह तो असली है ही।

क—पहले तो आप कितने मीठे-मीठे पत्र लिखते थे। आजकल तो बहुत कम लिखते हैं और जो लिखते हैं—वे भी सीधेसे। हमारे पत्र आप पढ़ते तो होंगे?

भाईजी—एक-एक अक्षर ध्यानसे पढ़ता हूँ। तुम्हारे कई पत्रोंका मानस उत्तर भी देता हूँ। कई बार बिना तुम्हारे पत्रके भी मानस-पत्र भेजता रहता हूँ।

क—मनसे स्मरण करनेपर प्रत्यक्ष मिलनकी उत्कंठा बहुत बढ़ जाती है?

भाईजी—असली मिलन तो मनका ही है। मनके द्वारा रति, भाव, प्रणय आदि सभी होते हैं। समर्पणमें बिलकुल निश्चिन्तता, निर्भयता होनी चाहिये। उनकी वस्तु हो गयी अब वे चाहे जैसे बरतें। अच्छी-बुरी सभी चीज उनकी, वे चाहे जैसे रखें। भगवान्‌से एक प्रेमीने कहा—मुझे चाहे नरकोंमें रहना पड़े परन्तु आपका मधुर-मधुर चिन्तन बराबर बना रहे। वे अपनी चीजको अपने आप ही जैसा करना है कर लेंगे। भगवान् योग्यता, अयोग्यता नहीं देखते—भगवान्‌के लिये वास्तवमें योग्य कोई है ही नहीं। बस, उनको जो बुलाता है वही योग्य है। जितनी वेदकी ऋचाओंवालोंकी सुनते हैं उतनी ही अयोग्यकी सुनते हैं—केवल

सुनतेकी नहीं उसके अनुसार कर देते हैं। जहाँ प्रियता होती है, वहाँ न संकोच करना चाहिये न यह मानना चाहिये कि मैं अयोग्य हूँ।

क—एक बार पहले आपने कहा था कि तुमलोग ही मेरा नाम उज्ज्वल कर सकते हो, तुम ही मेरा नाम नीचा कर सकते हो।

भाईजी—यह ठीक ही है। एक बार विभीषण ब्राह्मणोंके गाँवमें गये। वहाँ एक ब्राह्मणको उनके रथसे चोट लग गयी। ब्राह्मणोंने उन्हें एक कमरेमें बंद कर दिया। जब इस बातका भगवान् रामको पता लगा तब वे रथपर सवार होकर आये। ब्राह्मणोंने उन्हें सारी बात बताकर कहा कि हम इसे दण्ड देंगे। भगवान् रामने देखा यह तो मेरा विभीषण है। वे ब्राह्मणोंसे बोले—भैया! इसे छोड़ दो और इसके बदले मुझे बंदी बनाकर दंड दो।

वैसे ही तुम लोगोंका जो कुछ भी अपराध होगा; उसे मैं अपना अपराध मानूँगा क्योंकि तुम मेरे हो।

क—कहीं कभी अभिमान न हो जाय।

भाईजी—अभिमान आनेपर वे बीचमें चपत भी लगा देते हैं। मेरे सामने जो संसारकी बातें करते हैं वहाँ तो मैं अपनी वृत्ति ही वहाँसे हटा लेता हूँ। मैं चुप हो जाता हूँ तब वह उठकर चला जाता है।

(अप्रैल १९५९)

ख—प्रारब्धका सम्बन्ध जो रुपये हम कमाते हैं उससे है या जो रुपया खर्च करनेके बाद बचता है उससे?

भाईजी—दोनोंसे।

ख—पूज्य बाबासे हम लोगोंके बारेमें बात होती है क्या?

भाईजी—तुम लोगोंपर बाबाकी बड़ी कृपा है। आज ही तुम्हारा नाम आनेपर बोले कि उसे बोल दीजियेगा—उसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।

(अप्रैल १९६०)

ख—भाव नहीं बढ़ता है इसके लिये क्या करें?

भाईजी—प्रेमके राज्यमें भाव बढ़नेकी चिन्ता नहीं होती। भाव बढ़ता है या नहीं बढ़ता, घटता है कि मिटता है—वह यह सब नहीं देखता। वह तो देखता है एक प्रेमास्पदकी ओर, चिन्तन करता है एक प्रेमास्पदका। अपनी चिन्ता करनी है तो अभी समर्पणका भाव नहीं करना चाहिये। फिर साधन करो, बहुत

अच्छी चीज है। तैर कर जाओ।

ख—कभी-कभी मनमें सन्देह हो जाता है कि ठीक मार्गपर चल रहें या नहीं?

भाईजी—अपने मनमें सन्देह मत करो। अपने मार्गको छोड़े नहीं, अपनेमें हीनता देखो नहीं। दूसरेकी ओर ताको नहीं। अपने मार्गमें श्रद्धा कम न होने दो। जीवनकी सच्ची चाह हो और विश्वास हो—ये दो बातें होनेसे काम बन सकता है। चाह पैदा हुई कि तत्परता हो जायगी।

(सितम्बर १९६६)

ख—काम करनेमें आसक्ति कैसे हटे?

भाईजी—प्रत्येक काम भगवत्सेवाकी भावनासे करो। काममें ध्यान न देनेवाली बात ठीक नहीं है। भजनको सीमित मत रखो। आसक्ति हटेगी कामको भगवत्सेवाकी भावनासे करनेसे। उपेक्षासे या काम छोड़नेसे आसक्ति नहीं हटेगी।

ख—ममता कैसे हटे?

भाईजी—ममता हटानी नहीं है। ममता भगवान्‌से जोड़ देनी है। ममत्वकी वस्तुको बदल दो। भगवान् मेरे और मैं केवल उनका। अपनी चीजको आप सँभालो।

ख—हमारी लगन कैसे बढ़े?

भाईजी—लगन बढ़ानेका सर्वोत्तम उपाय है—कृपाका आश्रय।

ख—हमारे लिये आप क्या आवश्यक समझते हैं?

भाईजी—अपना दैन्य और भगवान्‌की कृपा दोनों ही अत्यन्त आवश्यक हैं। इच्छा तीव्र होनी चाहिये। फिर कृपाके बलपर आश्वासन दे दे कि काम निश्चित हो जायगा।

(अप्रैल १९६९)

ख—पिछली बार आपसे बात हुई थी तब एक बार तो काफी उत्साह रहा पर जैसी अनुगतता जीवनमें आनी चाहिये, वैसी नहीं आती।

भाईजी—आती तो है ही, नहीं आती ऐसी बात नहीं है।

ख—पर चाल तो बहुत धीमी मालूम देती है?

भाईजी—चाल तो धीमी ही मालूम देनी चाहिये। इसमें सन्तोष कभी होना नहीं चाहिये। इसमें तो असन्तोष ही आगे बढ़ानेवाला है। चाल धीमी

समझनेके लिये नहीं, अनुभव ही होना चाहिये कि मेरी चाल धीमी है।

ख—हम तो हाथ-पैर ही हिला सकते हैं पर काम तो कृपासे ही होगा।

भाईजी—बस, जितना हाथ-पैर हिला सकते हो उतना हिलाते रहो फिर और सब जिसे करना है, वह स्वयं करेगा।

ख—आप तो मेरे बारेमें सब जानते ही हैं। इसलिये मुझे अपनी तरफसे क्या करना चाहिये। वह बतला दीजिये।

भाईजी—तुम्हें करना केवल इतना ही है कि इच्छा बढ़ाओ और विश्वास बढ़ाओ, बस।

ख—पिछली बार आपने कहा था कि तुम लोग केवल इच्छा बढ़ाओ और सब अपने आप हो जायेगा।

भाईजी—यह बिलकुल ठीक है। अपना काम तो इच्छा बढ़ाना ही है। उसकी पूर्ति तो वे अपने आप करेंगे।

ख—कृपा इच्छा बढ़ानेमें भी सहायता देती होगी?

भाईजी—जरूर। कृपा सब काममें सहायता करती है। पर उसे माननेकी जरूरत है—जितना मानोगे उतनी सहायता करेगी।

क—पहले हमलोग लगे थे तब तो बहुत उत्साह था। रातको १०-१२ बजेतक आपकी चर्चा चलती रहती थी। अब वैसा उत्साह नहीं दीखता।

भाईजी—नई चीज रहनेसे एक बार ऐसे लगता है फिर वह चीज स्वभावगत हो जाती है। उसमें कमी तो नहीं आनी चाहिये। संसारकी चीज तो मिलनेपर बासी हो जाती है पर भगवान्‌की चीजोंमें नित नवीनता रहती है। इसलिये प्रेमके नामपर दूसरी चीज मिश्रित हो जाती है। तब कमी आती है नहीं तो कमी आनेका प्रश्न ही क्या है।

क—कभी तो लीलाचिन्तन, मानसिक चिन्तन जैसा नहीं लगता बादमें वैसा भाव न रहनेपर वह ध्यान-सा मालूम देता है

भाईजी—मानस चिन्तन ही ध्यान है और ध्यान ही प्रत्यक्ष है। जैसे हम गायका अभी मानस चिन्तन करें तो गाय तो यहाँ है नहीं इसलिये वह चिन्तन ही होगा, पर भगवान्‌के बारेमें यह बात नहीं है। भगवान् तो यहाँ मौजूद हैं ही इसलिये भगवान्‌का मानस चिन्तन होनेपर भी उसे प्रत्यक्ष माननेपर वह प्रत्यक्ष ही है।

ख—काम अधिक रहनेसे वह बाधा तो करता होगा?

भाईजी—कामका मनपर असर तो पड़ता है पर वह बाधा नहीं कर सकता। काममें रहनेपर तो भजनका समय कम मिलनेसे भजनकी इच्छा रहती है। पर काम न रहनेसे समय अधिक मिलनेके कारण भजनकी रुचि कम हो जाती है। इसलिये भजन बढ़ावे तो पोल अपने आप निकल जायेगी।

ख—अपनी ओर देखते हैं तो निराशा होती है।

भाईजी—मनमें निराशा नहीं आनी चाहिये। निराश न होनेसे चाल अपने आप तेज होगी। भरतजी जब अपनी ओर देखते तो चाल धीमी हो जाती और जब भगवान्‌के स्वभावकी ओर देखते तो तेज चलने लगते।

(दिसम्बर १९६९)

ख—अपनी तरफसे हम क्या करें?

भाईजी—एक तो बिना किसी शर्तके समर्पण कर दो और दूसरा अनिवार्य चिन्तन होता रहे। जैसे किसी संसारकी वस्तुकी कामना हो और न मिले तो अनिवार्य चिन्तन होता है वैसे ही भगवान्‌का अनिवार्य चिन्तन हो। इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करो और अपनी तरफसे पूरी चेष्टा करो।

ख—काम-वृत्तिका जल्दी नाश कैसे हो?

भाईजी—इसके लिये गायत्री और सूर्यकी उपासना करनी चाहिये। आदित्य हृदयका पाठ किया जाता है। शिवजीकी भी उपासना की जाती है। इसके लिये सबसे बढ़िया है—रासपञ्चाध्यायीका पाठ। पाँचों अध्यायोंका पाठ या अन्तिम अध्यायका पाठ करनेसे भगवान्‌की कृपासे बहुत जल्दी नष्ट होती है।

ख—जैसा जीवन बनना चाहिये वैसा तो इतने दिन बीतनेपर भी नहीं बना।

भाईजी—काम तो हो ही रहा है। कृपापर विश्वास बढ़ाना चाहिये। विश्वाससे सब काम अपने आप हो जाता है। कृपाकी हर समय बाट देखता रहे। निराश कभी मत होना, नकारात्मक कभी नहीं सोचना।

(फरवरी १९५९)

ग—एकबार आपने एक पद लिखा था उस पदके बीचकी लाइनें आपने लिखी नहीं थी, वे दिखाइये।

भाईजी—(कागज देते हुए) यह तुम लोगोंको भेजा नहीं था। रख लिया था, इनको फाड़नेका विचार है।

ग—तब आपने लिखे ही क्यों? लीला तो आपने देख ही ली थी।

भाईजी—यह तो मेरे वशकी बात नहीं है। जब सामने आती है तब कलम अपने आप ही चलने लगती है। यह ध्यान ही नहीं रहता कि क्या लिखूँ, क्या नहीं लिखूँ। बादमें तो पूरी याद ही नहीं रहती और सैकड़ोंमेंसे एक-दो ही लिखी जाती है।

(कुछ रुककर) यह सब चीजें पढ़नेके बाद मनमें चञ्चलता नहीं आनी चाहिये।

ग—चंचलताका रहना तो आपकी कृपाका अभाव-सा ही है।

भाईजी—इस मार्गके अधिकारी बहुत कम होते हैं।

ग—हम जैसे लोगोंपर भी आपने कैसी कृपा की है?

भाईजी—मैं कृपा नहीं समझता। कृपा तो वैसी होती है जैसे कोई व्यक्ति कुछ माँगने आया और उसे वह वस्तु दे दी।

ग—तब हम क्या मानें?

भाईजी—प्रेममें देना नहीं रहता, वहाँ तो सबकुछ एक होता है।

ग—हमलोग बैठते हैं तो एक ही चर्चा अच्छी लगती और चलती है। आपको किसके भाव अच्छे लगते हैं?

भाईजी—भगवान्‌में तो तुम्हारे भाव अच्छे हैं। 'क' के भाव भी अच्छे हैं।

ग—हम लोगोंको यहीं रख लीजिये।

भाईजी—कैसे रख लें? उसके घरमें माँ-बाप हैं। तुम्हारे घरमें बाल-बच्चे हैं। सबको सँभालना पड़ता है।

ग—आप छुड़ावें तो सब छूट जाय।

भाईजी—मैं कैसे छुड़ा सकता हूँ। वह भी कर्तव्य समझकर करना चाहिये। मनसे यहाँ रहो। असली रहना तो मनसे ही होता है। शरीरके संयोगमें कई बाधायें आती हैं।

ग—मुझे तो एक ही बात बता दीजिये।

भाईजी—जो लीला सामने आये उसको चिन्तन नहीं मानना चाहिये। एक बात तो यही है कि तुम निश्चय कर लो कि मुझे राधा-माधवने अपना लिया है।

ग—मेरे जैसे नीचको भी आपने अपने पाँच-छः विशेष व्यक्तियोंमें शामिल कर लिया?

भाईजी—भगवान् कभी नीचता की ओर नहीं देखते। जब तुम मेरा स्नेह मानती हो तब निश्चिन्त रहना चाहिये।

संत श्रीरघुनाथदासजी

(सन् १९४३ में होलीके कुछ दिन पहले श्रीभाईजीने रतनगढ़में भगवन्नाम प्रचारके लिये एक विशाल सन्त सम्मेलनका आयोजन किया जिसमें अन्य संतोंके अलावा वृन्दावन स्थित श्रीरंगजी मंदिरके प्रधान संत रघुनाथदासजी भी पधारे थे।)

रघुनाथदासजी—(भावमयी स्थितिमें सजल नेत्र एवं गद्गद वाणीसे) भाईजी! आपकी महिमा क्या कहूँ? आपकी .....।

भाईजी—महिमा क्या, महाराज! यह तो आपकी कृपा है, जो आप यहाँ पधारे हैं। आपके चरणोंकी मुझपर कृपा ही-कृपा है। कहाँ तो आप श्रीरंगजीके मंदिरके प्रधान एवं अन्तरंग जन और कहाँ मैं सांसारिक साधारण जीव।

रघुनाथदासजी—भाईजी! आप जो भी कहें, सो ठीक है पर आपकी महिमा क्या कहूँ? आप परम भक्त हैं। इस संत सम्मेलनके लिये आपका निमंत्रण मिला। अब मेरे मनमें बड़ी दुविधा थी कि रतनगढ़ जाऊँ अथवा नहीं जाऊँ। इधर तो संत समारोहमें आनेके लिये आपका निमन्त्रण और उधर श्रीरंगजीके मन्दिरमें होलीका वृहत् उत्सव। मंदिरके लोग भी आग्रह कर रहे थे कि यदि आप जायेंगे तो यहाँ मंदिरका उत्सव कौन करायेगा, कौन मनायेगा? मैं बड़ी दुविधामें था। फिर स्वयं भगवान् श्रीरंगजी महाराजका आदेश हुआ कि 'रघुनाथदास! प्रत्येक वर्ष तो तुम मेरा उत्सव मनाते ही हो, इस बार तुम मेरे भक्तके उत्सवमें जाओ।'

भाईजी! जिसके उत्सवमें जानेके लिये स्वयं श्रीरंगजी महाराज आदेश दें, उसकी महिमाकी क्या कोई सीमा है? आपके दर्शनसे तो मैं धन्य हो गया। आपकी महिमाका क्या बखान करूँ?

भाईजी—यह तो भगवान् श्रीरंगजीकी मुझ अकिंचनपर कृपा है। श्रीरंगजी भी तभी कृपा करते हैं आप जैसे भक्तोंका आशीर्वाद प्राप्त होता है। यह सब आप सभी श्रीसंतोंका प्रसाद और आशीर्वाद है।

(इतनी वार्ताके बाद श्रीभाईजी एवं श्रीरघुनाथदासजी अश्रुपूरित नेत्रोंसे गले मिले।)

श्रीनन्दबाबा

(श्रीसभापतिजी त्रिपाठी गीतावाटिकामें नन्दबाबाके नामसे जाने जाते थे। उनका प्रतिदिनका नियम था कि कुछ पुष्प लाकर श्रीभाईजीको समर्पित करते और किसी मांगलिक श्लोकका वाचन करते। एक दिन ऐसा करके वहीं बैठ गये।)

भाईजी—बाबा! आपको सभी लोग-नन्दबाबा-नन्दबाबा कहते हैं, पर क्या कभी आपको बालकृष्णके दर्शन हुए हैं?

नन्दबाबा—ऐसा मेरा सौभाग्य कहाँ कि उस कन्हैयाके दर्शन हो सकें।

भाईजी—(रसमयी विनोदभरी वाणीमें) तब आप काहे के (कैसे) नन्दबाबा!

नन्दबाबा—आप ही मुझे असली नन्दबाबा बना दें। आप मुझे उस कन्हैयाके दर्शन करा दें।

भाईजी—(दिव्य भावकी लहरोंमें बहते हुए) अच्छा, आप यहाँ बैठे रहे और ..... का जप करते रहें।

(श्रीनन्दबाबा बैठे-बैठे जप करते रहे तथा श्रीभाईजी बैठे-बैठे सम्पादन-कार्य करते रहे। बीच-बीचमें श्रीभाईजी उनपर दृष्टि-निक्षेप कर लिया करते। एक घंटेके बाद .....)

भाईजी—बाबा! क्या आपको कुछ दिखलाई दे रहा है?

नन्दबाबा—मुझे तो कुछ भी नहीं दीख रहा है।

भाईजी—अच्छा, आप जप करते रहिये।

(नन्दबाबा बैठे-बैठे जप कर रहे हैं फिर थोड़ी देरके बाद)

भाईजी—क्या कुछ दिखायी दे रहा है?

नन्दबाबा—गैसकी तेज लालटेन जल रही हो, ऐसा प्रखर तीव्र प्रकाश चारों ओर दीख रहा है।

भाईजी—धीरजपूर्वक आप बैठे रहिये तथा जप करते रहिये।

(थोड़ी देर बाद)

भाईजी—क्यों बाबा! कुछ दिखायी दे रहा है?

नन्दबाबा—अब वह प्रखर प्रकाश नहीं है, बल्कि पीला-नीला-मिश्रित हल्का-हल्का प्रकाश दीख रहा है।

(इसके बाद श्रीभाईजीने उन्हें आश्वासन देते हुए जप करते रहनेके लिये कहा।

और थोड़ी देर बाद .....)

भाईजी—क्या बाबा! अभीतक दर्शन नहीं हुए?

नन्दबाबा—(गद्गदवाणी तथा रुद्ध स्वरमें)क्या बताऊँ? नीली ज्योति बिखेरता हुआ एक छोटा-सा बालक घुटुरन चल रहा है। चाल भी बड़ी मन्द है।

(इससे अधिक नन्दबाबा कुछ बोल नहीं पाये परन्तु उनके भीगे-भीगे कपोल और रुँधी-रुँधी वाणी उनकी स्थितिका संकेत कर रही थी। कुछ देरके बाद वे भाईजीसे कृतज्ञतापूर्वक विदा लेकर बाहर आ गये।)

श्रीराहुल सांस्कृत्यायन

(एकबार शीतकालमें गोरखपुर रेलवे स्टेशनपर महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन एवं भाईजीकी भेंट हो गयी।)

राहुलजी—नास्तिकता न रहे तो यह आस्तिकता ठहरेगी किसपर?

भाईजी—(मुस्कुराकर) नास्तिक भी तो परमात्माका ही अंश है। परमात्मा तो सबमें है, सब जगह है। बौद्ध धर्म तो हिन्दू धर्मका ही एक रूप है। हमारे शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्धके रूपमें कहीं-कहीं वर्णित हैं।

राहुलजी—मैं प्रच्छन्न हिंदू तो हूँ ही।

भाईजी—नहीं-नहीं, आप मूलतः और स्वरूपतः हिंदू हैं।

(राहुलजी श्रद्धावनत हुए, फिर भाईजीको अपलक देखते रहे)

श्रीवचनेशजी त्रिपाठी

(वचनेशजी त्रिपाठी स्वतंत्रता आन्दोलनमें भाग लिये थे और क्रांतिकारियोंसे उनका निकटका सम्पर्क था। एक बार वचनेशजीकी भाईजीसे काशीमें मुलाकात हुई थी।)

वचनेशजी—भाईजी! देश तो अभी स्वतंत्र नहीं हो सका और आप इस क्षेत्रमें आ गये।

भाईजी—आना ही था, क्योंकि यही स्वप्न लेकर मैं विप्लवी बना था। सर्वस्व समर्पणकी वही भूमिका मुझे इस क्षेत्रमें लायी है। मैं ऐसा मानता हूँ कि परमपिता परमात्मा ही इस पथपर मुझे ले चल रहे हैं।

वचनेशजी—आप व्रजके अनन्य अनुरागी हैं, अतः स्वाभाविक ही महान् क्रांतिके प्रणेता श्रीकृष्णका जीवन आपको सर्वाधिक खींचता होगा?

भाईजी—और परम आराध्या श्रीराधाजी?

वचनेशजी—हाँ, मैं भूल रहा था।

भाईजी—राधाजीका चरित्र पराधीन भारतके लिये कहीं अधिक दिव्य है, मननीय है। राधाजी क्या थीं, मैं वाणीसे वर्णन करूँ तो मेरी वाचालता होगी। वे क्या इस लोक की थीं? वे कभी जन्म-मरणके आवर्तोंमें बँधकर चलती हैं? भगवान्‌से वे अद्वैत हैं, इसीलिये उनके आनेपर कभी 'श्रीराधा' के नामसे तो कभी 'श्रीसीता' के नामसे वे ही प्रकट होती हैं।

वचनेशजी—अच्छा!

भाईजी—'राधा नित्य शक्ति है।'

(इतना कहते-कहते श्रीभाईजीकी आँखोंमें आँसू भर आये, कण्ठ अवरुद्ध हो गया।)

श्रीगोविन्ददासजी वैष्णव

(दिनांक ७ जनवरी १९७१ को शाम साढ़े छः बजे श्रीभाईजी अपने कमरेमें चारपाईपर लेटे हुए थे। अपने साधन-साध्य सम्बन्धी समस्याओंको लेकर श्रीवैष्णवजी उनके पास गये। यद्यपि भाईजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं था परन्तु अपने विरदसे उन्होंने उनकी जिज्ञासाओंका उत्तर दिया।

गोविन्ददासजी—आप अद्वैत तत्त्वको मानते हैं क्या?

भाईजी—अद्वैत तो मैं मानता हूँ परन्तु मेरे अद्वैतका अर्थ है कि 'सब श्रीकृष्ण हैं।' वे ही सगुण हैं और निर्गुण भी हैं।

गोविन्ददासजी—क्या भगवान् नित्य हैं?

भाईजी—भगवान्‌की मंगलमय देह नित्य है। उनके नाम, रूप, लीला, धाम आदि सभी नित्य हैं। उनके माता-पिता नन्द-यशोदा, ग्वाल-बाल, सखागण, श्रीराधारानी आदि गोपीजन भी नित्य हैं।

गोविन्ददासजी—भगवान्‌के परमधामके बारेमें बताइये?

भाईजी—भगवान्‌के परमधाममें स्थल, मकान, सरोवर, बाग-बगीचे, पुष्प, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि सभी हैं परन्तु प्राकृत नहीं चिन्मय हैं, भगवत्स्वरूप हैं। वहाँ मायाका, जड़ताका प्रवेश नहीं है। इस जगत्‌में जो

कुछ भी है, वह उस परमधामकी छाया है।

गोविन्ददासजी—कुछ लोग श्रीकृष्णको मायोपाधिक मानते हैं?

भाईजी—आजकल विकासवादके आधारपर कुछ लोग श्रीकृष्णका विकास मानने लगे हैं। मैं ऐसा कुछ नहीं मानता। मैं तो उनको सच्चिदानन्द ब्रह्म, पूर्ण पुरुषोत्तम मानता हूँ। स्वयं आदि शंकराचार्यजीने श्रीकृष्णको अपने 'प्रबोध सुधाकर' में 'सच्चिन्मयी नीलिमा' कहा है।

गोविन्ददासजी—'ब्रह्मज्ञान' किसे कहते हैं?'

भाईजी—भगवान् श्रीकृष्णका जो ज्ञान है वही पूर्ण तत्त्वज्ञान है। उसे ही समग्र 'ब्रह्मज्ञान' कहते हैं।

गोविन्ददासजी—फिर निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान क्या पूर्ण ज्ञान नहीं है?

भाईजी—केवल निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान उससे कुछ नीचे उतरकर है, क्योंकि उसमें सगुण ब्रह्मका ज्ञान शेष रह जाता है।

गोविन्ददासजी—पूर्ण तत्त्वज्ञान किस प्रकार होता है?

भाईजी—पूर्ण तत्त्वज्ञान भक्तिसे ही होता है।

'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।'

गोविन्ददासजी—तब भक्ति विरहित ज्ञानको हम क्या कहेंगे?

भाईजी—जो लोग श्रीकृष्णको मायोपाधिक, प्रतीतिमात्र, सत्ताशून्य मानते हैं, उनके ज्ञानको तो मैं ज्ञान मानता ही नहीं। वह तो ज्ञानाभिमान है, अज्ञान है, वास्तविक ज्ञान नहीं है।

गोविन्ददासजी—क्या श्रीमद्भागवतमें मायावादका वर्णन नहीं है?

भाईजी—श्रीमद्भागवतमें मायावाद नहीं है।

गोविन्ददासजी—ब्रह्मज्ञान हो जानेपर भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है?

भाईजी—ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेपर सभी ब्रह्मज्ञानियोंको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होगी ही, यह नियम नहीं है। जिसके ऊपर भगवान्‌की या किसी भगवत्प्रेमी संतकी कृपा होगी, उसीको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हुई। आप देखिये, याज्ञवल्क्यजीको नहीं हुई।

गोविन्ददासजी—फिर भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये क्या करें?

भाईजी—यदि भगवत्प्रेम चाहिये तो भक्ति करें। केवल भक्तिसे ही प्रेम, ज्ञान, धाम, आदि सबकी प्राप्ति हो जायेगी। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। ११)

गोविन्ददासजी—तब क्या भक्तको अद्वैत ज्ञानका साधन नहीं करना चाहिये?

भाईजी—भक्तके लिये अद्वैत-ज्ञानके साधनकी कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुन, वसुदेव, गोपियों तथा उद्धव आदिको ज्ञान दिया था, वह ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञान नहीं, भगवत्तत्त्वका ज्ञान है, जिसे समग्र ब्रह्मका ज्ञान कहते हैं। भगवान्‌जी श्रीरामने महाराज दशरथको भगवत्तत्त्वका ज्ञान कराया था।

गोविन्ददासजी—इसका प्रमाण क्या है?

भाईजी—इसका स्पष्ट प्रमाण यही है कि सभी भक्तोंको अन्तमें भगवान्‌की प्रेम-सेवा मिली, केवल मोक्ष नहीं हुआ। यदि ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानका उपदेश किया होता तो उन्हें कैवल्य-मुक्ति होनी चाहिये थी, पर हुई नहीं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ सामान्य जीवोंके लिये हैं। मोक्ष-संन्यासी प्रेमियोंके लिये 'प्रेम' पञ्चम पुरुषार्थ है।

पं०गोविन्दवल्लभ पन्त

(अध्यात्मके क्षेत्रमें श्रीभाईजी द्वारा जो गौरवपूर्ण महान कार्य हुआ, उसको समादृत करनेके लिये भारतके तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसादने उन्हें भारतकी सर्वोच्च उपाधि 'भारतरत्न' से विभूषित करना चाहा और इस कार्यको सम्पन्न करनेका भार सौंपा गया तत्कालीन गृहमन्त्री-भारत सरकार पं०गोविन्द वल्लभ पन्त पर। श्रीपन्तजी इसी निमित्तसे गोरखपुर आकर श्रीभाईजीसे मिले।)

पन्तजी—भाईजी! आप अपनी लेखनी मुझे देनेकी कृपा करें।

भाईजी—हाँ-हाँ, लीजिये।

पन्तजी—(कुछ लिखनेके बाद) यह पेन हम प्रसाद रूपमें ले जायेंगे।

भाईजी—(मुसकुराते हुए) इसमें भी भला पूछना क्या?

पन्तजी—(श्रीभाईजीको एक कागज देते हुए) हम इस पत्रके

सम्बन्धमें आपसे स्वीकृति लेने आये हैं।

(पत्रमें 'भारत रत्न'की उपाधि प्रदान करनेका प्रस्ताव था और एतदर्थ श्रीभाईजीकी स्वीकृति माँगी गयी थी।)

भाईजी—(असहमति व्यक्त करते हुए)—यह उपाधि तो मेरे लिये एक व्याधि ही है। आप मेरे सच्चे हितैषी हैं। इस व्याधिसे मुझे बचाइये।

पन्तजी—(बार-बार निवेदन करते हुए) 'भारतरत्न' के प्रस्तावको आपको स्वीकार कर लेना चाहिये।

भाईजी—राजेन्द्र बाबूके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदरभाव है किन्तु उनका यह अनुरोध मैं स्वीकार नहीं कर पाऊँगा। यह मेरी भावनाके प्रतिकूल है।

पन्तजी—(जब यह देखे कि इस उपाधिका प्रस्ताव ही व्याधिके रूपमें भाईजीके हृदयको व्यथा दे रही है, तब) ठीक है,यह प्रस्ताव नहीं करेंगे।

(यहाँसे वापस दिल्ली पहुँचनेपर श्रीपंतजीने श्रीभाईजीको एक पत्र भेजा। उस पत्रमें उन्होंने लिखा कि आप इतने महान हैं, इतने ऊँचे महामानव हैं कि भारतवर्ष क्या, सारी मानवी दुनियाको इसके लिये गर्व होना चाहिये। मैं आपके स्वरूपको, महत्वको न समझकर ही आपको 'भारत रत्न'की उपाधि देकर सम्मानित करना चाहता था। आपने इसे स्वीकार नहीं किया, यह बहुत अच्छा किया। आप इस उपाधिसे बहुत-बहुत ऊँचे स्तरके हैं। मैं तो आपको हृदयसे नमस्कार करता हूँ।)

एक सज्जन

(गोरखपुरमें एक विवाहमें श्रीभाईजीके पारिवारिक सम्बन्धके लड़की वाले लोग आये थे। वे भाईजीसे मिलने आये।

सज्जन—'कल्याण' के कितने ग्राहक हैं?

भाईजी—लगभग १५ हजार ग्राहक हैं।

सज्जन—नब्बे हजार तो इससे आ जाते हैं (वार्षिक चंदा ६ रू० की दरसे)।

सज्जन—पुस्तकें कितनी बिकती हैं?

भाईजी—पाँच छः लाख रूपये की।

सज्जन—इस तरह सात लाखका माल बिकता है, तो इसमें आधी

कमाई तो होगी ही।

भाईजी—आप आधी कमाई की कहते हैं, इसमें तो एक पैसा नहीं मिलता। हमलोग लागत दामपर बेचते हैं।

सज्जन—यह भी कोई माननेकी बात है? आप कितना ही कहें, अरे काम करते हैं तो बिना कमाईके काम क्यों करें? आधा न सही चौथाई ही सही। प्रेसका काम चलता है एक-डेढ़ लाख रूपये सालमें आ ही जाते हैं।

भाईजी—(समझानेकी चेष्टा करते हुये)—कुछ नहीं आता है।

सज्जन—(गंभीरतासे) फिर इतना झमेला क्यों किया जाता है? अगर कमाई नहीं होती, पैसा नहीं आता, तो इतने आदमी रखे हैं, इतनी मशीनें मँगाई है, रात-दिनका काम करना पड़ता है—यह सब क्यों किया जाता है। यह बेवकूफी है।

(मनुष्य जब जीवनका एक उद्देश्य बना लेता है कि पैसा कमानेके लिये ही काम करना है। तब उनको यह बात समझमें नहीं आ सकती कि जहाँ पैसा-कमाई न हो वह काम क्यों किया जाय?)

श्रीभीमसेनजी चोपड़ा

(श्रीचोपड़ाजी श्रीभाईजीकी सन्निधिमें साधक जीवन व्यतीत करनेका निश्चय करके १९६३ में गीतावाटिका आये। उनका पूर्वका जीवन कर्म-प्रवणताका रहनेके कारण उनके मनमें यह भाव था कि यदि मैं श्रीभाईजी जैसे महान् व्यक्तिके किसी काममें आ सकूँ तो यह मेरा बड़ा सौभाग्य होगा। इसी भावनाको लेकर वे श्रीभाईजीके पास समय-समयपर जाते रहते।)

चोपड़ाजी—आप मुझे कोई अपना काम बताइये, जिसे मैं कर सकूँ।

भाईजी—अच्छा, बताऊँगा।

(कुछ दिन व्यतीत होनेपर एक दिन अपने जिम्मे होनेवाले कामका निर्णय करा लेनेके उद्देश्यसे श्रीभाईजीके पास गये।)

चोपड़ाजी—आपसे विनम्र अनुरोध है कि आज तो मुझे कार्य बता ही दीजिये।

भाईजी—अच्छा, मैं एक काम बतलाता हूँ। तुम मेरा एक काम करो।

चोपड़ाजी—(आनन्दातिरेकसे) मुझे क्या काम करना होगा?

भाईजी—(अपने तकियेके नीचेसे एक तुलसी-माला निकालकर श्रीचोपड़ाजीके हाथमें देते हुए) इस मालापर नाम-जप करो। निरन्तर जप करो। यही मेरा निजी और असली काम है।)

चोपड़ाजी—(माला ग्रहण करते हुए) मेरा बड़ा सौभाग्य है।

भाईजी—(चेतावनी देते हुए) देखो, प्रपञ्चसे बचना। याद रखना, यदि तुमने किसीको अँगुली पकड़नेका अवसर दिया तो यह समझ लो कि हाथके पकड़े जानेमें देर नहीं लगेगी।

श्रीहरिप्रसादजी पारीक

(स्वर्गाश्रममें ३१ मई १९६८ को सूर्यास्तके समय श्रीहरिप्रसादजी श्रीभाईजीसे मिलने आये थे। श्रीभाईजी कुछ समय पूर्व ही भाव समाधिके धरातलसे उतरकर जगत्के धरातल पर आये थे।)

हरिप्रसादजी—क्या आपकी एकान्त प्रियतामें कोई विशेष बात है?

भाईजी—भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें '**अरतिर्जनसंसदि**' कहकर एकान्त स्थानमें रहने और मनुष्योंकी भीड़-भाड़में प्रीति न रखनेकी आज्ञा दी है। पहले अरतिः जनसंसदिका मर्म समझमें नहीं आता था। अब कुछ-कुछ समझमें आने लगा है। जन-संसर्ग अब तनिक भी अच्छा नहीं लगता। कोई आता है तो मनमें यह आता है कि वह न आये। कोई आकर बैठ जाता है तो मनमें ऐसा आता है कि वह जल्दी उठकर चला जाये। भीड़ अच्छी नहीं लगती। मनमें सदा यही आता है कि मैं चुपचाप एकान्तमें बैठा रहूँ।

हरिप्रसादजी—भाईजी! जब सबमें भगवद्बुद्धि रहती है तो फिर ऐसा.....

भाईजी—सबमें भगवान् तो रहते ही हैं, परंतु यह भी एक अलग स्थिति होती है। इन्द्रियाँ जगत्की स्मृतिको छोड़ देती हैं। जगत् बिल्कुल निकल जाता है। एक-एक करके इन्द्रियाँ काम करना बन्द करती जाती हैं। आँखसे दिखलायी देना बन्द हो जाता है। इस स्थितिका जब पूर्वाभास हो जाता है तो मैं उठकर कमरा बन्द कर लेता हूँ। कभी-कभी सब इन्द्रियाँ एक

साथ काम करना बन्द देती हैं, शरीर निश्चेष्ट हो जाता है। पहले इसके लिये प्रयास करना पड़ता था, पर अब तो स्वतः हो जाता है।

हरिप्रसादजी—तब शौच आदि क्रिया कैसे होती है?

भाईजी—नहीं होती। इन्द्रियाँ ही काम नहीं करतीं तब क्रिया कैसी? कई बार आठ-दस घंटे इस तरह रह जाता हूँ। मन करता है कि यहाँसे गोरखपुर चला जाऊँ, क्योंकि यहाँ लोग मुझसे मिलनेके लिये आते हैं और वे लोग कई बार आते हैं, पर मैं उनसे मिल नहीं पाता। मेरे हाथकी बात नहीं रही। मैं विवश हूँ। इससे मनमें बड़ा संकोच होता है। मैं इसी कारण सत्संगमें भी जा नहीं पाता। अब तो महीने या दो महीने मुझे अकेला छोड़ दिया जाय तो स्थिति शायद ठीक हो जाय। मैंने घरमें बात की थी कि गोरखपुरमें मेरे कमरेमें ही ऐसी व्यवस्था कर दी जाय कि कोई भी मेरे पास न आये, घरवाले भी नहीं। सावित्रीकी माँ मुझको भोजन दे दिया करे, बस, इतना ही सम्पर्क रह जाय। जब माथा ठीक हो तो शौच-स्नानादि भी सर्वदा एकान्तमें मैं कर लूँ।

(अरतिर्जनसंसदि और जगद्विरक्तिकी ऐसी गम्भीर दशावाली बात कानसे सुनकर और आँखसे देखकर श्रीहरिप्रसादजीको बड़ा विस्मय हो रहा था।)

एक जिज्ञासु

(स्वर्गाश्रम में १६ अप्रैल १९६८ को श्रीभाईजी प्रातः ८ बजेसे दिनमें ३ बजे तक भावसमाधिमें लीन रहे। उस दिन कमरा भीतरसे बंद नहीं किया था। व्युत्थानके समय दो-तीन व्यक्ति उनके पास बैठे थे। वे बात करने लगे।)

जिज्ञासु—आपको इस स्थितिमें देखकर मेरे मनमें यह जाननेकी तीव्र इच्छा है कि आपकी इस अवस्थामें इन्द्रियोंकी क्या स्थिति रहती है।

भाईजी—तुम्हारी जिज्ञासा तो ठीक है, पर मैं उस स्थितिके विषयमें बतलानेमें लाचार हूँ। भगवत्कृपासे कैसा क्या होता है, भगवान् जानें। मैं तो अपनेको एक अनिर्वचनीय आनन्दकी स्थितिमें पाता हूँ। ऐसी स्थितिकी सम्भावना होते ही मैं कमरा बन्द कर लेता हूँ, पर आज हठात् सब इन्द्रियोंका कार्य एकाएक बन्द हो गया, इससे मैं कमरा बन्द नहीं कर सका। इस समय वृत्ति जगतको पूरा नहीं पकड़ रही है, पर फिर भी जो पूछा है, उसका उत्तर

देनेका प्रयत्न करता हूँ। उस अवस्थामें आँखें खुली रहनेपर भी दिखायी नहीं पड़ता, कानोंसे सुनता नहीं, त्वक्‌से स्पर्शका अनुभव नहीं होता। इस प्रकार जब इन्द्रियोंका कार्य होना बन्द हो जाता है, तब मन निष्क्रिय हो जाता है और मनके निष्क्रिय होनेसे बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। इन्द्रियोंके कार्य बन्द होनेका अर्थ है—कार्य करनेकी वृत्तिका न रहना। वृत्ति रहनेसे ही तो इन्द्रियाँ कार्य करती हैं।

जिज्ञासु—क्या इसके लिये पहले किसी संकल्पका उदय होता है?

भाईजी—पहले मैं वृत्तियोंको अन्तर्मुख करने, मनको निष्क्रिय करनेका संकल्प करता था, अभ्यास करता था, पर अब तो बिना संकल्प किये वह स्थिति हो जाता है।

जिज्ञासु—क्या सब इन्द्रियोंका कार्य एक साथ बन्द होता है या इसका कोई क्रम है?

भाईजी—कभी सब इन्द्रियोंका कार्य एकाएक एक साथ ही बन्द हो जाता है और कभी एक-एक इन्द्रियका कार्य बन्द होते-होते सब इन्द्रियोंके कार्य बन्द हो जाते हैं। कार्य बन्द होनेमें क्रम नहीं है। कभी पहले किसी इन्द्रियका कार्य बन्द होता है और कभी किसी इन्द्रियका।

जिज्ञासु—वृत्ति नहीं रहती तो वृत्ति क्या करती है?

भाईजी—वृत्ति इन्द्रियोंसे हटकर 'उधर' में केन्द्रित हो जाती है।

जिज्ञासु—'उधर'का क्या अर्थ या स्वरूप है?

भाईजी—'उधर' का अर्थ या स्वरूप समझाया नहीं जा सकता। वह वाणीमें आ नहीं सकता और जितना वाणीमें आ सकता है, उसको भी बताना सहज नहीं है।

जिज्ञासु—किसी कार्य विशेषके लिये मनमें पहलेसे संकल्प किया हुआ रहता है तो उसकी स्मृति होती है क्या?

भाईजी—कोई प्रबल संकल्प किया रहता है तो कभी-कभी उसकी स्मृति बीचमें जाग्रत् हो जाती है, पर प्रायः नहीं होती। उस अवस्थामें भी क्षीण-सी स्मृति आनेसे जैसे मैंने कमरा बन्द होनेसे उसके किवाड़ खोल तो दिये, पर वृत्ति काम नहीं करती कि किसलिये किवाड़ खोले। पर यह भी तभीतक होता है, जबतक वृत्तिमें 'इधर' का—बाह्य जगत्‌का कुछ अंश रह

जाता है। जब इन्द्रियोंसे कार्य होना बन्द होने लगता है, तब उस अवस्थामें जैसे हूँ, वैसे ही रह जाता हूँ। वृत्तिके लौटनेमें भी कभी थोड़ी-थोड़ी वृत्ति आती है, कभी एक साथ सारी वृत्ति आ जाती है। जब वृत्ति आती है, तब यह भी स्मरण नहीं रहता कि कहाँ हूँ, सामने कौन है। पर यह भी उस समयकी वास्तविक स्थिति नहीं है क्योंकि इन्द्रियोंके कार्योंका रुक जाना, मन-बुद्धिकी वृत्तियोंसे जगत्‌का सर्वथा त्याग हो जाना और पूर्णतया वृत्तिका 'उधर' लग जाना ही 'भागवती स्थिति' नहीं है। जबतक वृत्तिजन्य 'इधर' का त्याग और वृत्तिजन्य 'उधर' का ग्रहण है, तबतक प्रकृति राज्यमें स्थिति है। 'भागवती स्थिति' में मन-बुद्धि-अहंकी सत्ता नहीं रहती, उसके स्थानपर भगवत्सत्ता आ जाती है, जिसका ज्ञान भी भगवत्सत्तामें ही होता है, अन्य किसीको नहीं। जब वृत्तिजन्य 'उधर' का ही अर्थ या स्वरूप नहीं समझाया जा सकता, तब इन्द्रिय-मन-बुद्धिसे अतीत भगवत्सत्ताके स्वरूपको समझाना असम्भव है।

जिज्ञासु—यात्रामें भी क्या यह स्थिति हो जाती है?

भाईजी—हाँ! चाहे जब, चाहे जहाँ हो जाती है। यात्रामें भी यह स्थिति होती है, तो वाणीकी क्रिया बन्द हो जाती है, तब मैं चुप हो जाता हूँ। लोग समझते हैं कि ऐसे ही चुप हो गये होंगे। थोड़ी देर बाद जब स्थिति बदल जाती है, तब मैं बोलने लगता हूँ।

जिज्ञासु—'उधर' की तथा उससे भी परे 'भागवती स्थिति' की प्राप्तिके लिये कभी आपने साधना की थी या यह भगवत्कृपासे अपने-आप होने लगी?

भाईजी—नाम-जपकी साधना तो पहलेसे ही कुछ थी, पर जेलमें उसमें वृद्धि हुई। पीछे शिमलापालमें ध्यानका आरम्भ हुआ और उसमें अच्छी सफलता मिली। वहाँ विष्णुभगवान्‌का ध्यान करता था। पीछे मैं बम्बई चला गया। ध्यानका अभ्यास चलता रहा, पर विष्णुभगवान्‌के स्थानपर अव्यक्त तत्त्वका ध्यान होने लगा। फिर 'भगवन्नामांक' निकलनेके एक-दो महीने पहले अपने-आप अव्यक्तके स्थानपर विष्णुभगवान्‌का ध्यान होने लगा। उन दोनों ध्यानोंमें मुझे कोई अन्तर नहीं लगता। जो अव्यक्त है, वही व्यक्त है, जो निर्गुण-निराकार है, वही सगुण-साकार है।

जिज्ञासु—आपकी जो स्थिति होती है, इस स्थितिवाला कोई व्यक्ति कभी आपको मिला है क्या?

भाईजी—ठीक स्मरण नहीं है।

जिज्ञासु—इस स्थितिका शरीरपर कुछ प्रभाव आता है क्या?

भाईजी—शरीरपर इसका कोई खास प्रभाव नहीं आता।

हाँ, कभी किसी ऐसे 'पोज' में घंटों बीत जाते हैं कि जो अस्वाभाविक है, तो बाह्यवृत्ति आनेपर कुछ असुविधा होती है। जैसे बाह्यवृत्ति लुप्त होनेपर पैर अस्वाभाविक 'पोज' में रहा तो बाह्यवृत्ति आनेपर जब पैर सीधा करता हूँ या चलता हूँ, तब कुछ देरके लिये कुछ असुविधा अनुभव होती है। यदि स्वाभाविक 'पोज' में बैठे-लेटे रहनेपर वृत्ति लुप्त होती है तो घंटों बीत जानेपर भी शरीरपर उसका कुछ प्रभाव नहीं आता।

जिज्ञासु—आजकल आपकी क्या स्थिति है?

भाईजी—आजकल वृत्ति जगतको कम पकड़ती है, 'उधर' अधिक जाती है और फिर 'भागवती स्थिति' हो जाती है। कई बार तो अधिक संसारकी वृत्ति शुरू होते ही वृत्ति संसारको छोड़कर 'उधर' चली जाती है।

अन्तरंग पत्र

(१)

गीताप्रेस, गोरखपुर २२। ११। ५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे बहुतसे पत्र आये। मैं उत्तर नहीं लिख पाया सो कोई विचार मत करना। इधर मैं बहुत ही कम पत्र लिख पाता हूँ। तुम्हारे स्वास्थ्यकी बड़ी चिन्ता रहती है। ठीक इलाज नहीं करवाते सो ऐसी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। होगा वही जो प्रभुने रच रखा है, पर प्रभुकी वस्तु मानकर प्रभुके प्रसन्नार्थ ही, आसक्तिसे नहीं, उसका पालन-संरक्षण करना चाहिये। मेरा स्वास्थ्य इधर कुछ शिथिल चल रहा है। कई प्रकारकी छोटी-मोटी गड़बड़ियाँ हैं जो इस अवस्थामें प्रायः हुआ ही करती है। जरा भी चिन्ताकी बात नहीं है। तुम मेरी ओरसे प्रसन्न रहना।

तुम्हारा लीला चिन्तन भलीभाँति चल रहा होगा। परम प्रेमास्पद प्रभुके प्रति पवित्र प्रेम होना चाहिये। पवित्र प्रेमका अर्थ ही है—अहैतुक, सहज, तत्सुखार्थ होनेवाला प्रेम। उसमें स्वसुखकी इच्छा रहती ही नहीं—अवश्य ही सुखकी परम अनुभूति होती है, उनको प्रसन्नमुख-सुखी देखकर। अपनेमें सदा सर्वदा गुणहीनता, दोष, ममताकी अनुभूति होती है और प्रभुके अपने प्रति अहैतुक प्रेमका आनन्दमय दर्शन होता रहता है परन्तु एक और भी महत्व आता है कि प्रभु मुझसे प्रेम न करें तो अच्छा, क्योंकि इससे उनको अधिक सुख होगा। एक सुन्दर प्रसंग है—

"श्रीराधाजी एक दिन श्रीश्यामसुन्दरके कुंजमें पधारीं। उनके साथ श्रीललिताजी थीं। पर श्यामसुन्दर वहाँ नहीं मिले। राधाजीका मुख कमल म्लान हो गया। यह देखकर श्रीललिताजीको बहुत ही दुःख हुआ। वे राधाजीको दुःखी जानकर रोने लगीं। आसुओंकी धारा बह चली। पर सहसा राधाजीका मुख प्रसन्न हो उठा, वे हँसने लगीं और सोल्लास बोलीं—'ललिते! तुम इस प्रकार सुखके समय रो क्यों रही हो? तुमने देखा नहीं अभी दूती मुझसे कह गयी कि श्रीश्यामसुन्दर श्रीचन्द्रवलीजीकी निकुञ्जमें पधारे हैं। तुम रो रही थीं, इससे तुम नहीं देख पा सकी होओगी। सखी ललिते! मेरे लिये आजका यह क्षण परम आनन्दका है। मैं सदा इस बातसे बहुत दुखी रहती

थी कि पता नहीं, श्यामसुन्दरकी बुद्धि कहाँ चली गयी है, जो वे सौन्दर्य माधुर्यकी अप्रतिम मूर्ति अनन्त अनन्त सद्गुणोंकी खान, सब प्रकारसे शोभा-सुषमा पवित्रता और हार्दिक उज्ज्वलतासे सुसम्पन्न, अलौकिक रूप और दिव्यादि दिव्य सदाचरणोंसे समन्वित श्रीचन्द्रावलीजी पर प्रेम न करके मुझ महामलिना, कुरूपा, कुसंस्कारवती, सर्वथा कलंकमयी, नितान्त निरतिशय दुर्गुण-सागर-रूपा, प्रेम-शून्य-हृदयासे प्रेम करके उन्होंने मुझपर अपनेको न्यौछावर कर रखा है। मैंने श्यामसुन्दरको कई बार समझाया, उनसे विनय प्रार्थना भी की कि आप मुझे भूलकर श्रीचन्द्रावलीजीको अपनाइये। उनसे मिलकर आपको परम सुख होगा।' परन्तु उन्होंने कभी मेरी बात सुनी ही नहीं। मैं उनकी इस अज्ञतापर, मोहमुग्धताकी दशापर चिन्ता करती रही, पर आज मेरा भाग्य जाग गया, आज मेरे चिर दिनकी सुखकी साध पूरी हो गयी। श्यामसुन्दरको विधाताने आखिर सुबुद्धि दे दी और वे आज चन्द्रावलीजीकी कुंजमें पधारे। कितना सुख मिलता होगा श्यामसुन्दरको उनसे मिलकर। मेरे धन्य भाग्य हैं। अब मेरी विधातासे यही प्रार्थना है कि श्यामसुन्दर मुझको सर्वथा भूल जायँ, कभी याद ही न करें। कहीं मेरी याद आ गयी और उनका मोह फिर जायेगा तो वे इस सुखसे वञ्चित हो जायेंगे। जो मेरे लिये बड़े दुःख और अभाग्यकी बात होगी।''

श्रीराधारानी इतना कहकर चुप हो गयीं। ललिताजीकी विचित्र दशा थी। इतनेमें ही श्रीराधाजीने क्या देखा कि श्यामसुन्दर मुस्कुराते हुए सामने खड़े हैं। उनको देखते ही राधाजी लज्जित हो गयीं। सिर नीचाकर लिया। श्रीश्यामसुन्दरने उनको अपने भुजपाशमें बाँध लिया और स्नेहार्द्र होकर बोले—'प्राणेश्वरि! मेरे हृदयकी रानी! मैं यहीं तुम्हारे पीछे सब तुम्हारी बातें सुन रहा था। तुम आयी, उस समय मैं यहीं था। तबसे यहीं हूँ। तुम दोनों मुझे देखकर भी देख नहीं पायी। मैं छिपा रहा—तुम्हारे हृदयके परम पावन अमृतरसका तुम्हारी वाणीके द्वारा पान करता रहा। जीवनेश्वरि! सचमुच मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ जो तुम्हारे चरणोंमें मुझे स्थान मिला है। मैं तो विधातासे यही वरदान चाहता हूँ कि मैं तुम्हारे चरण-कमल-मकरन्द रसके पान करनेका लोलुप मिलिन्द ही सदा बना रहूँ।'

कितना उज्ज्वल निष्काम भाव है—श्रीराधा-माधवका प्रेम इसीलिये

परम उज्ज्वल है कि उसमें केवल प्रियतमके सुखको ही एक मात्र स्थान है। भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि, साम्राज्य सभीकी विस्मृति है।

इसीलिये यह कहा गया है और यह परम सत्य है कि जबतक मनुष्यमें जरा भी गन्दे कामका निवास है, वहाँतक वह इस विशुद्ध सर्वथा निष्काम प्रेमका अधिकारी नहीं है। संसार तथा संसारके विषय पूर्णरूपसे हृदयसे निकल जाने चाहिये। तभी इस प्रेमका पवित्र पथ दिखायी दे सकेगा।

यह पत्र तुम उचित समझो तो ..... आदिको पढ़ सकते हो। वे चाहे तो इसकी नकल भी कर सकते हैं।

श्रीबाबा राजी हैं। वे अधिकतर भाव राज्यमें ही रहते हैं।

---

(२)

गीताप्रेस, गोरखपुर ३१-१०-५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे बहुतसे पत्र इकट्ठे हो गये। मैं उत्तर नहीं दे पाया। भैया! मेरी नालायकी तो प्रत्यक्ष है ही। तुम क्षमा करना। मेरा आलसी स्वभाव है, इधर कुछ कार्यमें व्यस्त भी रहा। साथ ही, इन दिनों चित्तकी भी कुछ ऐसी असाधारण-सी स्थिति हो रही है कि न तो काममें ही वह लगता है न पत्रादि लिखनेकी इच्छा होती है। बस, दिनभर चुपचाप अकेलेमें पड़े रहनेका मन होता है; सो, अकेलेमें पड़े रहना बनता नहीं। विचित्र हाल है। शरीर भी शिथिल-सा ही रहता है पर उसकी तो जरा भी चिन्ता नहीं है। वह तो जाने वाला है ही। फिर मेरा शरीर तो नदी किनारेका खोखला पेड़ है, चाहे जब एक झोंका आया कि गिरा। शरीरमें न तो कोई आसक्ति है न इससे कुछ प्राप्त करनेकी इच्छा है। रहे या अभी चला जाय।

तुम अभी बच्चे हो शरीरका इलाज ध्यान रखकर करवाना चाहिये। इसमें अवहेलना नहीं करनी चाहिये। खाने-पीनेकी जहाँ पथ्यकी दृष्टिसे संयम करना आवश्यक है, वहाँ शरीरमें शक्ति बढ़नेके लिये पचने योग्य खाद्य पदार्थोंका सेवन करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

तुमने अपनी और ..... की लीला चिन्तन सम्बन्धी कुछ घटनाएँ लिखी सो पढ़कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। तुम दोनोंपर श्रीश्यामसुन्दर मदन मोहन की बड़ी ही कृपा है। मैं तो तुम लोगोंकी इस सौभाग्यशीलता पर

अत्यन्त मुग्ध हो जाता हूँ। तुम लोगोंके सम्बन्धमें कभी कुछ बात निकल जाती है। कहना तो नहीं चाहता। भविष्यमें और ख्याल रक्खूँगा।

मेरा कोई फोटो मेरे पास नहीं है, नया मैं उतरवाता नहीं। इससे भेजनेमें बड़ी अड़चन हो रही है। किसीके पास मिलेगी तो चेष्टा करूँगा। भगवान् वाले चित्रके रंगीन फोटो तैयार करवाये हैं। अष्ट सखियों वाले पन्ने भी ढूँढ़कर भिजवाऊँगा। मेरे मनमें तो है पर मैं भूल जाता हूँ। भैया! क्षमा करना।

तुम्हारे प्रश्नोंका संक्षिप्त उत्तर इस प्रकार है—

१-'हिलग' कहते हैं—मनकी प्रेममयी स्थितिको—जहाँ प्रियतमका ही स्मरण-चिन्तन-प्रतीक्षा आदि होते हैं।

२-निकुञ्जलीला में कहीं सखियाँ प्रिया-प्रियतमके साथ रहती हैं, कहीं बिल्कुल नहीं रहती। सेवाकी प्रतीक्षामें बाहर रहती हैं। साथ रहकर यथायोग्य सेवामें लगी रहती है।

३-सखियोंके अलग-अलग कुञ्जें भी हैं उनमें भी प्रियतम पधारा करते हैं।

४-युगल सरकारके कई मंत्र हैं—**श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः। श्रीराधा माधवाय नमः। वल्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः। गोपीजनवल्लभ चरणान् शरणं प्रपद्ये।**

५-सखियोंके अनुगत रहकर सेवा करनेवाली मंजरी कहलाती है।

६-सिद्ध देह ही मञ्जरी देह होता है। सिद्ध देह प्राप्त होनेसे पहले मञ्जरी देहकी भावना की जाती है।

७-श्रीराधाजीकी सेवाके साथ भी ललिता, विशाखा आदिकी सेवा जैसे—रामके साथ लक्ष्मण आदि की होती है, वैसे की जा सकती है। अलग भी की जा सकती है।

८-काम विकार रहते स्वसुखकी इच्छा बनी रहती है और स्वसुखकी इच्छा रहते 'गोपीभाव' नहीं होता।

प्रिया-प्रियतम दो नहीं है। एक ही परम तत्त्वके स्वरूप है—श्रीराधाजीको जैसे पूर्वरागादि होते हैं, वैसे ही श्रीश्यामसुन्दरको भी होता है। दोनोंमें ही वियोग मिलनके भाव आते हैं—दोनोंके ही दूत-दूती होते हैं। दोनोंके ही प्रेम सन्देश भी चलते हैं।

श्रीराधाविरहकी दशामें एक दिन श्यामसुन्दर श्रीराधाजीको सन्देश भेजते हैं—संदेश बाहरी दूत भी ले जाता है, और मानस दूत भी पहुँचा देता है—

राधा! तेरे दर्शन को मैं उत्सुक रहता, नित्य अधीर।
कोई नहीं जान सकता यह मेरे अन्तस्तलकी पीर॥
पीड़ा वह अति व्यथित बनाती, आकुल करती अति स्वच्छन्द।
सीमासे अतीत उस स्मृति से, होता उदय अमित आनन्द॥
वह आनन्द नित्य पल-पल, नव-पीड़ाका उद्भव करता।
पीड़ासे फिर स्मृति बढ़ती, फिर नवानन्द मनमें भरता॥
यों ही अमिलन दुःख स्मृति-सुखका सागर रहता लहराता।
उसमें सहज प्रिये! मैं रहता सतत डूबता-उतराता॥
बीच-बीचमें मिलनाकांक्षा बढ़कर उग्र रूप धरती।
तन हो उदित रूप-माधुरी मधु, मनके सारे दुख हरती॥

श्रीराधाभावकी विचित्र लीला है। इसे भगवद्भावसे ही पढ़ना, सुनना, मनन करना और देखना चाहिये।

मेरे पत्र देरसे पहुँचे तो कोई विचार मत करना। मैं कभी-कभी पत्र लिख दिया करूँ—इतनी ही मुझसे आशा रखनी चाहिये। ..... की स्मृति तो बहुत बार होती है। प्रायः होती है।

--- ---

(३)

गीताप्रेस गोरखपुर १२-१२-५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे कई पत्र मिले। मैं तो ठीक समय पर कभी पत्र लिखता ही नहीं। नयी बात हो तो क्षमा माँगी जाय। तुम्हारा स्वास्थ्य वैसे ही चल रहा है—दवा कोई खास काम नहीं करती। ऐसे समाचार मिले हैं; सो मुझे बहुत चिन्ता रहती है। पर जो कुछ हो रहा है, सब श्रीकृष्णका मंगल विधान ही है। सब उनकी मधुर लीलाके ही विचित्र प्रसंग हैं। ..... जानेका योग नहीं हो सका यह भी प्रभुकी लीला ही है। पू० श्रीसेठजी चित्रकूट पधारे तो उनके साथ चित्रकूट जानेका मन होता दिखा, सो यदि वे जायँ और तुम जा सको तो बहुत उत्तम ही है। वे विलक्षण महापुरुष हैं,

उनका जितना संग प्राप्त हो, उतना ही हमारे लिये परम सौभाग्य है। यहाँ आनेका तुम लोगोंका मन रहता है। सो, तो मैं जानता हूँ। यहाँ चाहे जब, सुभीता हो तभी आ सकते हो, जरा भी संकोच या आपत्तिकी बात नहीं। पर पू० सेठजीके महान् सत्संगका परम लाभ छोड़कर यहाँ आना उचित नहीं प्रतीत होता।

लीला दर्शन (चिन्तन नहीं) दर्शन ही हैं। वे तुम्हारे सौभाग्यसे तथा श्रीराधामाधवकी कृपासे तुमको होते हैं, सो बड़े ही आनन्दकी बात है। .....के लीला दर्शनकी बात लिखी सो पढ़कर बहुत ही आनन्द मिला। वह धन्य है। वह लिखती है—भैया! अचानक तुम बहुत उपराम-सा हो गया है, कुछ बताता नहीं। सो, निर्दोष बात बताने-करनेमें कोई हर्ज नहीं है। वह भगवान्‌की कृपा पात्र है। ..... को भी लीला दर्शन होने लगे इसकी भी तुम लोगोंको मेरी इच्छानुसार चेष्टा करनी चाहिये। ..... मिले तो उसको भी लीला दर्शनका तरीका बतलाना चाहिये।

मेरा स्वास्थ्य इधर शिथिल चल रहा है। सावित्रीके माँके भी स्वास्थ्यमें गड़बड़ी है। सब भगवान्‌की कृपाके विविध रूप है। मनमें सदा सब अवस्थाओंमें प्रसन्न रहना चाहिये। इधर काम बहुत ज्यादा है। विशेषांक छप रहा है और वह इसी दिसम्बरमें तैयार हो जाना चाहिये। इसलिये रोज चार फार्म तैयार किये जा रहे हैं। जरा भी समय नहीं मिलता। फिर मिलने-जुलनेवाले भी बिना ही बुलाये आते रहते हैं। चित्त सर्वथा एकान्त रहता है। बंद कोठरीमें अकेले पड़े रहनेमें सुविधा प्रतीत होती है, पर होता वही है जो श्यामसुन्दर चाहते हैं। प्रेसके कार्योंसे भी पृथक् होना चाहता था। बार-बार सेठजीसे मौखिक प्रार्थना करके तथा लिखकर भी प्रार्थना की, पर वे माने नहीं।

..... से राम-राम स्नेह कहना। उसका पत्र मिल गया था। समय निकालकर उत्तर लिखूँगा।

इस पत्रके साथ श्रीराधाके प्रति कहे हुए श्रीश्यामसुन्दरके कुछ प्रेमोद्गार भेज रहा हूँ। इन्हें ..... आदि को पढ़ा सकते हो। नकल भी दे सकते हो। शेष भगवत्कृपा।

श्रीकृष्ण एक दिन निकुञ्जमें बहुत देरसे पधारे। श्रीराधा उनकी

प्रतीक्षामें बहुत दुखी थीं। श्रीकृष्णको भी अपनी देरीसे बड़ी ग्लानि हुई, तब उन्होंने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—प्यारी राधिके!

रोज की आदत मेरी यह छूटनी संभव नहीं।
भूल जाओ तुम मुझे, यदि चाहती हो सुख कहीं॥
भरा दोषोंसे, तुम्हारे साथ कुछ तुलना नहीं।
रूप-गुण-माधुर्यमें तुम-सी नहीं ललना कहीं॥
दिव्य प्रतिमा प्रेमकी, तुम त्यागकी शुचि मूर्ति हो।
इस अभावोंसे भरे जीवनकी मधुमय पूर्ति हो॥
अतुल निज गुणसे मुझे गुणवान ही तुम जानती।
प्रेम-गुण-माधुर्य-पूरित हो मुझे तुम मानती॥
गुण अमल अति, पर असलमें है तुम्हारा भ्रम महान्।
भूलसे तुम जानती हो, मुझे नित शुचि प्रीतिमान्॥
प्रेम निर्मलसे रहित, शुचि रूप, सद्गुणहीन मैं।
मधुरिमा मुझमें न कुछ, हूँ कलुष-पूरित दीन मैं॥
योग्यताकी दृष्टिसे मैं अनधिकारी हूँ सदा।
पर न करती तुम मधुर निज प्रीतिसे वञ्चित कदा॥
इस तुम्हारे एक-अंगी प्रेमका मैं दास हूँ।
इसीसे रहता तुम्हारे पद-युगलके पास हूँ॥
चाहता, तुम छोड़कर मुझको बनो, बस, सुखी अब।
देखकर तुमको सुखी, होगा मुझे सुख परम तब॥
पर सकोगी छोड़ तुम, सम्भव नहीं लगता मुझे।
तुम्हीं प्राणाधार, भागी दुःख भी होगा मुझे॥

इतना कहकर श्यामसुन्दर रोने लगे। श्रीमती राधिकाजी अपनेको नहीं सँभाल सकीं, वे श्यामसुन्दरके चरण-कमलोंसे लिपटकर अपनी प्रेमाश्रु धारासे उनके चरण पखारने लगीं।

(४)

गीताप्रेस, गोरखपुर १-३-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्नता हुई। .....का पत्र मेरे पास भी आया है, उसका उत्तर इसके साथ लिखकर भेज रहा हूँ। उसके लौटनेपर उसे दे देना चाहिये। उसके भाव बहुत ही ऊँचे है। श्रीराधामाधवकी उसपर बड़ी कृपा है। बाबा भी उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। तुम्हारे लीला दर्शनका काम ठीक चलता होगा। प्रेम राज्यमें जब कोई प्रेमी—आगे बढ़ जाता है, तब उसके मनमें प्रेमास्पदका मन आकर—उसके मनको मिटाकर अपना एकाधिकार कर लेता है। उस अवस्थामें उसके मनमें प्रतिकूलता नामक कोई वस्तु नहीं रह जाती। तीन स्तर हैं—

१-भगवान्‌का प्रत्येक विधान मंगलमय है, वे जो कुछ विधान करते हैं, उसीमें हमारा निश्चय ही परम मंगल निहित है—यह समझकर विश्वास कर प्रतिकूल प्राणी-पदार्थ परिस्थितिके प्राप्त होनेपर उसमें मंगल देखना। इसमें अपने मंगलकी इच्छा वर्तमान है। पर भगवान्‌के विधानमें मंगलका विश्वास है।

२-मंगल-अमंगलकी कोई कल्पना ही नहीं है। किन्तु मनमें अनुकूलता-प्रतिकूलता है और प्रतिकूल प्राणी पदार्थ परिस्थितिके प्राप्त होते ही वह यह तुरंत मान लेता है कि मेरे प्रेमास्पद प्रभुको इसमें सुख है। अतएव मेरे लिये यही परम सुख है। यों प्रतिकूलता परम सुखमें परिणत हो जाती है। परंतु प्रतिकूलता यहाँ सर्वथा मिटी नहीं है।

३-प्रतिकूलताकी सत्ता ही नहीं है। जो कुछ भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थिति प्राप्त होते हैं, वही सर्वथा अनुकूल है। प्रियतमका मन उसका मन बना हुआ अपनी निर्मित प्रत्येक परिस्थितिमें प्रीतमका सुख ही देखता है।

असलमें जबतक मनुष्यके मनमें जरा भी भोग-काम है, तबतक वह प्रेमके मार्गपर आ ही नहीं सकता। काम प्रेमका शत्रु है। काम गन्दी चीज है। उस गन्दगीमें पवित्र प्रेम नहीं आता और जहाँ प्रेम होता है, वहाँ प्रेमास्पदका मन ही उसका मन बन जाता है। इसीसे प्रेमास्पदकी यथार्थ महिमा, उसकी सेवाका स्वरूप, उसकी श्रद्धाका स्वरूप और उसके मनकी गुप्त बात तत्त्वतः वह जानता है। इस प्रकारके प्रेमीका नाम ही 'गोपी' है।

भगवान् श्यामसुन्दर अर्जुनसे कहते हैं—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां, मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

मेरे माहात्म्यको, मेरी सेवाको, मेरी श्रद्धाको और मेरे मनोगत विचारोंको तत्त्वसे केवल गोपिका जानती है, और कोई नहीं जानता। इसीसे गोपीका जीवन, उसका शरीर-रक्षण, उसका प्रत्येक विचार तथा कार्य श्रीश्यामसुन्दरको सहज सुख पहुँचानेके लिये ही हुआ करता है।

अपना जीवन ऐसा बने, श्रीश्यामसुन्दर तथा श्रीराधाका सेवा सुख ही जीवनका स्वरूप बन जाय, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

मेरे प्रति तुम्हारा और .....के जो भाव हैं उसके लिये मैं तुम लोगोंका ऋणी हूँ। मैं तो तुम्हारे भावानुकूल अपनेको कभी नहीं मानता। परन्तु किसीके भावपर मेरा विरोध करनेका भी क्या अधिकार है।

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

इतना ध्यान रखना चाहिये कि कहीं भी लौकिक भाव, लौकिक इच्छा, लौकिक कामना-वासना, लौकिक राग, ममता न आ जाय। कहीं पवित्र विशुद्ध प्रेमके नामपर मोह न आ जाय। कहीं काम प्रेमपर अपना काला पर्दा न डाल दे।

यह पत्र ..... को भी पढ़ा सकते हो।

मेरा स्वास्थ्य वैसा ही है। चीनीकी परीक्षा तो नहीं करवाई है। संभवतः वैसी ही हो, शायद घटी भी हो। भगवान्‌का खेल सदा सुखमय है।

---

(५)

गीताप्रेस, गोरखपुर ६। ३। ५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम प्रसन्न होओगे। ..... आ गयी होगी। उसको पत्र दे दिये होंगे। मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। शरीरकी कोई चिन्ता ही नहीं करनी चाहिये। यह कच्ची मिट्टीका पुतला तो ढहने ही वाला है। पीछे दुःख या धोखा न हो, इसलिये शुद्ध सच्चिदानन्दघन विग्रह भगवान् श्रीश्यामसुन्दरमें ही प्रेम, भाव तथा समर्पण होना चाहिये। किसी मानवमें नहीं। एक दिन श्रीराधारानीकी बड़ी विचित्र झाँकीके दर्शन हुए। कभी वे

श्यामसुन्दरको देखतीं, कभी हँसती, कभी न देख पाकर रोतीं, कभी उनके रूप-सौन्दर्यका स्मरण करतीं, कभी अपनेको सदा भूल जातीं। एक प्रिय सखी पास थी। उसीके सामने श्रीराधा अपने भाव व्यक्त कर रही थीं। व्यक्त करनेकी इच्छा चेष्टा नहीं थी। स्वतः ही उनके मुखसे स्थितिका वर्णन हो रहा था। बड़ी ही मार्मिक सुधा रसमयी झाँकी थी। उसीका कुछ भाव एक पदमें लिखा गया। वह इसके साथ भेज रहा हूँ। इसे ..... को पढ़ा सकते हो तथा परस्पर समझ-समझा सकते हो। इसके सुन्दर भावोंको समझ-समझकर तदनुसार अनुभूति होनेपर तो बड़ा ही आनन्द होगा।

शेष भगवत्कृपा। ..... को अलग पत्र आज नहीं लिख सका। वह कोई विचार न करे। कह देना।

---

(६)

गीताप्रेस, गोरखपुर २। ६। ५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा ३०। ५। ५९ का भाव विह्वलतामें लिखा हुआ छोटा-सा पत्र मिला। मैंने इस बीच एक पत्र लिखा था। पहुँचा होगा। एक पत्र पहले ..... के नाम भेजा था। वह भी मिला होगा, लिखना। इधर मैं पत्र बहुत कम लिख पाया। कुछ तो स्वभाव दोष और कुछ स्वास्थ्यकी गड़बड़ी ही इसमें कारण है।

हमारे प्रेमास्पद निष्ठुर नहीं हैं, वे तो अत्यन्त स्नेहमय तथा परम कोमल हृदय हैं। हमें जो कभी उनमें निष्ठुरताकी कल्पना होती है, वह भी उनकी स्नेह ममताकी अधिक झाँकी करानेके लिये ही हुआ करती है। सर्वत्र उनका स्नेह ही स्नेह प्रवाहित हो रहा है।

तुमने अपने मनकी व्याकुलता और फिर अचानक आये हुए लीला दृश्यका वर्णन लिखा सो वास्तवमें ऐसी ही बात है। सारी जिम्मेवारी श्रीराधारानीकी ही है। बस, उनका होकर रहना चाहिये। हँसना, मौज, रोना—ये सभी उस प्रेम-सागरकी विमल तरंगे हैं। कभी हँसना अच्छा लगता है, कभी रोना; इसी प्रकार कभी न रुकनेवाली हँसी आती है, कभी रुलाई। अपने तो दोनों ही मौजकी चीजें है, उनकी मौजमें मौज है।

मैं तेरी मौजमें मस्त हूँ, मैं हूँ दीवाना तेरा।
मैं रोता, कभी हूँ हँसता बस परवाना तेरा॥

प्रेम राज्यमें दूर-दूरके लोकोंकी दूरी भी नहीं होती, फिर मीलोंकी दूरी कौन चीज है ? आज बाबा मिले थे। ..... के भावपर मुग्ध थे। अत्यन्त गद्गद कण्ठसे उसकी याद कर रहे थे। ..... प्रसन्न होगी। दोनों ही प्रभुको अत्यन्त ही प्रिय हैं।

बाबाको तुम्हारे प्रणाम कह दिये हैं। उनके प्रेमके अनेकोनेक शुभभाव। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

---

(७)

गीताप्रेस, ३। ७। ५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे पत्र मिले। एक कल, एक आज। मुझे तो उनमें केवल भावुकता ही भरी दिखायी देती है। कहीं 'सयानापन' तो है ही नहीं। अविवेकी पागलोंकी मानो टोली बन गयी है। लिखता है बार-बार कि मैं तो कुछ हूँ ही नहीं। ..... की स्थिति तथा उसके भाव देखता हूँ, ... की बात सुनता हूँ तो उनकी निष्ठा देखकर चकित रह जाता हूँ। तुम तथा ..... की प्रशंसा करते हो। ..... लिखती है—मुझसे बहुत भूल होती है, मैं अपराध कर बैठती हूँ। उनके भावोंको देखकर मुग्ध होती हूँ; तुम ..... के भावोंकी सदा तारीफ करते हो। आजके पत्रमें तुमने ग्यारहवें अध्याय गीताके पाठके समयकी स्थिति लिखी—सो भैया! मैं क्या बताऊँ, तुम लोगोंके ये विचित्र, पवित्र भाव पढ़-सुनकर मैं तो मुग्ध हो जाता हूँ। ..... का छोटा-सा पत्र मिला। उसका पागलपन भी कुछ अजब-सा ही है। शरीरकी तुम चिन्ता करते ही नहीं। दवा, पथ्य सभी बातोंको अपने रंगमें रंग देते हो। फिर मेरे शरीरकी चिन्ता क्यों करते हो? सर्वत्र सदा प्राणनाथ श्रीकृष्णकी मधुर अनुभूति किया करो। वे कभी पृथक् होते ही नहीं। सब कुछ पर उनका एकाधिपत्य हो जाय।

श्रीराधाजीने एक बार अपना अनुभव तथा श्यामसुन्दरकी कही हुई बात सुनायी थी—बड़ी ही मधुर है। अलग पत्रेपर लिख रहा हूँ, इसे ..... को भी पढ़ा देना।

पू० सेठजीको मैं फिर 'ना' लिख रहा हूँ। वहाँ जानेका विचार नहीं हो रहा है। यदि कभी हुआ तो सूचना दूँगा। मेरा स्वास्थ्य शरीरकी दृष्टिसे

प्राय: वैसा ही है। कमजोरी कुछ घटी है। डाकका समय हो चला है।

रहते नित्य हृदय में मेरे, कभी न ओझल होते।
वहाँ अचल डेरा डाले, बस, रहते सुखसे सोते॥
नहीं किसीको घुसने देते, नहीं झाँकने देते।
पूरा निज अधिकार जमाये, पूरा आनँद लेते॥
बाहर भी वे रहते मेरे चारों ओर निरन्तर।
नहीं किसीको आने देते इन्द्रिय-सीमा भीतर॥
रहते सदा दृगोंमें छाये, वे नयनों के तारे।
कानों में मधु-वचन, सुधा-संगीत सुनाते प्यारे॥
नासाको मीठी अति अंग-सुगंध सुँघाते अनुपम।
सरस प्रसाद-सुधा रसना को मधुर चखाते हरदम॥
अंग-अंग को स्पर्श-दान कर, धन्य सदा वे करते।
अन्य सभी जग के सम्बन्धों को वे बिलकुल हरते॥
यों मति में, मनमें, इन्द्रियमें सदा बसे वे रहते।
एक छत्र अधिकार किये वे दृढ़ स्वरमें यों कहते-
"तुमपर, वस्तु तुम्हारी सबपर पूरा कब्जा मेरा।
मेरे सिवा अन्यको तुम भी कभी न कहती 'मेरा'॥
यों मैं सिर्फ तुम्हारी, तुम हो केवल मेरे प्यारे।
एक, सदा ही एक रहेंगे, कभी न न्यारे-न्यारे॥"

---

(८)

गीताप्रेस, गोरखपुर

आ०शु० १०। २०१६, १३-७-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम लोग मोटर ऐक्सिडेण्टसे बच गये सो भगवान्‌ने बड़ी कृपा की। मनको निरन्तर श्रीभगवान्‌में लगाये रखनेकी चेष्टा रखनी चाहिये। फिर चाहे जहाँ, चाहे जब मृत्यु आ जाय, कोई हर्ज नहीं है। मरना तो प्रत्येक शरीरधारीको है ही। ऐक्सीडेंण्ट न सही, यों ही किसी-न-किसी निमित्त से मौत आ जाती है। मनुष्य सर्वथा निरुपाय है। बस, स्मरण करता हुआ मरे—फिर कोई हर्ज नहीं।

किसीने विनोदमें कुछ कह दिया होगा। नहीं तो पू० श्रीसेठजीके साथ मेरी तुलना तो प्रकाश और अन्धकारकी तुलनाके सदृश असम्भव चीज है। कहाँ पूज्य श्रीसेठजी जैसे महापुरुष, कहाँ मैं दुर्गुणी तथा दुर्बलताओंसे भरा साधारण जन्तु! मुझमें यदि कहीं कोई अच्छापन है तो वह पूज्य श्रीसेठजीके चरणरजकी कृपाका प्रसाद है। नहीं तो मैं सर्वथा बुराईसे भरा हूँ ही। पता नहीं लोग क्यों मुझको उनसे अलग कुछ मान लेते हैं। अब कोई विचार रहा ही नहीं।

---

(९)

गीताप्रेस, ११-८-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा ८ ता० का सुन्दर पत्र आज मिला। तुमने लिखा सो है तो सत्य—लोग मुझको बहुत ऊँचा पुरुष मानते हैं। बड़ा संकोच करते हैं—मेरे साथ बात करनेमें, बड़े सम्मानसे बोलते हैं। कई डरते हैं। कोई महात्मा समझते हैं, कोई विद्वान्; कोई महान् भक्त तो कोई तो कोई बड़ा आदमी। इनमें मैं हूँ कोई-सा नहीं। झूठा ही रोब बन गया है। इसलिये इस दृष्टिसे इतने बड़े आदमीके साथ बात करनेका तुम्हारा क्या अधिकार था। नीच, अधम, नालायक किसी महापुरुषके साथ निःसंकोच कैसे बात बर्ताव करे। तुम्हारा यह मानना ठीक ही है। परन्तु भैया! मैं तो साधारण संसारी मनुष्य हूँ। साक्षात् परात्पर ब्रह्म श्रीश्यामसुन्दर भी व्रजमें अपना बड़प्पन भूलकर व्रजरसका आस्वादन करनेके लिये कभी यशोदाकी छड़ी देखकर रोते-दौड़ते हैं। कभी सखाओंकी फटकार सुनते हैं और उनसे हारकर घोड़ा बन जाते हैं। कभी व्रज-युवतियोंकी महाभाग्यताका विजय घोष करते हुए उनकी चरण सेवा करनेमें परम सुखका अनुभव करते हैं।

रसखानने कहा है—

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक ब्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

भैया! वे भगवान् केवल प्रेमके वश रहते हैं। वे अन्य किसी गुणको

नहीं देखते; न वस्तु की मात्रा देखते हैं—वे देखते हैं विशुद्ध प्रेम—उसे जहाँ पाते हैं—वहीं सारी भगवत्ताको किनारे रखकर दौड़ जाते हैं—एक अनुभवी महापुरुषने उनका स्वभाव बतलाते हुए कहा है—

गोपों के आँगन-कीचड़ में तुम प्रमुदित लोटा करते।
विप्रोंके शुचि यज्ञस्थल में जाते सदा लाज मरते॥
गो-गोपी-वत्सोंकी बोली सुनते ही उत्तर देते।
सत्पुरुषोंकी शत-शत स्तुतियोंपर भी सहज मौन लेते॥
करते ब्रजदाराओंका दासत्व, नहीं तुम हो थकते।
इन्द्रिय-जयी योगियोंका स्वामित्व नहीं तुम कर सकते॥
किसी मूल्यमें भी तो वे तब मिलते चरण-सरोज नहीं।
एक प्रेमसे ही उनकी बस होती रसमय प्राप्ति सही॥

प्रेममें निर्भय नि:संकोच व्यवहार होना ही चाहिये। नहीं तो रसका उदय ही नहीं होता। भय, मान, संभ्रम, संकोच, आदर आदि स्वाभाविक ही प्रेमके उच्चस्तरमें उत्तरोत्तर मिटते चले जाते हैं। शान्त, दास्य, सख्य और मधुर—इनमें उत्तरोत्तर समीपता है और जितनी समीपता है, उतना ही भय, मान, संभ्रम, संकोच आदिका अभाव है।

तुम्हारी पवित्र आत्मीयता—सगे बहिन भाईका एकात्म भाव बहुत सराहनीय है। पहले तुम्हारा मन समान भावसे लेकर था। पर अब तुम्हारे अंदर दैन्य उत्पन्न हो गया और तुम इन लोगोंकी चरण सेवा चाहते हो सो यह तुम्हारा सद्भाव है। इन लोगोंका तुम्हारे प्रति सद्भाव है और तुम्हारा इनके प्रति। इससे परस्पर विशुद्ध प्रेमकी वृद्धि और साधन मार्गमें बड़ी सहायता मिलेगी। एक दूसरेका गुण देखना तथा अपनेको नीचा मानना बहुत ही उत्तम भाव है। भगवत्कृपासे ही यह भाव प्राप्त होता है। .....के भाव बहुत श्रेष्ठ हैं। तुम्हारी सेवा करनी है, यह उसका सौभाग्य है। वह तो अपने दोष लिखा करती है, तुम्हारे गुण गाया करती है। इससे सेवाका अभिमान जाग्रत् नहीं होता। यह भी भगवत्कृपा ही है। छुटकारा मिलनेका इतना ही अर्थ था कि पत्र व्यवहार कम हो जायगा। पर मैंने तो पत्र देने बन्द किये ही नहीं थे। श्रीभगवान्‌तो छोड़ना जानते ही नहीं। हमीं लोग उन्हें छोड़ते रहते हैं।

पू०श्रीसेठजी बाँकुड़ा चले गये होंगे। उनके सत्संगमें तुम बराबर

जाते रहे सो बड़े आनन्दकी बात है। कुछ बात तो नहीं हुई होगी। तुमने एक सुन्दर लीला दर्शनका प्रसंग लिखा सो पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। सदा इसी प्रकार लीलाका अनुभव करते रहना चाहिये। ..... प्रसन्न होगी। उसकी याद आया करती है।

मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। कोई खास बात नहीं है। राधाष्टमी पर ..... आदिका आना होगा या नहीं? तुम्हारा और ..... का आनेका क्या ढंग है, लिखना।

---

(१०)

गीताप्रेस, गोरखपुर ११-१-६०

सप्रेम हरिस्मरण। आज सबेरे तुमसे फोन पर बात हुई। तुम्हारे पुनः दौरा आनेकी बात जानकर बहुत ही चिन्ता हो रही है। डा०.....ने जो दवाइयाँ बतायी हैं, उन्हें लेना शुरू किया होगा। वे भी पूरा निदान तो कर ही नहीं पाये। केवल आनुमानिक बात ही कहते हैं। तथापि उनकी दवा लागू पड़ना कोई बड़ी बात नहीं है। तुम मनमें घबराना नहीं। श्रीभगवान्‌के मंगल विधानपर पूर्ण विश्वास रखना। भगवान्‌की कृपासे तुम क्षणभरके लिये भी वंचित नहीं हो। प्रत्येक अवस्थामें वह तुम्हारी प्रत्येक गतिविधि को देखती और अपनी मधुमयी वर्षा करती रहती है। घरवालोंका घबराना, चिन्ता करना तो सहज है। उनका स्नेह है। अतएव उनके स्नेहका सदा आदर करना है। परन्तु उनको भी सदा धैर्य ही देना है। मंगलमय प्रभु हर स्थितिमें निश्चय ही मंगल करते हैं। फिर तुम जिस प्रेम राज्यमें रहते हो, उसमें तो मंगल-अमंगलकी कल्पना भी नहीं है। वहाँ तो अनन्त आनन्द समुद्र लहराता है—सर्वदा, सर्वत्र समस्त अवस्थाओंमें। अतएव तुम मनमें अत्यन्त प्रसन्न, प्रफुल्लित, शान्त, आनन्दमग्न रहना। बाबासे आज बात हुई थी। वे पहले तो बहुत चिन्ता करने लगे। फिर हँसने लगे। उनकी हँसीमें बड़ा ही प्रेम था, आत्मीयता थी और तुम्हारे सौभाग्यका परम संकेत था। बाबा स्वयं बीमार हैं। हृदयमें धड़कन है, दर्द है, ज्वर है, पर अपनी मौजमें मस्त हैं। मानो शरीर कुछ है ही नहीं। मैं आज कई दिनों बाद स्वास्थ्यकी बात पूछने गया था। गंभीर

मुद्रामें। पर वहाँ जाकर हँसने लगा। मानों कोई जरा भी विषाद-भयकी बात थी ही नहीं। फिर इस अवस्थामें भी वे बड़ा मधुर गाने लगे। हृदय आनन्दसे भर गया।

प्रिय ..... का, तुम्हारे प्रति जो अत्यन्त स्निग्ध भाव है, उसे लेकर उनका परम चिन्तित होना, सर्वथा स्वाभाविक और उचित है। ..... को लिखा था कि मैं तो श्यामा-श्यामसे यही प्रार्थना करती हूँ कि भैया तुरंत अच्छा हो जाय। ..... के हृदयकी बात तो उसका हृदय ही जानता है। वेदना तो भैया मुझे भी बहुत है। मैं भी हृदयसे चाहता हूँ—तुम बहुत ही शीघ्र स्वस्थ हो जाओ, पर साथ ही मुझे यह भी प्रत्यक्ष दीखता है कि श्यामसुन्दर स्वस्थ ही तो कर रहे हैं। निश्चय ही वे पूर्ण स्वस्थ कर रहे हैं, तब उनकी ओर देखकर चिन्ता दूर हो जाती है।

मेरा स्वास्थ्य शरीरकी दृष्टिसे अभी वैसा ही है। कहीं भी जाने-आनेकी सलाह शरीरके रोगकी बात जाननेपर कोई भी देगा नहीं। पर मैं दिन भर काम करता हूँ। तब कलकत्ते क्यों न आऊँ। तुम सबसे मिलनेका भी मनमें बड़ा प्रलोभन है और वैसे वस्तुतः मैं सर्वथा निरोग, सर्वथा स्वस्थ हूँ। कर्म जगत्का मुझपर कोई नियन्त्रण ही नहीं है। रोग मेरे समीप ही नहीं आ सकते। लीलामयकी लीलाकी ललित लहरियाँ उठ रही हैं परम सुभावनी, मौज है। इसमें न शरीर है, न शरीरकी जन्म-मृत्युकी कल्पना है, न यह संसार है केवल लीलामय प्रभु सर्वत्र सर्वथा सर्वदा लीलायित हैं।

आनन्द-मौज, ... निर्भयता, निश्चिंतता बस, प्रेमसुधा व रंगोंकी मधुरतम झाँकी।

जीवन-मरण निरोग-रोगकी मिटीं कल्पनायें सारी।
नहीं कहीं अस्तित्व किसीका रहा तनिक सुख-दुखधारी॥
लीला-सुधा-तरंगिणिकी अगणित लहरें अति मनहारी।
उठतीं, ललित लास्य करतीं लावण्यमयी, जगसे न्यारी॥

---

(११)

गीताप्रेस, गोरखपुर २३। ३। ६०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा शरीर ठीक होगा। इधर मुझे कुछ सर्दी-

जुकाम हो गया था। ऋषिकेश २६ ता० को जाना है, अतः काम निपटाना था इसलिये पत्र नहीं लिख पाया। तुम्हारे तथा तुम्हारे अन्तरंग साथियोंकी मधुर स्मृति तो बनी रहती ही है। तुम्हारे स्वास्थ्यकी भी चिन्ता रहती है। भगवत्कृपासे तुम्हारे स्वास्थ्यमें कुछ सुधार हुआ होगा। तुम्हारा एक होलीका फिर १५ तारीखका पत्र मिला था। तुम्हारे मानसिक मनोहर स्वरूपके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी चीजसे अपनेको विशेष प्रसन्नता इसलिये हुआ करती है कि उसमें सहज अहं-मम का सम्बन्ध रहता है। .....के पत्र मिले थे। एक पत्रमें .....की अन्तिम पंक्तियाँ बड़ी ही सुन्दर थी अत्यन्त मननीय और प्रेम राज्यकी पवित्र आदर्श—

"..... सुधाधारा या अग्नि धारा कुछ भी बह रही है—एक मात्र उन्हींकी बह रही है, बस, हमलोग तो खाली देखते जायँ, मौज करते जायँ प्राणप्रियतम श्यामसुन्दरकी उनकी अपनी लीला तरंग देख देखकर।"

इसमें वेदान्तका द्रष्टा पुरुष भी है, केवल देखनेवाला। सुख-दुःखसे ऊपर उठा हुआ—पर वही नहीं है। अग्निधारामें भी प्राणप्रियतमकी अपनी लीला तरंग देखकर उसमें मौज करनेवाला—रसपूर्ण प्रेमीकी। अपनी इस मौजसे ही तो वह अग्निधारामें भी सुधाधाराका अवगाहन पान करता है। केवल देखता ही नहीं, तभी तो मौज है—देखनेवाला केवल मौज नहीं करता। इसी पत्रमें तुम्हारे शरीरके लिये बड़ी चिन्ता तथा शीघ्र स्थिर निरोग होनेकी व्यग्र कामना करती हुई लिखती है—'वास्तवमें तो हम लोग बिलकुल अपने स्व भगवान्‌में स्थित हैं ही। वही तो हमारे एक मात्र स्व है।'

बड़ी सुन्दर, बड़ी मनोहर, बड़ी पवित्र—तुम लोगोंकी भावधारा है। इसी प्रकार .....के पत्रमें भी पवित्र हृदयका रस भरा है। तुम्हारे पत्रकी कोई बात मैं नहीं कोट करता। वह तो शुरूसे अन्त तक भाव प्रवाहमय ही है। इस भावमें कहाँ रहना है, शरीर, शरीरका चिन्तन, शरीरके स्वास्थ्यकी कल्पना। यह सब तो कौतुक या तमाशा मात्र है।

..... से मेरा सस्नेह आशीर्वाद। तुम बहुत प्रसन्न रहना। मैं तो ऋषिकेश चैत्र शु० १ को पहुँच रहा हूँ। तुम लोगोंका शरीरसे भी वहाँ आना हो जाय तो अच्छा है। चेष्टा करना—फिर जैसा जो कुछ भी हो जाय। तुम्हारा शरीर ठीक रहे तो। रामनवमीके बाद .....जानेको कहते हैं उस समय ..... तथा उसके पिताजी भी साथ आ सकते हैं सो आनन्दकी बात है। यह

सम्मेलन तो हम सभीको प्रिय और वाञ्छित है, पर जो हो जाय—वही बहुत ठीक है। मंगलमय भगवान्‌का मंगलविधान तो भगवद् विश्वासी परन्तु मंगलाकांक्षी लोगोंके लिये परम मंगलमय है ही—प्रेमियोंकी मंगल-अमंगल तो उनका अपना प्रियतम है, वह सुखी हो सो करे-करावें। स्वच्छन्द मनमाना।

प्रिय.....के पत्र आये थे। मैं उत्तर नहीं लिख पाया। अब बीकानेरको क्या लिखूँ। वह शायद वहाँसे चल दिया हो।

प्रिय ..... लिखा सो ठीक है। इसमें क्या आश्चर्य है। यह आसक्ति सहज ही हुआ करती है। कम होना आश्चर्य है। मुझे आसक्ति है, इतनी नहीं होनी चाहिये यह विचार भी बहुत अच्छा है। जिसमें मनुष्यको आनन्दकी आस्था होती है; उसमें आसक्ति होती ही है। इसमें नयी बात नहीं है। पर तुम लोगोंसे मिलना रहेगा तो आसक्तिमें बहेगा नहीं।

..... बाबत लिखा सो ठीक है। बड़ी प्रसन्नताकी बात है। ..... को पत्र लिखूँगा। सबको मेरा यथायोग्य सप्रेम कहना। बाबाका स्वास्थ्य कुछ ढीला है। मेरा साधारण चल रहा है, बाबाके, सावित्रीकी माँ के सबसे यथायोग्य सस्नेह।

---

(१२)

गीताप्रेस, २३। ५। ६०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे पत्र मिले। पढ़कर अनिर्वचनीय प्रसन्नता हुई। पर तुम्हारी अस्वस्थताके समाचारोंसे चिन्ता हो रही है। पहलेसे कुछ लाभ हुआ होगा। पहले एक अनुष्ठान करवाया था। अब किन्हीं अच्छे विश्वासी ब्राह्मणकी व्यवस्था होते ही पुनः करवानेका विचार है। रामायणका पारायण शुरू कर दिया सो बहुत ही अच्छा है। साथ ही यदि—'**दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥**' इस सम्पुटसे भी किया जाय तो और भी उत्तम है। पाठ न हो तो इस 'अर्धाली' का जाप ही किया जाय। मनमें जहाँ तक हो प्रसन्न रहा जाय।

डा० .....को दिखाना बुरा नहीं है। वह बहुत होशियार डाक्टर हैं। देखकर कुछ नयी बात बतला दे तो ठीक है परन्तु डाक्टरोंका सारा आधार रहता है आजकल सब तरहकी परीक्षाओं पर। परीक्षाओं पर पहले निदान हो चुका है। दवा भी प्रायः वही देते हैं-सभी। पर किसी दवासे विशेष

लाभ भी हो सकता है। अतएव एक बार दिखा देना तो बहुत अच्छा ही है।

तुम लोगोंकी बड़ी मीठी याद आ रही है। तुम लोग वहाँ आते थे। कुछ बोलते नहीं थे। मैं रूखाईसे कहता था कि बोलते क्यों नहीं—वह मेरा एक स्नेहका विनोद होता था। मैं तो जानता था कि यहाँ तो केवल मूक भाषामें ही बोलना है। भाषाका अनुरोध हो जाता है। देखना या स्मरण करना है। दर्शन-श्रवण, स्मरणमें ही सारा भाषण होता है। बोलनेके लिये न भाषा रहती है, न बोला ही जा सकता है। श्रीचैतन्य कहते हैं—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति॥

अक्षयतृतीया वाले दिनकी पुष्पादि मिलनेके प्रसंगकी बात लिखी सो ठीक ही है। भगवान्‌की लीलामें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। वहाँकी प्रत्येक वस्तु ही विचित्र चमत्कारमयी होती है।

प्रिय .....सभीके बड़े विलक्षण भाव हैं। .....के भाव भी बहुत ही सुन्दर है। टेप सुननेसे जो भावोद्रेक होता है, सो तो स्वाभाविक ही है। होना ही चाहिये। वहाँ तो प्रत्येक छोटी वस्तु भी भाव उद्दीपन कर देती है।

मैं पत्र तुम लोगोंको सबको फिर लिखूँगा। इधर पत्र नहीं लिख पाया। तुम लोगोंकी चिन्ता न हो इससे जल्दीमें लिख दिया है।

ऋषिकेशसे .....का सुन्दर पत्र आया था। वे जेठ शु० १५ तक वहाँ रहनेवाले हैं।

---

(१३)

गीताप्रेस, १८। ६। ६०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। कल भाई ....से फोनपर बात हुई थी, तब तुमसे भी बात हुई। बड़ी प्रसन्नता हुई। तुम्हारा स्वास्थ्य कुछ ठीक है यह जानकर प्रसन्नता हुई। तुम चिन्ता मत किया करो। भगवान् पर छोड़कर निश्चिन्त हो रहो। ..... तीनों पाठ कर रही हो सो बहुत ठीक है। अभी करती ही रहो। इसमें हानि तो है ही नहीं। बहुत दिन हो गये तो क्या है? पाप थोड़े ही करती हो। इसलिये अभी चलाते ही रहो।

तुम लोगोंके मधुर अनुभवोंकी बात क्या कही जाय। तुम पर

श्रीकृष्णकी बड़ी कृपा है। इधर बाबासे बहुत कम मिलना हुआ। पर जब मिलना हुआ तुम लोगोंकी तुम्हारी ..... की चर्चा जरूर हुई और वे बड़े ही प्रसन्न होते रहे। तुम्हारी बीमारी बाबत भी पूछते रहते हैं।

मेरा चुरू जाना रूक गया है। कलकत्ते और ऋषिकेशमें भी—चीज तो थी ही, मैं बड़ी कठिनतासे रोकता था। इसीसे कभी-कभी लोगोंसे रूखा बर्ताव भी हो जाता था। पर मैं बात प्रकट नहीं होने देता था। आजकल चीज कुछ बढ़ गयी है। बात यह है कि कभी-कभी तो संसारकी सत्ता ही नहीं रहती है। यह स्थिति कभी १०। ५ दिन नहीं होती। कभी दिनमें ५। ७ बार हो जाती है कभी २। ४ मिनट ही रहती है। कभी पहरों बनी रहती है। इस स्थितिमें तो कुछ रहता ही नहीं, पर वह कहीं लगा रहता है, इससे बाहरकी बातचीत जैसी सोचनी-कहनी चाहिये, वैसी नहीं सोची जाती, नहीं कही जाती। कुछका कुछ सोच जाता हूँ और कुछका कुछ कह जाता हूँ। इस स्थितिमें भी बातचीत करने लायक दिमाग नहीं रहता। इसलिये उस समय भी मिलते-जुलनेसे बचना ही पड़ता है। नहीं तो बात करनेवालोंको कुछका कुछ उत्तर मिल जाता है। इस स्थितिमें कामकाज भी बिलकुल नहीं हो पाता। न पत्र लिख-लिखा पाता हूँ, न और काम ही कर पाता हूँ। इसीसे दो हजार आदमियोंकी भीड़में मैं ऋषिकेश नहीं गया और इसीलिये चूरू जानेसे भी इनकार करना पड़ा। इससे श्रीसेठजीने उत्सव स्थगित कर दिया है। अब आश्विनमें देखी जायेगी। यहाँ अधिकतर बन्द रहता हूँ। जब बाह्य दशामें रहता हूँ तब लोगोंसे बात करता हूँ, काम करता हूँ तथा पत्रादि भी लिखता-लिखाता हूँ। इसीसे पत्र कम लिख सका। कोई विचार मत करना। तुम लोगोंका माधुर्य मेरे हृदयमें मधुरता उत्पन्न करता रहता है और मानसिक मिलन भी मधुरतम होता रहता है। खास करके ..... से अधिक होता है। मानों वे अत्यन्त निकट हो गयी हैं। ..... का भी बड़ा मधुर स्मरण होता है। तुम्हारी वो पीड़ाका विशेष आजकल अनुभव होता है। ..... का स्मरण बड़ा ही अच्छा होता है, सुखमय पर उसमें तथा ..... के स्मरणमें बिलकुल भावान्तर है। दोनों ही एक दूसरेसे विलक्षण है।

अब दिमाग कुछ बिगड़ने लगा है। इससे पत्र बंद कर रहा हूँ।

---

(१४)

गीताप्रेस, गोरखपुर २। ८। ६०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा २९ तारीखका पत्र मिला। पहले भी मिला था। इधर पत्रादि लिखने लायक परिस्थिति ही नहीं रहती। कुछ पत्र तो स्टेनोंसे टाइप करानेके होते हैं, वे तो हो जाते हैं। सो भी रोज नहीं। बाकी हाथसे लिखनेके पत्र पड़े ही रहते हैं। रोज-रोज लिखना चाहता हूँ पर स्टेनोंको कुछ पत्र लिखवाने, डाक देखने, कल्याण प्रेसका थोड़ा-सा काम करने तथा भरसक रोज १ घंटे सत्संगमें जाने—इन कामोंको बड़ी कठिनतासे कर लेनेपर शेष समयमें कुछ कर ही नहीं पाता। ये काम भी रोज नियमित नहीं हो पाते। पर इतना समय तथा स्नान भोजनादिके लिये समय निकाल लेने पर शेष समय कमरेमें बंद रहकर ही बिताना होता है। उस समय कुछ भी नहीं हो पाता। यह चीज बढ़ी जा रही है। इस बार राधाष्टमीपर कैसे निभेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। जगत्‌की स्मृति ही नहीं रहती। उस समय क्या स्थिति रहती है, इस बातका भी बाह्य ज्ञान होनेपर कुछ भी पता नहीं रहता। यह अच्छा ही है। नहीं तो, उसकी चर्चा होती तो वह शायद दोनों बंद हो जाता। उस समय तो क्या होता है यह पता नहीं। पता नहीं तुम लोगोंको मिलते हैं या नहीं। उस दिन तुम ..... के घर गये थे। वहाँ ..... भी आ गयी। तीनोंमें बहुत देरतक चर्चा हुई सो तुम लोगोंमें रोज ही चर्चा होती रहती है। तुमने जो लीलानुभवका प्रसंग लिखा, उसे पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

प्रिय.....से मेरे सस्नेह यथायोग्य कहना। ..... के कई पत्र आ गये, उसे आज पत्र लिखूँगा। ..... को भी लिखनेका विचार है। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

पहलेके किसी पत्रमें तुमने अपने तथा ..... के एक ही रात्रिको एक-से स्वप्न आनेकी बात लिखी थी सो भाव साम्यमें ऐसा हुआ ही करता है। समान अनुभूति होती है स्वप्नमें नहीं, जाग्रत्‌में भी।

बाबासे इधर बहुत कम मिलना हो पाता है। वे तो प्रायः अपनी उन्मत्ततामें रहते ही हैं। इधर मेरा भी प्रमाद बढ़ रहा है। इससे दस-पाँच दिनोंमें कभी पाँच-सात मिनट किसी निमित्तसे उनके पास जा पाता हूँ। जाता हूँ तब प्रायः तुम लोगोंकी चर्चा चलती है। तुम लोगोंके प्रति उनका बहुत

ही अद्भुत स्नेहाकर्षण है।

मैं पत्रादि न लिख सकूँ तब भी तुम लोग तो लिख ही दिया करो। इससे स्मृति तथा सुखकी वृद्धि होती है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुका आदर्श सामने रखना है। निरन्तर भाव राज्यमें ही निवास बाहरसे पूर्ण वैराग्य, सच्ची विषय-विरक्ति और हृदय भगवान्‌के विशुद्ध अनुरागसे पूर्ण। हृदय सदा छलकता ही रहे। प्रेमास्पद प्रभुका नित्य मिलन। सचमुच वियोग बड़ा सुखदायी होता है। मिलनमें भोग है, वियोगमें भोगवर्द्धन है। मिलनमें, मिलन-भंगका भय है, वियोगका स्मृतिजनित यथार्थ मिलन सर्वथा भयशून्य है। उसके भंग होनेकी संभावना ही नहीं। प्रभुको नित्य अपने बाहुपाशमें बाँधे रखना। बिना किसी भय, संकोच, मर्यादा, मान संग्रहके यह वियोग-मिलनमें ही होता है। संयोग मिलनमें तो बहुत-सी बाधाएँ रहा करती है।

---

(१५)

गीताप्रेस, गोरखपुर ११। १०। ६०

सप्रेम हरिस्मरण। ..... के साथ कुछ प्रसाद भेजा था। पहुँचा होगा। सबको दे दिया होगा। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा, प्रिय.....का स्वास्थ्य ठीक होगा। उसको मेरा सप्रेम हरिस्मरण कहना। तुम्हारे पिताजी, माताजी, भाईजीसे मेरा सस्नेह सादर यथायोग्य कहना। मेरा स्वास्थ्य ठीक है।

तुमने पहले पत्रोंमें जो स्वप्न तथा अनुभवकी घटनाएँ लिखीं, उन्हें पढ़कर प्रसन्नता हुई थी। भगवान्‌की लीलाओंका जितना चिन्तन, अनुभव हो, उतना ही मंगल है। जगत् जितना ही हृदयसे निकलेगा, उतना ही जगत् हृदयसे निकल जायेगा। भगवान्‌की इतनी नित्य सन्निधि रहनी चाहिये कि सभी समय सभी करणोंके द्वारा भगवान्‌का ही मधुर मनोहर परम पवित्र स्पर्श प्राप्त होता रहे। अन्य न वस्तु रह जाय, न विषय।

तुम्हारे सुन्दर भाव भगवत्कृपाका ही फल है। मनमें जगत्, जगत्‌के विषय, इन्द्रिय भोगकी जरा भी कल्पना रहनी ही नहीं चाहिये।

अनुभवकी बातें किसीसे कहनी नहीं चाहिये कभी। अपने अन्तरंग जो है, उनमें परस्पर कहने-सुननेमें आपत्ति नहीं है।

मेरा तुमसे एक अनुरोध है तुम्हारे ..... पास मेरे जो पत्र हों, उनको नष्ट कर देना चाहिये, या उन्हें इकट्ठे करके मेरे पास भेज देना चाहिये। तुम लोगोंकी धरोहरके सेफमें रखी चीजकी भाँति मेरे पास रहेगी। समय बड़ा खराब है। पत्रोंका कोई अपनी आँखके अनुसार कुछ भी अर्थ लगा सकता है। मेरी कोई भी महत्ता वास्तवमें है ही नहीं। पर दूसरे कोई मेरे शब्दोंसे ऐसी कल्पना भी करे। यह उचित नहीं है। अतएव मेरी रायमें तो सभी स्थूल पत्र कागजोंपर लिखे—अवश्य नष्ट कर देना चाहिये। मैं भूल गया था, पर तुम मेरी ओरसे यही अनुरोध भाई.....से भी कह देना। इसमें जरा भी दूसरी बात मत समझना।

पवित्र प्रेम हृदयके अन्तरतम देशकी चीज है। वह तो सदा बढ़नेवाली ही है। बढ़ेगी ही। शेष भगवत्कृपा।

---

(१६)

गीताप्रेस, गोरखपुर २९। ५। ६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। मैंने पत्र न लिखनेकी प्रतिज्ञा तो नहीं की है पर स्थिति तो कुछ ऐसी ही हो रही है कि अधिकांश समय बाह्य चेतना शून्य स्थितिमें बीतता है। और जब बाह्य चेतना रहती है तब कामका ढेर लगा रहता है। मनसे चिन्तन तुम लोगोंका कितना होता है, यह मैं बताना नहीं चाहता; न बता सकता हूँ पर पत्र लिखनेमें समय, भाव, थकावट, काम आदि बहुत बाधक हो जाते हैं। लिखने लगता हूँ फिर भूल जाता हूँ, पत्र अधूरा ही रह जाता है। ..... ने यहाँ जो बात कही, वह ठीक है। भूल जाता हूँ तो कामके कागज भी लिखे पत्र भी फट जाते हैं। किसके कब फटे यह भी याद नहीं है। तुम्हारा अभी स्वास्थ्य पूरा ठीक नहीं। यह मेरे लिये चिन्ताका विषय तो नहीं है पर वैसे तुम्हारी वास्तविक स्वस्थताके विषयमें जब सोचता हूँ तब यह चिन्ता नहीं रहती।

असली स्वस्थता तो स्वमें अपने परम प्रियतम भगवान्‌में स्थित रहनेमें ही है। सो तुम हो ही। कभी-कभी विचलित हो जाते हो, यह अवश्य चिन्ताकी बात होती है। और यह कसर भी मेरी समझसे वे प्रियतम अवश्य मिटा देंगे।

तुमको तो निश्चिन्त होकर सदा सर्वदा अपने भगवान्‌में ही सु-स्थित

रहना, एकदम स्वस्थ रहना चाहिये। तुम दूसरी सोचते ही क्यों हो? जिनको जड़ शरीरमें ही प्रीति है वे सोचा करें। पर तुम तो प्रियतमकी वस्तु हो; जड़ शरीर तो हो नहीं। फिर तुम क्यों सोचते हो? सदा सर्वदा हँसते हुए प्रियतमके हाथका खिलौना बने रहो। बाबा इस लाइनको बार-बार दुहराया करते हैं।

'दूर हुआ दो के अभावमें भय-चिंता-विषाद मद मान।'

दूसरी दो पंक्तियोंमें कहा करते हैं।

जाना, आना, मरना, जीना रखता कुछ भी अर्थ नहीं।
एक तुम्हारे मनकी हो बस स्वार्थ यही परमार्थ यही।

प्रिय ..... के स्वास्थ्यमें सुधार लिखा सो बड़े आनन्दकी बात है। .....से मेरा सस्नेह हरिस्मरण कहना। तुम सभीकी बड़ी मधुर स्नेह भरी स्मृति हुआ करती है। पत्र चाहे न लिख सकूँ पर रहता हूँ तुम लोगोंके पास ही। तुम चाहे न देख सको।

---

(१७)

गीताप्रेस, गोरखपुर १२। ९। ६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र बहुत मीठा मिला था, उससे पहिले भी एक पत्र मिला था। मैं पत्र नहीं लिख पाता। भैया! क्या करूँ बड़ा परतंत्र हूँ।

तुमने अपने बहुत मीठे स्वप्न तथा जाग्रतके कुछ प्रत्यक्ष अनुभव सत्य है तथा तुम्हारे प्रति '.....' महान् प्रीतिके परिचायक है। तुम्हें क्या लिखूँ। मूक भाषामें ही सब पढ़ना चाहिये।

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिका मिटा विचार विवेक।
रहे सभीमें मधुर-मधुर छाये प्रियतम एक॥
खेलें मर्यादा-रहित, हो निर्भय, निश्शंक।
प्रेम अलौकिक दें मुझे, लगा-लगा निज अंक॥
प्राप्त करें प्रतिपल नवल मन-इन्द्रिय संस्पर्श।
दिव्य सुखार्णव मग्न हो, भरे हृदय नव हर्ष॥
नहीं भेद, लज्जा, सकुच, भय, विषाद, मद, मान।
आलिंगन-एकत्वमें, दो का रहा न ज्ञान॥

नित्य एक, नित बने दो रचने लीला-रंग।
ललित, अलौकिक, पर रुचिर, कर श्रुति-सीमा-भंग॥
आस्वादक-आस्वाद्य में नहीं तत्त्वतः भेद।
दोष-कल्पना अतः कुछ नहिं उपजाती खेद॥
नित्य मधुरतम, नित स-रस, नित नूतन आस्वाद।
सहज तृप्त अतितृप्त नित, पाते परमाह्लाद॥
सुखमयको सुखदायिनि यह शुचि रसकी रीति।
भुक्ति-मुक्तिसे विरत कर, देती पावन प्रीति॥

तुम्हारे सारे पत्रोंका उत्तर है यह। समझ लेना। संक्षिप्त सूत्ररूप है। ..... से मेरा यथायोग्य कहना। सब प्रसन्न होंगे। ..... का तथा तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। मेरा मस्तिष्क अव्यवस्थित बहुत अधिक रहता है इसलिये मैंने ऋषिकेशका विचार एकदम छोड़ दिया है। ..... की बात अलग है। शेष भगवत्कृपा।

---

(१८)

गीताप्रेस, गोरखपुर २४-६-६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। एक पत्र पहले भी मिला था। कल ..... को एक पत्र लिखा याद है, पहुँचा होगा। तुम्हारा विचार बहुत ही ठीक है। मेरी समझसे तो केवल 'भगवान्' शब्द ही लिखना सर्वोत्तम है। 'प्रियतम' आदिमें भी दूसरी बात समझी जा सकती है।

तुम्हें आजकल जो प्रत्यक्षवत् अनुभूतियाँ हो रही हैं सो बहुत आनन्दकी बात है। इन अनुभवोंको कभी भी असत् मिथ्या या कल्पना नहीं मानना चाहिये। यह सभी सत्य है। तुम्हारा प्रगाढ़ तथा अनन्य भाव ही इसमें कारण है। भगवान् बहुत विधि-विधानसे साधन करनेवाले निष्ठावान पुरुषोंके सामने अपना अनावरण रूप प्रकाशित नहीं करते। वे प्रगाढ़ तथा अनन्य प्रेमीके सामने ही इस तरह स्पष्ट रूपसे प्रकट होकर अपनी लीलामाधुरी तथा रसमाधुरीका दर्शन पान कराया करते हैं। विधिविधान वाले आदरणीय विद्वान तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इसीसे वे लोग इस प्रकारके अनुभवोंको मिथ्या बतलाते हैं और इसलिये ऐसे अनुभव अत्यन्त गुप्त,

किसीके भी सामने प्रकट न करने लायक तथा सर्वथा अमूल्य निधिकी भाँति छिपा कर रखनेकी वस्तु होते हैं। तुम एक ..... , कुछ कुछ ..... के सिवा अन्य किसीके सामने उनको प्रकट नहीं करते सो बहुत ही ठीक कर रहे हो। ऐसा ही करना चाहिये। इस प्रकारके अनुभवोंको कहीं लिखकर भी नहीं रखना चाहिये क्योंकि ये किसी भी प्रकारसे, किसी भी अंशमें प्रचारकी चीज नहीं है। प्रचार करना तो इन अनुभवोंका तिरस्कार करना है और कभी-कभी प्रचारित होनेपर इनका होना ही एकदम बंद हो जाता है। अतएव इनको तो अत्यन्त-अत्यन्त गोपनीय रखना चाहिये। पर साथ-साथ यह सावधानी भी व्यवहारमें रखनी चाहिये जिससे प्रिय ..... आदिको जरा भी यह सन्देह न हो कि यह मुझसे छिपाता है। उन लोगोंसे प्रेमपूर्वक बात करनी चाहिये। तथा जो बात विधिसंगत कहने योग्य हो, वह कहनी भर चाहिये। वे दूसरे हैं, उनसे परायापन है, वे अनधिकारी हैं यह समझकर तो छिपानी ही नहीं है। छिपानेका मुख्य हेतु यही है कि यह चीज ही छिपानेकी है। प्रकट की जा सकती ही नहीं। पिता-माता जानते हैं कि हमारे पुत्र तथा पुत्रवधू रात्रीमें समागम करते हैं परन्तु वह वस्तु ही ऐसी है जिसकी न तो कभी चर्चा की जा सकती है न किसीके सामने करने की ही स्थिति है। यहाँ इस क्षेत्रमें तो माता-पिताकी तरह भी किसीको यह पता ही नहीं होना चाहिये, यह कल्पना भी नहीं होनी चाहिये कि इनको ऐसे अनुभव होते हैं। यह तो उससे भी अधिक परम गोपनीय है।

परम गोप्य अतिसय अमल, सुचि रस यह अनमोल।
कबहुँ न परगट कीजियै, कितहूँ बाचा खोल॥
प्रियतम परसत प्रिया के, प्रिया पीउ के अंग।
तनिक न सहम-सँकोच मन, करत बिबिध रस-रंग॥
कहत न काहू सौं कबहुँ, दोउ यहि रस की बात।
रहत सदा मन-मधुप पै रस-सरोज मँडरात॥
रस अगाध सर रहिय नित मगन, उछरियै नायँ।
जानि न पावै पै न कोउ, काउ न आवैं जायँ॥

तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। बस, रसमें डूबे रहो।

---

(१९)

७। ७। ६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम लोगोंका मीठा पत्र मिला। पढ़नेमें बड़ा रस आया। उत्तर क्या लिखूँ? दिमाग ही ठीक नहीं है। एक निर्मल रसमयीके उद्गार लिख दे रहा हूँ। यही पत्र समझ लेना। तुम्हारे पत्रका उत्तर फिर कभी दिमाग ठीक होने पर।

कैसे देखूँ दूर मैं, प्रभु जब रहते पास।
करती मैं इससे सदा प्रभु-चरणोंमें बास॥
निरख रहे मुझको सदा प्रभु नित निज रस-नैन।
मेरे दृग भी लग रहे, भोग रहे सुख चैन॥
रस-वर्षा करते मधुर प्रिय मुझपर दिन-रात।
रहती रसमें मग्न, सब डूबे रहते गात॥
मिले नित्य रहते सभी—मन-मति, इन्द्रिय-अंग।
बिना किसी व्यवधानके, नित नव-नव रस-रंग॥
भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा मिटी रही न देहासक्ति।
प्रियतममें नित बढ़ रही अति निर्मल अनुरक्ति॥

---

(२०)

२०। १०। ६१

..... प्रेम सहित राम-राम। तुम्हारा ..... आदिके पत्र मिले थे। पर मैं तो न पत्र लिख पाता, न मिल पाता, न बातचीत करता, न सत्संगमें जाता, केवल किवाड़ बंद किये पड़ा रहता हूँ। बाह्य चेतना बहुत कम रहती है। यहाँ रात-दिन रहनेवालोंके ही दर्शन नहीं हो पाते। ..... से भी नहीं मिला। सब प्रसन्न, सब लीलामयकी लीलाके उपकरण, सारी उनकी लीला, मिलना-न-मिलना भी उनकी लीला ही, जन्म-मरण सब उनकी लीला, बस लीला ही लीला। तुम भी लीला, मैं भी लीला, सभी लीला, ... सभी लीला। सबके प्रति राम-राम भी लीला, उनके राम-राम भी लीला। उनके तुम्हारे अनुभव भी सब लीला। तुम्हें लिखनेवाला और लिखना भी लीला तुम पत्र पानेवाले और पढ़नेवाले भी लीला। ..... लीलाने पूछा ..... को पत्र लिखा सो उस लीलाने पत्र लिख कर लीला कर दी।

---

(२१)

गीताप्रेस, गोरखपुर १८। ११। ६१

सप्रेम हरिस्मरण। इधर मैंने तुम लोगोंको किसीको पत्र नहीं लिख पाया। रोज ही लिखना चाहता हूँ। पर मस्तिष्क अप्रकृतिस्थ रहता है। बहुत कम समय प्रकृस्थ रहता है। और उस समय तमाम प्रेसका काम देखता हूँ। काम पूरा होते न होते फिर मस्तिष्क अप्रकृतिस्थ हो जाता है। चेतनाके समय तुम लोगोंकी बड़ी ही मधुर स्मृति होती रहती है। और उस स्मृतिसे बहुत सुखका अनुभव होता है। मेरा पत्र न पहुँचे, इससे क्या तुम लोगोंको भी पत्र नहीं लिखना चाहिये? इधर तुम्हारा, ...कोई पत्र नहीं आया। बेचारा ..... तो पत्र लिखता रहता है। उसके पत्रोंमें बड़ा दैन्य रहता है। तुम लोगोंने शायद यह सोचा हो कि भाईजीको पत्र लिखकर उनको परेशान करना ठीक नहीं। पर तुम्हें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि तुम लोगोंके पत्रोंसे मुझे बहुत सुख मिला करता है। अत: मेरा पत्र चाहे न पहुँचे पर तुम लोग तो सभी अलग-अलग पत्र देकर मीठी-मीठी बातें लिखा ही करते रहो। तुम ..... सभी पत्र दिया करें। ..... का पत्र बहुत मीठा लगता है पर वह तो लिखती ही नहीं।

.....अपने पत्रोंमें तुम लोगोंके प्रति बड़े ही ऊँचे भाव व्यक्त करता रहता है। अपनेको बहुत दीन बतलाता है। तुमसे आजकल मिलना होता रहता है। बातचीत तो तुम कम ही बताते हो (ऐसा उसका भाव है) पर मिलनेसे ही उसको बड़ी प्रसन्नता है। प्रिय ..... का पत्र आया था। वह भी बड़ा भावुक है। उसको ऐसी कल्पना है कि उससे कोई भूल हो गयी है, जिसके कारण तुम उससे कुछ नाराज हो। सो तुम नाराज तो क्यों होने लगे पर उसके मनकी पीड़ाको दूर कर देना। ..... का पत्र आया था। मैंने तो किसीको पत्र नहीं लिखा। उसको भी नहीं लिखा, लिखूँगा। प्रिय ..... को न भेजनेका तार द्वारा समाचार मिल गया था। अतएव उसे नहीं भेजा है। उसका शरीर तो ठीक मालूम होता है, पर पढ़ाई नहीं हो पाती। इसीसे वह आना चाहता था। मुझसे तो सभीका मिलना आजकल बहुत ही कम होता है। क्योंकि अधिक समय तो किवाड़ बंद ही रहते हैं। कभी खुले होते हैं तो भी प्राय: पूरी-पूरी चेतना नहीं रहती। इससे कोई आता नहीं। ..... संकोची भी है। इससे

मिलना कम ही होता है। सत्संगमें मिलना हो जाता था पर मैं आज कल सत्संगमें भी कभी दो चार दिनोंमें एक दिन जाता हूँ।

बम्बईसे ..... का बड़ा विचित्र पत्र आया था। पता नहीं तुमने उसपर क्या जादू कर दिया।

सुना है आज कल भाई .....की आफिसमें कीर्तनका सुन्दर कार्यक्रम होता रहता है। तुम भी उसमें जाया करते हो।

---

(२२)

गीताप्रेस, गोरखपुर २८। ११। ६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। पहले भी एक पत्र मिला था। मेरे मस्तिष्ककी वही स्थिति चल रही है। इस समय कुछ ठीक है। उससे पत्र लिख रहा हूँ। ..... सबसे सप्रेम यथायोग्य कहना। श्री ..... को क्या तकलीफ हो रही है। अब क्या हाल है लिखना। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। यहाँ घरमें प्रायः सभी कुछ-न-कुछ बीमार है। भगवान्‌की कृपा है।

तुम्हारा मन स्वाभाविक एकान्त चाहता है सो तो ठीक है पर तुम सब लोगोंसे मिलते हो। उनके कीर्तन आदिमें भी जाते हो सो बहुत अच्छी बात है। उन सब बेचारोंको तुम्हारे द्वारा बड़ी पवित्र वस्तु मिल रही है। पर तुम पर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। जो वे तुमको अपने प्रेम तथा भाव वितरणमें निमित्त बना रहे। इन सभीका तुम्हारे प्रति बड़ा ही ऊँचा भाव है। बम्बईसे भाईका पत्र मिला था वह भी बहुत प्रभावित है। अवश्य ही तुम्हें उसमें अभिप्रेत करनेकी कोई भी बात नहीं है। सब से ही करते करते हैं तथापि तुम्हारे लिये यह तो गौरवकी बात है कि पवित्र भगवद्भावके ग्रहणके लिये व्यक्ति तैयार हो रहे हैं। और उसमें तुम निमित्त बन रहे हो। अतएव एकान्तकी स्वाभाविक इच्छा परम कल्याणमयी होनेपर भी इन सब लोगोंको तुमसे भगवद्भाव मिलता रहे। इसके लिये समय देते रहना चाहिये। उसमें तुम्हें विशेष लाभ होगा। हानि तो होगी ही नहीं।

इतना ख्याल रखना कहीं भी व्यक्तित्वका प्रचार न होने लगे। मेरे सम्बन्धमें भी बहुत ही संयम तथा सावधानीसे बात कहनी करनी चाहिये। सभी लोग एकसे नहीं होते। तथा सबपर प्रभाव भी एक-सा नहीं पड़ता।

कहीं-कहीं उलटा भी पड़ सकता है। तुम इस विषयमें सावधान हो ही। अन्तरंग लोगोंसे खासकर ..... के सामने ही तुम बातचीत खुलकर करते हो सो बहुत ठीक है ऐसा ही करना चाहिये।

वे दोनों ही अभी बच्चे हैं। बड़े पवित्र हृदयके हैं। भावुक हैं। पर उनको यही समझाते रहना चाहिये कि भाव भी हृदयकी वस्तु है और पवित्र तथा मूल्यवान है उसे प्रकट नहीं करना है। घरवालोंको शरीरपर अधिकार है अतएव शरीरसे उनकी सेवा करनी तथा शरीरको यथासाध्य उनके इच्छानुसार रखना चाहिये। एवं अपने विनम्र तथा अनुकूल व्यवहारसे उनको सदा राजी रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिससे धीरे-धीरे उनका भी मन पलटे, वे भी अनुकूल होते रहें। यह असंभव नहीं है। न भी अनुकूल हों तब भी अपना व्यवहार बहुत ही सुन्दर रहे। मनमें सदा प्रभु रहें और केवल प्रभुको ही अपना समझे। शरीरपर जिनका अधिकार है शरीर उनके हाथोंमें छोड़ दे। जहाँतक बने उनसे अनुकूल बर्ताव करने की चेष्टा करे। अपने भगवान् अपनी चीज हैं। दूसरे कोई उन्हें न माने तो न सही। उनपर क्यों लादें? क्यों अपने भगवान्‌का कहीं तिरस्कार होने दें? भगवान्‌की मूर्ति अपने मनमें सदा बनी रहे।

मैं हूँ एक मात्र उनकी ही, वे ही एकमात्र मेरे।
रहा न मेरे मन कोई, जो मुझको अपनी कह टेरे॥
इसी भाँति उठ गया सभीपरसे अब मेरा भी अधिकार।
जबसे हुई समर्पित, जबसे की प्रियतमने अङ्गीकार॥
देह कहीं भी रहे, इसे दे कोई चाहे मनका प्यार।
अथवा इसे सताये कोई, देता रहे सदा दुत्कार॥
कोई कैसे भी माने, बरते इसको इच्छा अनुसार।
मुझसे मतलब नहीं, देहसे ही यह सारा है व्यवहार॥
मैं तो बन सकती न किसीकी ममताकी अब वस्तु कभी।
'मेरे'-'तेरे' के द्वन्द्वात्मक नष्ट हुए सम्पर्क सभी॥
वे मेरे, मैं उनकी अब, बस, रहा एक ही यह सम्बन्ध।
कटे मोह-ममताके सारे छोटे-बड़े विविध-विध बन्ध॥

बस, इस प्रकार सदा अपनेको उनका ही एवं केवल उनको ही अपना मानते-जानते रहें। न किसीके हम मालिक रहें न हमारे मनसे हमारा

अन्य कोई मालिक रहे। बस, दो ही बच जायँ हम और वे। शरीर कहीं कैसे भी किसी भी अधीनतामें रहे। वह प्रारब्धके भोग भोगता रहे। हम तो केवल प्रियतमके नित्य-संयोग-सुधा-सुखका ही उपभोग करते रहें। सभीको यह तत्त्व समझ लेना चाहिये। फिर न कभी वियोग होगा, न अशान्ति होगी। न दुःखका ही कहीं लेश रहेगा। सदा सर्वत्र केवल प्रियतमका मिलन ही मिलन रहेगा। सभीसे मिलनेपर मेरा यथायोग्य सादर सस्नेह। तुम्हारे पिताजी, माताजीको सादर प्रणाम।

---

(२३)

२८। १२। ६१

सप्रेम हरिस्मरण। प्रिय .....के साथ तुम चारोंके द्वारा भेजी हुई मधुर महाप्रसादी तथा तुम्हारा एवं ..... का पत्र मिला। ..... के पत्रमें उसके स्वप्नानुभवके मधुर वर्णन पढ़नेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों चित्र पूजा करके ही भेजे थे। वे ..... के साथ लौटा दिये जायेंगे। मशीन बाबत .....से बात हुई थी। तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु यह कोई नयी मशीन नयी खरीदी जा रही है। अतः ..... के यहाँसे आ जाय तो रख लेना न आवे तो कोई बात ही नहीं है।

..... बहुत प्रसन्न होगी। उससे मेरा सस्नेह यथायोग्य कहना उसका हृदय बहुत ही सुन्दर तथा पवित्र है। तुमने स्वप्नमें पत्र मिले लिखे ..... ने भी लिखा है सो भैया वे सब तुम्हारे मानस संसारके पवित्र चित्र हैं। मैं भी मन-ही-मन पत्र लिखता हूँ। मिलता तथा बातचीत भी करता हूँ। यह अपने आप ही हो जाता है। प्रिय ..... प्रसन्न होंगे। उनका भाव बढ़ता जा रहा है। सो आनन्दकी बात है। ..... के सुन्दर भाव हैं सो ठीक ही है। इलायची प्रसाद ..... के साथ भेजनेका विचार है। तुम्हारा यहाँ आना नहीं हुआ, इससे मनमें जरा भी क्षोभ नहीं मानना चाहिये। यहाँ रहनेवाले भी मनसे बहुत दूर रह सकते हैं एवं बहुत दूर रहनेवाले भी मनसे अति समीप रह सकते हैं। मनकी समीपता ही असली समीपता है। इसका प्रभाव तुम लोगोंके स्वप्नोंमें तथा भावोंमें अनुभव प्रत्यक्ष है। तुम बहुत-बहुत प्रसन्न रहना। सबसे मेरा यथायोग्य कहना।

---

(२४)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २२। ४। ६२

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा १० ता०का पत्र मिला था। पहले भी पत्र मिला था। मैंने भी पिछले दिनों एक पत्र दिया था। ..... तुम्हारे पास पहुँचा कि नहीं, पता नहीं। तुम्हारे १० तारीख वाले पत्रको पढ़कर मनमें बहुत विचार हुआ था। यद्यपि इधर बहुत दिनोंसे मेरा मस्तिष्क गड़बड़ चला आ रहा है। जगत्‌की विस्मृति हो जाती है। मन चाहता है संसारके अस्तित्वको त्याग देना और परिस्थितियाँ उसे पकड़ाये रखना चाहती हैं। अवश्य यह भी भगवान्‌की लीला ही है। दूलीचन्द के भयानक चोट आ गयी। वह अभी अस्पतालमें ही है। चेत तो है किंतु बोल नहीं पाता। दाहिना अंग भी काम नहीं करता। इसमें बहुत समय तथा मन लगाना पड़ा। इन्हीं सब कारणोंसे इधर पत्रादि लिखना बन्द सभी रहा। यह सब होनेपर भी तुम लोगोंसे मैं उपराम हो रहा हूँ। तुम्हारी कोई गलती हो गयी है इससे मैंने पत्र देना बन्द कर दिया है। ऐसी शंका ही तुम्हारे मनमें क्यों आयी? उससे ऐसा अनुमान किया जा सकता है (यद्यपि यह बात है नहीं) कि मेरी तरफसे कोई भूल या प्रमादकी चीज हुई होगी, जिससे तुम्हारे मनमें इस प्रकारकी शंका उठी। "भाईजी नाराज क्यों हो गये? उपराम क्यों हो गये?" इसका अर्थ यही हुआ कि तुम्हें केवल शंका ही नहीं हुई, तुमने मान लिया कि वे नाराज हो गये, उपराम हो गये। नहीं तो क्यों नाराज हो गये। "पहले तो कभी उपराम नहीं हुये थे। मेरे द्वारा कोई बहुत ही बड़ी गलती हो गयी होगी—मुझे बताते नहीं।" इत्यादि प्रश्न तथा शंकायें क्यों होती।

भैया! इन सारी निर्मूल शंकाओंको सर्वथा निकाल दो। ..... के प्रति भी मेरे मनमें जरा भी स्नेह कम कैसे होता। नाराज होना तो और भी नीची बात है। मैं पत्र न दे पाऊँ, कलकत्ते जाकर भी न मिल पाऊँ—भविष्यमें इसका अर्थ कदापि इस प्रकारका मत लगाना। इससे मुझे बहुत विचार होता है। पता नहीं तुमको तथा ..... को भी मैं कितने मानस पत्र लिखता हूँ। कैसे-कैसे स्मरण तथा अनुभव करता हूँ। जहाँ 'नाराजगी' शब्द ही कोषमें नहीं होना चाहिये वहाँ उसकी कल्पना कैसी?

तुम्हारे मनमें इस कारण जो उदासी रहती है। इसमें तुम्हारा मिथ्या

वहम ही प्रधान कारण है। तुम्हारे इस वहमके कारण ही शायद प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णसे तुम्हारी बातें या उनकी अनुभूति नहीं होती होगी। उनकी ओरसे जरा भी किसी प्रकारका भी न कोई भावान्तर है न हो सकता है। उनका तो हृदय ही ऐसा है कि वे एक बार स्वीकार कर लेनेपर छोड़ना जानते ही नहीं।

फिर तुम लोगोंने तो मन समर्पण कर दिया था। फिर तुम अपने मनमें सोचने वाले और मनको उदास रखनेवाले कौन होते हो? सौंपी हुई चीजपर फिर मालिकी करते जाना उचित है क्या? जिसका मन है वह सोचेगा। फिर तुम्हारा जो है, वह तुम्हारा है ही। तुम्हारा और कौन है? यह प्रश्न उठना चाहिये। तुम मनमें सदा प्रफुल्लित तथा परम निश्चिन्त रहो। सारी व्यर्थ कल्पनाओंको समूल उखाड़ फेंको। ..... से भी कह दो वे तुम्हारी देखा-देखी व्यर्थ शंका न कर बैठें।

तुम्हारा स्वास्थ्य भी पहलेसे ठीक होना चाहिये, लिखना। दवा होमियोपैथिक करते हो या दूसरी?

..... का पत्र मिला है। उसका उत्तर इसके साथ भेज रहा हूँ। .....से कह देना, वह उसके पास भिजवा देगी। तुम सब बहुत प्रसन्न रहना। दूलीचन्द के कुछ ठीक है पर अभी स्वस्थ नहीं है। तुम्हारे पिताजी, माताजीसे मेरा सादर हरिस्मरण कहना।

---

(२५)

गीताप्रेस, गोरखपुर ७। ११। ६५

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र कल मिला। छोटा पर बहुत मीठा। ..... के बर्ताव व्यवहारकी बात पढ़कर तो बड़ी ही प्रसन्नता हुई। इस बार मैं उसपर बहुत खीझा था यद्यपि अत्यन्त स्नेहसे। और उसने बार-बार यह कहा था कि मैं अपनी जानमें पूरा प्रयत्न किया करूँगी। सो उसने किया। उससे मेरा सिर ऊँचा होता है। मैं चाहता हूँ मुझसे प्रेम रखनेवाले सभी लोग जहाँ रहें वहीं प्रेमकी सुधाधारा बहाते रहें। सब लोगोंको अमृत वितरण करें सहज ही। पर ऐसा होता नहीं। तब मुझे स्पष्ट दीखता है यह मेरी ही कमी है, मुझमें ही दोष है इसी कारण मेरे पास रहनेवालोंमें तथा मेरे प्रेमियोंमें भी कमी रहती है। पर ..... में इस मीठे व्यवहारने मुझे बड़ा सुख दिया है।

उससे कहना वह 'तृणादपि सुनीचेन' बन जाय तथा अमृतकी अजस्र धारा बहाती रहे। सदा सर्वत्र प्रत्येक परिस्थितिमें खूब प्रसन्न तथा स्वस्थ रहा करो। सबसे बड़ी दवा है नित्य निरामय भगवान्‌की अखण्ड स्मृति, उसमें लगे रहो। दवा भी लेते रहो।

सावित्रीकी माँका स्वास्थ्य पूर्ववत ही चल रहा है। पूरी ठीक तो है ही नहीं। कभी गड़बड़ी कुछ कम हो जाती है, कभी ज्यादा। वह भी ..... को बहुत याद करती है बड़े स्नेहसे। पर अभी इतनी जल्दी उसका यहाँ आना व्यवहार विरुद्ध-सा है।

यहाँ और सब राजी खुशी है। घरमें सबसे मेरा सादर सस्नेह यथायोग्य कहना। शेष भगवत्कृपा।

---

(२६)

गीताप्रेस, गोरखपुर २७। ८। ६७

सप्रेम हरिस्मरण। देशकी वर्तमान स्थिति तथा खाद्य पदार्थोंके अभाव आदि अनेक कारणोंके साथ मेरे स्वास्थ्यकी शिथिलता तथा मस्तिष्ककी असंतुलित स्थितिके कारण इस बार श्रीराधाष्टमीका महोत्सव गोरखपुरमें नहीं मनाया जा रहा है। साधारण पूजनादि होगा।

उत्सवके लिये लोगोंको रहने, टिकाने आदिके लिये भी कोई व्यवस्था नहीं की जा रही है। अतएव उत्सवके निमित्त किन्हींको भी नहीं आना चाहिये। अपने यहाँके उन सब लोगोंको सूचना भी दे देनी चाहिये, जो उत्सवमें आया करते हैं या आना चाहते हैं कि वे उत्सवके लिये निश्चित रूपमें न आवें।

घरमें सबसे सप्रेम यथयोग्य कहना। मेरा स्वास्थ्य ढीला ही चल रहा है। तुम स्वस्थ और सानन्द होओगे।

---

(२७)

८। ३। ६८

सप्रेम हरिस्मरण। ..... यहाँसे कलकत्ते गये हैं। वे मेरे पत्रोंमेंसे प्रकाशित करने योग्य सामग्री संग्रह करने गये हैं। अतएव तुम्हारे पत्रमेंसे जो

अंश सर्वसाधारणके सामने (जैसे सत्संगकी बात होती है वैसे ही) रक्खे जा सकते हो तो उनकी नकल उन्हें करा देना। या पत्रमें निशान लगाकर उन्हें दे देना, वे नकल करके पत्र तुम्हें लौटा देंगे अथवा सब पत्रोंको रजिस्टर्ड पार्सलके द्वारा यहाँ भेज देना जिससे मैं उनमेंसे जो अंश देना होगा वह देकर पत्र तुम्हें वापस लौटा दूँगा।

प्रिय ..... से भी यही कह देना। मेरा देश जानेका विचार तो नहीं है। यद्यपि उनके तार पत्र अभी बराबर आ रहे हैं। २३-२४ का उत्सव है। ऋषिकेश नवरात्रके पहले या पीछे जानेका मन है। भगवान्‌के विधानके अनुसार ही सब होगा।

तुम्हारा सत्संगका कार्यक्रम चलता होगा। मनमें उत्साह बढ़े और साधनमें प्रगति हो ऐसा प्रयत्न सहज ही करते रहना चाहिये सो तुम करते ही हो।

मेरा स्वास्थ्य प्रायः ठीक है। मस्तिष्कवाली चीज बढ़ी हुई है। सावित्रीकी माँके वैसे ही चल रहा है। शेष भगवत्कृपा।

---

(२८)

गोरखपुर १४। ३। ६८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा ८। ३। ६८ का पत्र मिला था। पहले भी एक पत्र मिला था। भैया! इधर मेरा माथा ज्यादा-ज्यादा देर तथा प्रायः रोज ही खराब रहने लगा। इससे कामकाज प्रायः रूक गया। थोड़ी देरको जब बाह्य चेतना होती है तब कामका ढेर तथा मिलनेवालोंका समूह सामने रहता है उससे पत्र तो लिख ही नहीं पाता। मेरा स्वास्थ्य प्रायः ठीक है।

तुम प्रातःकाल कमरा बन्द कर लेते हो। १० बजेसे पहले नहीं खोलते। घंटा-डेढ़-घंटा टेपमें प्रवचन सुनते हो सो बहुत ही अच्छी बात है। प्रवचन सुनते समय तुम्हें जो अनुभूति होती है तथा भाव आते हैं यह और भी मंगलमय है। तुम्हें सुना हुआ प्रवचन कभी-कभी सारा-का-सारा याद रह जाता है। यह मनकी लगनका शुभ परिणाम है।

सत्संग सप्ताहमें एक बार होता है सो बहुत ठीक है। लोगोंमें उत्सुकता तथा उत्साह बना रहे सो ठीक है। पर यदि लोग चाहते हों तो दो बार करना चाहिये। इसमें लाभ ही लाभ है। हाँ, मैंने जैसा यहाँ तुमसे कहा

था कि व्यक्तिगत महत्वकी कोई बात वैसी सबके सामने कभी नहीं कहनी चाहिये। मेरे पास एक पत्र ..... का आया था लिखा था—'मैं भवनमें .....की सत्संगमें गयी थी वहाँ आपके बारेमें बहुत महत्वकी बातें सुनकर चित्त प्रसन्न हो गया। आप तो कभी ऐसी बात बताते ही नहीं' इत्यादि। इस बिचारीने बहुत ही सरल तथा शुद्ध भावसे ही समझा तथा लिखा है—पर कई तरहके लोग होते हैं वे अपनी भावनाके अनुसार विभिन्न अर्थ लगा सकते हैं। अतएव ज्यादा जोर साधनापर ही देना चाहिये। व्यक्तिगत महत्वकी बात तो कहीं अत्यन्त एकान्तमें जहाँ पूरा विश्वास हो वही किञ्चित् कहनी चाहिये। सबके सामने नहीं।

..... तुमसे मिले होंगे उनके काममें यथोचित सहायता तुम करते होगे। भगवान्‌में विश्वास भजनमें लगन, साधनामें रुचि, जीवनमें त्याग और दैवी सम्पत्तिके गुण जितने बढ़े उतना ही अच्छा है। यह भगवान्‌की तथा भगवत्स्वरूप जनताकी भी परम सेवा है। निरभिमान होकर यथासाध्य उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

तुम जो कुछ कहते हो, लोगोंको अच्छा लगता है। सो आनन्दकी बात है। देशवालोंके बहुत पत्र आते हैं। उनका साधन बहुत उत्साहसे चल रहा है सो आनन्दकी बात है। उन्हें बार-बार उत्साह दिलाना चाहिये। लोग भगवान्‌की ओर लगना चाहते हैं—यह बहुत आनन्दकी बात है। भगवान् तुम्हारे द्वारा यह परम सेवा ले रहे हैं। यह तुम्हारा सौभाग्य है।

भाई ..... के लड़केका विवाह वैशाख सुदी ८ का निश्चित हुआ है। उसके बाद तुम्हारा ऋषिकेश जानेका विचार है सो अच्छी बात है। मनुष्यको सद्विचार करना चाहिये। होगा तो वही जो भगवान्‌के मंगलविधानके अनुसार होना है। यहाँ सब राजी हैं, खुशी हैं। अबकी बार तुम्हारी स्मृति अधिक होती है और बड़ी मधुर होती है। शेष भगवत्कृपा।

---

(२९)

गीताभवन, स्वर्गाश्रम २४। ४। ६८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा १४। ४। ६८ का पत्र मिला। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। पर इधर कुछ

कमजोरी ज्यादा मालूम होती है। दिमाग बहुत ज्यादा खराब रहता है इससे कभी-कभी सत्संगके निश्चित समयपर भी मैं नहीं जा पाता हूँ।

यों सत्संगके दो समय है प्रातः ९:३० से १०:३० रात्रिको ८-९। दूसरेका स्वभाव बदलना तो सहज नहीं है। स्वयं ही समझदारीके साथ निबाहनेका प्रयत्न करना चाहिये। ..... बहुत समझदार है। जगत्का मिथ्या स्वरूप भी समझती है। यद्यपि बहुत ही अनुचित करती है, उसे तो ..... के साथ विशेष स्नेहका बर्ताव करना चाहिये। पर ..... को तो यही मानना चाहिये कि माँ है—उसका शाप भी आशीर्वाद है। उसकी दी हुई गाली भी मंगलमयी है। दूसरे, मानापमानकी भावनासे ..... को तो सदा ही ऊपर उठे रहना चाहिये।

मानापमान होता है नाम रूपका—उसे न मानो तो कुछ भी नहीं है। बकनेवाले बकते रहते हैं अपने उनके कहनेसे कुछ लगता ही नहीं। यों समझ कर दुःख नहीं करना चाहिये और भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे माँ जो पाप कर रही है, उसे क्षमा करें। दण्ड न दें।

'उमा संत की यहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई।'

.....को अपमान मानकर कभी दुःखी नहीं होना चाहिये, बल्कि माँ की अज्ञानतापर दुःख करके भगवान्से उसको सुबुद्धि देनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। न दुःखी होना, न रोना, न खीझना; माँके अज्ञानजनित आचरणके लिये दुःखी होना और अपने अपमानपर हँसना चाहिये। तुम उसे समझाना। वह बुद्धिमती है। समझ जायगी। शेष भगवत्कृपा।

---

(३०)

रतनगढ़ माघ बदी ३। २०१४

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। एक पत्र पहले भी मिला था। मैं समय पर उत्तर नहीं दे पाया सो कोई विचार मत करना। शरीरकी शिथिलता, स्वभावदोष तथा कामके कारण समय पर मैं पत्र नहीं लिख सकता और कोई बात नहीं है। तुम्हारे श्रेष्ठ भाव तथा भजन निष्ठाकी बात मैं जानता हूँ। तुम्हारा भाव बहुत सुन्दर है। भगवान्में मनकी जितनी प्रीति बढ़े तथा संसारके प्राणि पदार्थोंमें जितनी ही अधिक अनासक्ति हो उतना ही उत्तम है। भगवान्की कृपापर

दृढ़ और अनन्य विश्वास भगवान्‌के स्वरूपका चिंतन तथा उनके पवित्र नामका रटन बस यही सर्वोत्तम सरल साधन है भगवान्‌को अपना बनाने तथा उनका अपना बननेका, सो करती रहना। घरका प्रत्येक कार्य भगवान्‌की सेवा समझ कर उन्हें याद रखते हुए ही करना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

---

(३१)

रतनगढ़ माघ कृ० १३। २०१४

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र भाई.....के साथ मिला था। मैंने तुमको पत्र लिखा था, मिला होगा। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। विशेष बात यही है कि अपनेको विशेष रूपसे श्रीभगवान्‌के समर्पण कर दो। सारे कार्य भगवान्‌का चिन्तन करते हुए भगवान्‌की सेवाके भावसे करो। भगवान्‌को सदा अपने साथ और उनकी तुमपर अनन्त कृपा है इसका अनुभव करो। नाम-जपकी विशेष चेष्टा करो।

सत्संगके न मिलनेपर ढिलाई मालूम देती है सो तो ठीक ही है। सत्संगसे—अग्निको ईंधन तथा हवा मिलनेसे जैसे अग्नि तेज हो जाती है वैसे ही साधनामें तेजी आती है। सत्संगके अभावमें ईंधन वायु हीन अग्निकी भाँति ही शिथिलता आ जाती है। भगवान् सदा साथ हैं। इस भावपर सदा दृढ़ता होनेपर सदा परम सत्संग मिलता रहेगा। इसीके साथ सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय करके उनका संग करना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

---

(३२)

रतनगढ़ फाल्गुन कृ० ९। २०१४

तुम्हारा पत्र मिला था। उत्तर बहुत देरसे लिख रहा हूँ सो कोई विचार मत करना। तुमने लिखा कि मैं तो इतना ही जानती हूँ कि श्रीकृष्ण मेरे हैं और उनकी अपार कृपा मेरे ऊपर बरस रही है सो बहुत आनन्दकी बात है इससे अधिक जाननेकी आवश्यकता भी नहीं है। जब श्रीकृष्ण तुम्हारे हैं तो तुम उनकी हो ही चुकी हो। जीवके लिये बस यही परम साधन है कि वह भगवान्‌का हो जाय और भगवान्‌को अपना माने फिर कृपा बरसनेका तुम्हें अनुभव होता है इससे अधिक और क्या चाहिये। नाम-जपकी चेष्टा करती हो सो आनन्दकी

बात है। नाम जप प्रेमपूर्वक होना चाहिये। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने कहा है—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरूद्या गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति।

हे कृष्ण ! वह दिन कब होगा जब आपका नाम लेते ही मेरे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चलेगी, वाणी गद्गद होकर गला रूँध जायगा और शरीर रोमाञ्चित हो जायगा।

ऐसा न हो तो जैसे भी हो नाम जप होते रहना चाहिये। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। वैशाख तक गोरखपुर जानेका विचार है। शेष भगवत्कृपा।

---

(३३)

फाल्गुन० शु० १४। २०१४

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। उत्तर देरसे जा रहा है सो कोई विचार मत करना। मेरे चाहनेसे प्रेम मिलता होता तो सभीके लिये चाहता। प्रिय ..... से तुम सत्संगकी बातें सुनती हो सो बहुत उत्तम है। तुम्हारी इच्छा व्रजलीलामें मन लगानेकी है सो ऐसी इच्छा सौभाग्यसे होती है। मन लगाना मेरे हाथकी बात नहीं है। मैं तो कई साधकोंके मन लगाना चाहता हूँ पर नहीं लगता। पर भगवान्‌की कृपासे ही होता है। अतः उनकी कृपापर भरोसा करके उन्हींसे प्रार्थना करनी चाहिये। तुमने अपने लीला चिन्तनकी बात लिखी सो पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी प्रकार लीला चिंतन करती रहो। भगवान्‌की कृपासे नयी-नयी लीलायें देखनेको मिल सकती हैं।

अपने आपको भगवान्‌के समर्पण कर देना। नित्य-निरन्तर उनके नाम रूप लीला चिंतन करनेकी चेष्टा करना। इन्द्रियोंके भोगोंसे आसक्ति हटा लेना। भगवान्‌की कृपामें विश्वास करना ही भगवान् की लीला दर्शनके लिये भगवान्‌से विश्वासपूर्वक—प्रार्थना करना, ये ही प्रेमके परम साधन हैं। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। श्रीभगवान्‌की कृपासे सब आनन्द है। शेष भगवत्कृपा।

---

(३४)

रतनगढ़ चैत्र शु० ८, २८-३-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला तुमने लिखा मेरा सौभाग्य नहीं सब कृपा ही है। सो कृपाका अनुभव होना ही परम सौभाग्य है। कृपा तो मानव मात्र पर भगवान् की है। 'सुहृदं सर्व भूतानां' पर उसका अनुभव कितनोंको होता है। अनुभव तो दूर रहा विश्वास भी नहीं होता। विश्वास होनेपर तुरंत शक्ति मिल जाती है।

मनमें संसारी चिंतन होता है मान बड़ाई प्रिय लगती है सो यह तो स्वाभाविक ही होगा क्योंकि जन्म-जन्मान्तरका ऐसा ही अभ्यास है पर बीच-बीचमें भगवान्‌की लीलाका मधुर चिंतन होता है। यह भगवच्चिंतन अधिक-से-अधिक होनेकी जो इच्छा होती है यही बड़ी बात है और यही भगवत्कृपाकी अनुभूतिका परम सौभाग्य है। साधकोंके नाम बतानेकी आवश्यकता नहीं। ऐसे सैकड़ों व्यक्ति हैं जो मुझपर प्रेम रखते हैं तथा सहज ही उनके लिये मेरे मनमें बार-बार आती है कि उन्हें भगवत्प्रेम प्राप्त हो जाय। सांसारिक प्राणी पदार्थोंको भूल कर ये सर्वथा भगवान्‌में ही लग जायँ। पर मेरे मनमें आनेसे न आनेसे कुछ होता तो नहीं है होगा भगवत्कृपासे ही तथा वह कृपा सभी पर है। विश्वास एवं अनुभव करना चाहिये। मेरे ऋषिकेश जानेका न अभी कोई विचार है न मन है। अभी तो गोरखपुर जानेकी बात हो रही है।

(१) भगवान्‌का अखण्ड स्मरण बना रहे तथा संसारसे चित्त उपराम रहे।

(२) घरका प्रत्येक कार्य भगवत्पूजा के भावसे भगवान्‌का स्मरण करते हुए भगवत्प्रीतिके लिये हो और उत्साहपूर्वक हो।

(३) सबकी यथायोग्य सेवा भगवत्सेवाके भावसे हो।

(४) भगवान्‌के नामका जप स्मरण निरन्तर होता रहे।

ये चार चीजें करनी चाहिये।

---

(३५)

गीताप्रेस, गोरखपुर ३०-७-५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। मैं समय पर उत्तर नहीं लिख सका। सो कोई विचार मत करना। भैया ..... प्रसन्न होगा। तुम्हारा कभी-कभी उससे मिलना होता होगा। तुम्हारा लीला चिंतन तथा लीलादर्शनका कार्य भली-

भाँति चलता होगा। दिन-रात लीलाचिंतन हो तथा श्रीभगवान्‌की नयी-नयी पवित्र मधुर लीलाओंकी अनुभूति होती रहे इससे बढ़कर सौभाग्य पुण्य तथा परम साधन और क्या होगा। तुमपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। मेरा एक अनुरोध है इसे कृपणके धनकी तरह खूब छिपाकर रखना चाहिये। शरीरसे जो कुछ काम हो सबमें भगवान्‌की सेवा भावना रहनी चाहिये। जहाँ भगवान्‌में अनुराग होगा वहाँका संसारका राग अपने आप ही नष्ट हो जायेगा।

---

(३६)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २४-९-५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे कई पत्र मिले। मैं समयपर उत्तर नहीं दे पाया इसके लिये बड़ा संकोच है परन्तु मेरी स्थिति ही कुछ ऐसी है कि इच्छा करनेपर पत्र नहीं लिख पाता। तुम्हारी स्मृति तो हुआ ही करती है। तुमने एक पत्रमें स्वप्नकी दो घटनायें लिखीं। सो यह तुम्हारे सद्‌भावका परिणाम है। तुम्हें श्रीभगवान्‌के मधुर नाम प्रिय लगते हैं सो आनन्दकी बात है। वे मधुरातिमधुर हैं। उनका सभी कुछ अत्यन्त मधुर है। उनके माधुर्यकी जरा-सी भी मधुरता किसीको मिल जाती है तो फिर अन्य सारी मधुरता फीकी, नीरस या कड़वी हो जाती है। तुमपर उनकी अपार कृपा है। इसीसे प्रिया-प्रियतम लाडली लाल, श्रीश्याम-राधा तुम्हें इतने प्रिय लगते हैं। और तुम उनकी स्मृति उनका चिंतन तथा उनकी मधुर लीलाओंके दर्शन कर पाती हो।

चित्र शीघ्र ही बनवाकर भेजनेका विचार है। तुम भी निकुञ्जमें निकुञ्जेश्वर तथा निकुञ्जविहारिणीकी सेवामें ही निरन्तर लगी रहना चाहती हो सो तुम्हारी यह अभिलाषा बहुत ही मंगलमयी है। मंगलमय प्रिया-प्रियतम उसे पूर्ण करेंगे। मेरा कलकत्तेकी ओर जानेका अभी कोई ढंग नहीं दिखता। बाँकुड़ा जानेकी बात चल रही है सो यदि जाना हुआ तो १-२ दिनोंके लिये कलकत्ते आना हो सकता है पर ऐसी संभावना कम ही है। तुम अष्टयाम सेवा करती हो सो बहुत ही आनन्दकी बात है। तुम्हारे भावोंको देखकर बहुत प्रसन्नता होती है। मेरा पत्र देरसे पहुँचे तो विचार मत करना।

---

(३७)

गीताप्रेस, (गोरखपुर), २-१०-५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा २३ ता० का पत्र मिला। मैं समयपर उत्तर नहीं लिख सका। सो कोई विचार मत करना। एक पत्र लिखा था वह पहुँचा होगा। एक पत्र ..... को लिखा था। वह भी पहुँच गया होगा। पत्रादि लिखनेको समय बहुत ही कम मिलता है इससे बहुत विलम्ब हो जाता है।

तुम्हारे भाव बहुत सुन्दर हैं। तुमपर श्रीलाड़िली लाल दोनोंकी बड़ी कृपा है। तुम्हारी व्याकुलता पर राधारानी सदा रीझती रहती हैं। लीलाचिंतन कुछ ठीक है सो अब तक और बढ़ा होगा।

चित्र मँगवाया सो फोटो तैयार करवा रहा हूँ। चित्र बनानेमें तो बहुत देर हो जाती है। फोटो रंगीन तैयार होते ही भिजवानेका विचार है। ..... से राम-राम कहना। उसकी भेजी राखी पहुँच गयी थी।

बंदौ राधा पद कमल सकल कलुष करि छार।
जिन पै पियके दृग मधुर रहत सदा बलिहार॥

---

(३८)

गीताभवन, स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) आसाढ़ कृ० १२। २०१५

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। एक पत्र पहले भी मिला था। मैं आलस्य प्रमादसे उत्तर नहीं लिख सका। सो कोई विचार मत करना। तुम्हारा अधिकांश समय तो पवित्र लीला-चिंतनमें जाता ही है। कुछ समय लीलादर्शन नहीं होता इसीकी तुम्हें इतनी व्याकुलता है। सो यह तुम्हारा सौभाग्य है तथा श्रीभगवान्‌की तुमपर बड़ी ही कृपा है। तुम्हारा लीलादर्शनका एक वर्णन कल ..... ने मुझको पढ़ाया था। पढ़कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। भगवान्‌की कृपासे ही इसी तरह विभिन्न प्रकारके लीला दर्शन हुआ करते हैं। यहाँ सब प्रसन्न हैं। ..... श्रीव्रजमाधुरीका रसास्वादन तुम्हें प्राप्त हो रहा है। यह तुम्हारा परम सौभाग्य है। शेष भगवत्कृपा।

---

(३९)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ३१-१० ५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा ११-१०-५८ का पत्र मिला था। मैं समयपर उत्तर नहीं लिख सका सो कोई विचार मत करना। बाबाको तुम्हारा प्रणाम कह दिया था। उनका स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। मेरा आँकुड़ा राँचीकी ओर जानेका मन था पर जाना हुआ नहीं। अब तो कल्याणके विशेषांकको छपाईका काम शुरू हो गया है। अतः कहीं जानेकी बहुत कम सम्भावना है। तुमसे मिलनेका मेरा भी मन है पर कब मिलना होगा कुछ कहा नहीं जा सकता। भगवान्‌के मंगल विधान पर ही सब निर्भर है। राधाष्टमी पर तुम नहीं आ सकी सो कोई विचार मत करना। तुम पर तो श्रीराधारानीकी अपार कृपा है तभी वे अपनी मनोहर झाँकी श्रीश्यामसुन्दरके साथ तुम्हें दिखाया करती है। तुमने जो एक वर्णन लिखा तथा तुम्हारे एक चिन्तनका वर्णन भाई ..... ने लिखा था पढ़कर मैं मुग्ध हो गया। धन्य हो तुम। संसारकी बातें कभी-कभी याद आ जाती हैं उनसे घबराना नहीं चाहिये। वे सब मानो प्रियतम श्रीकृष्णकी विशेष याद दिलानेके लिये आती है पर तुम्हारी प्रार्थना बहुत ही श्रेष्ठ है कि मन श्रीश्यामसुन्दर तथा श्रीराधारानीके लीला चिंतनसे कभी हटे ही नहीं। बस, इसी चाहको बढ़ाती रहो। फिर जगत् अपने आप ही मनसे हट जायेगा। जगत् तो वहीं तक रहता है जहाँ तक भगवान्‌का हृदय पर पूरा अधिकार नहीं हो जाता। .....से मेरा राम-राम कह देना। शेष भगवत्कृपा।

---

(४०)

२३। ११। ५८, गीताप्रेस, गोरखपुर

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। मैं समयपर उत्तर नहीं लिख पाया। इसके लिये कोई विचार मत करना। मेरा यह दोष जीवनगत हो गया है और इस कारण लोगोंको बहुत दुःख भी होता है पर मेरी नालायकी तो ज्यों की त्यों बनी रहती है। क्या किया जाय?

तुम्हारी लीला दर्शनकी चीज उत्तरोत्तर विकसित रूपमें चल रही होगी। श्रीभगवान् श्यामसुन्दर मदनमोहन मुरलीमनोहर प्राणाराम प्रियतम प्रेमस्वरूप प्रभुकी लीला माधुरीके दर्शनमें, उसकी किसी लीलामें, किसी सेवाका सौभाग्य

मिल जाय तब तो कहना ही क्या है। जीवन लगा रहे इससे अधिक सौभाग्य और प्राणधन माधवकी कृपाका परम लाभ और क्या होगा?

'देखा करूँ तुम्हारी लीला गया करूँ तुम्हारा नाम
सुना करूँ नित मुरलीकी धुन वचन तुम्हारे परम ललाम
नेत्र मधुप नित करे तुम्हारे वदन कमल मधुरस का पान
पूर्ण समर्पण हो जाये इन्द्रिय तन मन मति जीवन प्राण'

श्रीराधामाधवकी मधुरातिमधुर उज्ज्वलतम लीलाका रसास्वादन करने योग्य विषय वासना शून्य चित्त बन जाय। स्वसुखकी सारी इच्छा, कामनाका सर्वथा सर्वनाश हो जाय। प्रियतम श्रीकृष्ण सुख ही जीवनका स्वरूप बन जाय इससे बड़ा सुरमुनि दुर्लभ लाभ और कुछ नहीं है। इस प्रकारका प्रेम ही पञ्चम पुरुषार्थ है। शेष भगवत्कृपा।

---

(४१)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ११-१२-५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था उत्तर देरसे जा रहा है सो कोई विचार मत करना। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। बाबाका स्वास्थ्य ठीक है मेरा इधर कुछ ढीला चलता है। सावित्रीकी माँका कुछ अधिक गड़बड़ है। सब भगवान्‌की कृपा है। प्रिय.....का स्वास्थ्य वैसे ही चल रहा है। दवा ले रहा है। सो चिन्ताकी बात है पर इसमें भी भगवान्‌का मंगल विधान ही काम कर रहा है। तुम्हारे लीलादर्शन वाली चीज पहलेसे ठीक है सो बहुत आनन्दकी बात है। श्रीयुगल सरकारके चरणोंमें चित्त निरन्तर लगा रहे। वहाँसे क्षणभरके लिये भी हटे ही नहीं। तुम्हारा यह मनोरथ बहुत ही श्रेष्ठ है। जिन श्यामसुन्दरने कृपा करके लीलादर्शन करानेकी व्यवस्था की है वे ही कृपा करके अपने श्रीचरणोंको निरंतर हृदयमें बसा देंगे। बसे तो अभी भी हैं, निरंतर दीखने लगेंगे। श्रीराधामाधवके प्रेमस्वरूपका हृदयमें विकास होनेपर रूखापन कहाँ रहेगा? वहाँ तो रस ही रस है। वे रसस्वरूप, रसमय, रसराजशिरोमणि हैं। रस भी इतना मधुर है कि उसकी कहीं तुलना नहीं। ये जितने रस हैं, सब कभी अच्छे लगते हैं कभी उनसे मन हटा रहता है। पर वह रस तो इतना विलक्षण है कि जितना पिया जाय उतनी ही उसकी पिपासा बढ़ती है उतने ही नये-नये मिठासका अनुभव होता है। चार-छः

घण्टेकी कौन-सी बात है निरंतर चौबीसों घण्टे एक क्षण भी मन उस रसास्वादनको छोड़ नहीं सकता।

चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात।
हृदय ते वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥

श्रीराधामाधव जब हृदयमें एकाधिकार करके बस जाते हैं फिर सोते-जागते किसी भी समय उनसे पिंड छुड़ाना संभव नहीं होता।

भाई ..... की उपरामताका हाल लिखा सो इस पवित्रतम मधुर प्रेमराज्यमें जगत्से उपरामता तो स्वाभाविक होती है। असल बात तो यह है कि फिर उसके लिये यह संसार इस रूपमें रहता ही नहीं। सब ओर सब समय सर्वत्र श्रीश्यामसुन्दर तथा उनकी मधुरतम लीला ही रह जाती है।

कांकर पाथर ठीकरी भये आरसी मोहि।
मधुर मधुर लीला निरत देखूँ जित तित तोहि॥

निरन्तर श्रीराधारानीके चरण युगलकी कृपाका अनुभव करते हुए उनकी पवित्र प्रेममयी रसलीलाके दर्शन करते रहना चाहिये। सगाईके सम्बन्धमें जैसा जो कुछ होगा भगवत्कृपासे हो ही जायगा उसकी लौकिकतामें भी प्रेमके दर्शन होते रहने चाहिये। निरी लौकिकता तो बाह्य वस्तु है। तुम लोगोंका नेग तो श्रीराधा माधव अमित सुधा तरंगमय प्रेमसमुद्रमें ही है भरा है उसमें निरंतर डूबती रहो और यह नेग सिवा श्यामसुन्दरके और श्रीराधारानीके दूसरा कोई दे नहीं सकता। उनके चरणोंमें अपनेको नित्य समर्पित रखना चाहिये। अपनी चीजको वे आप ही देखें, सँभालेंगे तथा जो देना है सो देंगे।

हो रहो उनके निरंतर चरणमें चिपटे रहो।
दूर मत होओ कभी नित हृदयसे लिपटे रहो॥

बस, श्रीराधासुन्दरकी जय।

मैं तो चाहता था कि तुम लोग यहाँ आती पर मेरी चाहसे क्या होता है। होगा तो वही जो वे चाहेंगे। उनकी चाहमें अपनी चाह मिलाकर निश्चिन्त हो रहना चाहिये।

चाह तुम्हारी ही हो प्यारे! नित्य निरन्तर मेरी चाह।
चाह न रहे अलग कुछ मेरी नहीं किसी की हो परवाह॥
चलता रहूँ निरंतर प्यारे! केवल एक तुम्हारी राह।
बिगड़े बने जगत्का कुछ भी कहूँ निरन्तर प्यारे चाह॥

---

(४२)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २५-१२-५८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे दोनों पत्र मिल गये। मैं इधर अत्यन्त कार्य व्यस्त रहनेके कारण तुमको तथा किसीको भी पत्र नहीं लिख सका। इसके लिये कोई विचार मत करना। तुम्हारे पत्रोंको पढ़कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। भाई ..... का पत्र आया था। मैं पत्र नहीं लिख सका अब लिखूँगा। स्वप्नमें श्रीराधामाधवकी लीलाकी बात हुई लिखा सो बहुत ही सुन्दर है। वे ऐसे ही हठी हैं पर श्रीराधाजी भी जब मान करती हैं तब कम हठ नहीं करती हैं। वास्तवमें यह हठ नहीं है यह प्रेमसुधासागरकी विमल मधुर तरंगे हैं। हठ भी मान भी तमाम लीलाएँ रसास्वादनमें वृद्धिके लिये ही है। पत्रकी बात मालूम हुई। तुमने पत्रमें क्या पढ़ा यह तो मुझे पता नहीं पर मैंने मन-ही-मन श्रीराधामाधवमें प्रेम सम्बन्धी पत्र तो २-३ लिखे थे। कागज कलमसे लिखनेका समय नहीं मिल सका।

भुज कंठहारका अर्थ तो होता है भुजाको गलेका हार बना दिया जाय। 'भुजारूपी कंठहार' फिर पता नहीं क्या बात है ? तुम्हारा गद्‌गद होना तथा कोई चीज रह गयी ऐसा प्रतीत होना तुम्हारे सद्‌भावका परिचायक है। मेरा सान्त्वना देना भी ठीक है। तुमपर श्रीराधामाधवकी बड़ी ही कृपा है जो तुम्हें वे अपनी मधुरतम लीलाके दर्शन करवाते हैं। तुम्हारा भाव देखकर तथा पढ़कर एवं तुम्हारे हृदयकी सद्‌भावनाके दर्शन कर चित्तमें बड़ी ही प्रसन्नताका अनुभव हो रहा है। तुम्हारी स्मृति तो पहले भी होती थी अब विशेष होती है। भाई ..... मुझे बहुत ही प्रिय है। उसने भी तुम्हारे लिये मुझको लिखा है। उसकी भी बहुत स्मृति हुआ करती है। पत्र देना। मेरा पत्र देरसे पहुँचे तो विचार मत करना। मैंने तुमको जो एक राधा-उद्धवके संवादकी कविता दी थी उसे ..... को तथा ..... को पढ़ा जरूर देना। अब तो उसे 'कल्याण' में दे रहा हूँ।

तुम उसका भाव समझना। कितना महान त्याग है। कितनी मधुर प्रियतम श्रीकृष्णके सुखकी चिन्तामें आत्मसुखका पवित्र बलिदान है। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

---

(४३)

गोरखपुर, १८-१-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा बहुत ही प्रेमानन्दपूर्ण सुन्दर पत्र मिला। तुमपर श्रीराधामाधवकी बड़ी ही कृपा है। उनकी कृपाके बिना उनके लीलादर्शनका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ करता। तुम्हें जागृत तथा स्वप्नमें जो विलक्षण अनुभव होते हैं, यह हमारे लिये परम सौभाग्यका विषय है। उस दिन एक लीलाके दर्शन लिख लिये गये थे। उसे कल्याणमें भी देनेका विचार है। तुम्हें इसके साथ उसकी भी नकल भेज रहा हूँ। पहुँचनेपर पढ़ लेना।

तुमने मेरे बाबत लिखा सो तुम्हारा सद्भाव है। तुम्हारे मनके भाव बड़े ही पवित्र तथा मधुर हैं। "संसारमें संयोग-वियोग प्रारब्धाधीन है। वास्तविक मिलन तो मनका है जो सदा सर्वदा हो सकता है और वह तो होता ही रहता है। मुझे भी तुम्हारी बहुत स्मृति होती है। तुम यहाँ थी तो विशेष बात नहीं हो सकी, तुमने भी बोलकर ज्यादा बात नहीं की, मूक भाषामें ही बातचीत हुई। अब पत्रके द्वारा तुम्हारे सद्भावोंका कुछ-कुछ प्रकाश मिल रहा है। तुम्हारी इस पवित्र भावनाका मेरे मनमें बड़ा आदर है। प्रिय .....के आनेकी बात लिखी सो बहुत अच्छी बात है। उनका आना हो तो बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है। तुमने लिखा कि ..... तथा मैं दोनों कब श्रीराधारानीके पास बैठकर मनकी खूब बातें करेंगे। कब वे अपनी सेवामें दोनों बगल विशुद्ध भावसे बैठाकर मनकी बात पूछेंगी।" सो उनकी तो महान् कृपा है ही हम लोगोंकी दृढ़ इच्छा-एकान्त इच्छा होगी तो क्या बड़ी बात है।

श्रीश्यामसुन्दरकी सूरत आँखोंके सामने-से हटती-ही नहीं, सो तो बहुत ही आनन्दकी बात है वह क्यों हटनी चाहिये? वही तो प्राणोंके प्राण और आत्माके आत्मा है। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। शेष भगवत्कृपा।

तुमने श्यामसुन्दरकी लीलाका वर्णन लिखा सो तो वे नटवर हैं ही। ऐसे ही परेशान करके विचित्र सुखका रसास्वादन करते तथा कराते रहते हैं। उनकी प्रत्येक चेष्टामें ही प्रेम-सुधा-रसका प्रवाह बहता रहता है। मैंने तुमको जो पद दिया था वह .....को भी पढ़ा देना, उसने लिखा है। अब तो वह मानवता अंकमें छप भी गया है।

---

(४४)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २६-१-५१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे पत्र मिले। ..... यहाँ आया हुआ था इसलिये मैं किस पते पर उत्तर लिखता। इसीसे पत्र नहीं लिखा गया। दूसरी बात मत समझना। तुमने प्रसाद भेजा था उसे रोज थोड़ा थोड़ा ले रहा हूँ। प्रसाद तो परम स्वाद होता ही है, क्योंकि उसीसे सारे दुःखोंकी हानि होती है। '**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योप जायते।**'

तुम्हारे पत्रोंको पढ़कर तथा तुम्हारे हृदयगत् भावोंके दर्शनकर बड़ी ही प्रसन्नता होती है। श्रीराधामाधवकी तुमपर बड़ी कृपा है।' ..... जा रहे हैं। इनको देनेके लिये मेरे पास तो था ही क्या, कुछ समय रोज इनको अपने पास बैठाये अवश्य रखा—वह भी '**स्वान्तः सुखाय।**' इन लोगोंके पवित्र भावोंको देख-देखकर प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये। मनुष्य अपने सद्भावसे कहाँसे भी—अपने अनुकूल लाभ और सुखकी प्राप्ति तथा अनुभूति कर सकता है, अतएव यदि इन लोगोंको यहाँ कोई लाभ या सुख मिला है तो वह इनके सद्भाव तथा भगवत्कृपाका ही फल है। मेरा तो कुछ भी नहीं।'

उस दिनका मतलब यही कि एकदिन ऐसी लीला देखनेको मिली थी और उसमेंसे कुछ अंश लिख लिया गया था। वही कल्याणकी दूसरी संख्यामें छपनेको दिया गया है और वह फरवरीमें प्रकाशित होगा। लीला जगत्में अनन्त लीलाएँ हैं। लीलाविहारी भी कृपा तथा प्रेमकी आँखें होनी चाहिये। फिर अनन्त लीला और अनन्त आँखें। न लीलाओंका अन्त और न देखने वाली प्रेमकी आँखोंमें कोई थकावट। फिर तो नित्य नया उल्लास, नित्य नया लीला विलास।

..... तुम्हारे पास आयी थी। तुम कहीं जा नहीं सकती, सो बहुत अच्छी बात है। ..... के भाव बहुत सुन्दर हैं। परन्तु तुमको कहीं जाना चाहिये भी नहीं। भगवत्सेवाके भावसे घरका काम तथा चुपचाप एकान्तमें भगवान्की लीलाका दर्शन—बस, यही करते रहना चाहिये। किसीसे बहुत कहने-सुननेकी भी आवश्यकता नहीं है।

मन सदा पवित्र प्रेममें लगा रहे। संसार तथा संसारके भोग जरा भी आकर्षणकी वस्तु न रहे। जो स्मृति जिस वस्तुकी, पदार्थकी, प्राणीकी और अवस्थाकी स्मृति परम प्रेमास्पद श्रीराधामाधवकी मधुर स्मृति करानेवाली हो।

वह सदा ही आदरणीय तथा निरन्तर रखने योग्य है और जो स्मृति प्रियतम भगवान्‌को भुला देनेवाली हो, उस अनर्थमयी स्मृतिका विनाश हो जाना चाहिये। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। बच्चे प्रसन्न होंगे। तुम्हारी माताजीको आराम होगा। यहाँ सब राजी हैं। पद टाइप कराकर भेजे थे। पहुँच गये होंगे। शेष भगवत्कृपा।

आजु इन नयननि निरखे श्याम।
निकसे ह्वै मेरे मारग तैं नव नटवर अभिराम॥
मो तन देखि मधुर मुसुकाने मोहन-दृष्टि ललाम।
ताही छिन तैं भये तिनहि के तन-मन-मति-धन-धाम॥
हौं बिनु मोल बिकी तिन चरननि रह्यौ न जग कछु काम।
माधव-पद-पंकज पायौ नित मन-मधुकर बिश्राम॥

---

(४५)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ६-२-५१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा अनुरागपूर्ण पत्र मिला। संसारमें संयोग वियोग प्रायः प्रारब्धाधीन है। मनुष्यको सदा भगवद्भावमें निमग्न रहना चाहिये। कहीं भी कैसे भी रहें, निरन्तर भगवान् हमारे पास रहें, उनकी नित्य मधुर लीलाके सागरमें अवगाहन करते रहें।

विवाह हमलोग तो गोरखपुरका ही करना चाहते हैं कलकत्तेमें बहुत तरहकी अड़चनें हैं पर होगा वही जो श्रीभगवान्‌ने रच रखा है। तुमसे मिलनेकी इच्छा तो मेरे भी मनमें बहुत होती है। क्योंकि तुमपर श्रीराधामाधवकी बड़ी ही कृपा है। पर कब मिलना होगा, कौन यह कह सकता है। सर्वोत्तम और सुलभ तो मानस मिलन ही है, जो सर्वत्र सब समय चाहे जितना, चाहे जिस रूपमें हो सकता है। और महत्त्व भी मनका ही है। मन विषयोंमें रहे तथा शरीर मन्दिरमें रहे तो वह विषयोंमें ही है।

मैं स्वयं विवाहके लिये गोरखपुरके सम्बन्धमें .....को समझाकर लिखूँगा। उनकी बड़ी कृपा होगी जो मान लेंगे। तुम लोग भी सहायता करना। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। पत्र जल्दीमें लिखा है। परसों रविवारको सबेरे हम सब लोग दिल्ली जा रहे हैं। दिल्लीसे मंगलवारको चलकर बम्बई जानेका विचार

है—होगा तो वही जो मंगलमय भगवान् चाहते हैं।

भगवान्‌का प्रेम, उनकी मधुर लीलाओंका आनन्द लीला देखनेवाली जीवनकी पवित्र आँखें सब उन्हींकी दी हुई मिलती हैं। अपनेको सर्वथा उनका बनाकर भूल जाना चाहिये। वे चाहे जब चाहे जैसे चाहे जो करें—अपने उनके सिवा अपना कुछ रहे ही नहीं। अपने स्वयं भी नहीं रहे।

---

(४६)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ३-३-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा फतेहपुरसे शनिवारका लिखा दूसरा पत्र भी मिल गया। मेरे इस पत्रके पहुँचने तक तुम शायद कलकत्ते पहुँच जाओगी। तुम्हारे पहले पत्रके उत्तरमें भी पत्र लिखा था। वह भी तुम्हारे पहुँचनेपर ही मिलेगा। शायद इससे पहले मिल जाय।

भाई ..... के पत्र आये थे, उनको उत्तर लिखा जा चुका है। 'हमारे प्रेमास्पद प्राणप्रियतम प्रभु सदा सर्वदा हमारे पास ही रहते हैं। हर अवस्थामें हर समय हर जगह। ऐसा अनुभव होना चाहिये और मन, वाणी, शरीर, इन्द्रिय, रोम-रोमसे इनका सेवन करना चाहिये। इन प्राणाराम प्रभुके साथ सर्वत्र निर्बाध और निर्मर्यादित मिलन हो सकता है। ये प्राणोंके प्राण, आत्माके आत्मा, हृदयके हृदय हैं। इनकी विविध, विचित्र परमानन्दमयी लीलाओंको तो तुम देखती ही हो। तुमपर महान् कृपा है इन प्राणधन जीवन सर्वस्वकी। जगत्‌में प्रत्येक कण-कणमें इनके मधुर दर्शन हों। इनकी लीलामाधुरीकी प्रत्यक्ष अनुभूति हो, संसारके इन्द्रिय भोगोंसे आत्यन्तिक उपरति हो जाय, स्वसुखकी कल्पना ही न रहे। तमाम करण, तमाम साधन, तमाम अंग-अवयव, तमाम इन्द्रियाँ—इनकी मधुरसेवामें—उनके प्रीति साधनमें, इनके सुख-सम्पादनमें ही संलग्न रहें।' तुम्हारी तबियत ठीक होगी। तुम्हारी मधुर-स्मृति हुआ करती है।

---

(४७)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ८-३-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर तथा तुम्हारे पवित्र भावोंकी झाँकी करनेपर बड़ी प्रसन्नता हुई। दिल्ली जानेके समय भी, वहाँ मिलनेके समय

भी और अब वहाँसे लौटनेपर भी तुम्हारे ही अपने भावानुसार तुम्हें अनुभूति हो रही है। भगवान् श्यामसुन्दर तो सदा तुम्हारे साथ ही रहते हैं। किसी समय, किसी हालतमें, कहीं भी वे तुमसे अलग नहीं होते। उनकी मधुर सन्निधिका नित्य निरन्तर अनुभव होता रहे। सो तुमको श्रीराधामाधवकी रसमयी मधुर लीलाके रूपमें सदा अनुभव होता ही है। मनसे ही नहीं प्रत्येक करणसे उनकी सन्निधिका अनुभव करना चाहिये।

बाबासे तुम्हारा प्रणाम कह दिया है। बाबाका सचमुच मेरे प्रति विलक्षण भाव है। वे केवल यही चाहते हैं कि उनका प्रेम मेरे प्रति नित्य निरन्तर उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक बढ़ता रहे। वे जिस रूपमें अपनी भावनाके दर्शन कराते हैं, वह रूप उनकी भावनाका वह महानरूप अत्यन्त ही प्रेम परिपूर्ण, अनन्य निष्ठामय और परम आदर्श है। पकड़े हुए तो हैं जोंककी तरह ही, पर जोंक तो रक्त चूसती है पर ये तो सदा सर्वदा पवित्र सुधारस देते रहते हैं। तुम्हारी स्मृति होती रहती है।

---

(४८)

गीताप्रेस, गोरखपुर ११-३-५१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा एक पत्र पहले भी मिला था। शरीर रक्तमाँसका थैला है और क्षणभंगुर है। असली मिलन तो आत्माका है, वह कभी मिट नहीं सकता। इसलिये वही मिलन सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा समझकर केवल भगवत्प्रेमके नाते मनसे चिन्तन करना चाहिये। रही भगवान्‌की बात तो भगवान् सदा सर्वदा हमारे साथ हैं, यह सर्वथा सत्य है। अतः भगवान्‌की निर्बाध अनुभूति करनी तथा भगवान्‌के साथ सदा सर्वात्मना मिले रहना चाहिये। वे ही हृदयकी परम निधि हैं, वह कभी न छूट सकती है, न छूटेगी। यह विश्वास रखना चाहिये। दृढ़ विश्वास रखना चाहिये।

.....से मिलने तथा बातचीत करनेकी बातमें मैं तो कोई दोष नहीं मानता, परस्पर श्रीभगवच्चर्चासे ही भगवद्भाव बढ़ता है और आनन्द ही आता है पर वह भी छोड़ दिया जाय तो क्या आपत्ति है। अपने तो सभी बातोंमें भगवान्‌की हाँ में हाँ मिलानी चाहिये। भगवान् श्रीराधामाधवकी विचित्र लीला है। न मालूम वे किस अपने प्रेमीको किस विचित्र मार्गसे प्रेमदान करना चाहते हैं। सदा सर्वदा उनके प्रति आस्था बने रहना चाहिये। तुम्हें घर बैठे किसीसे कभी न मिलनेपर

भी वे ऐसी-ऐसी लीला दिखायेंगे कि तुम मुग्ध होती रहोगी। जरा भी चिन्ता मत करो। न किसी भी बातका किसीसे कुछ भी बुरा मानो।

---

(४९)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १९-३-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे सुन्दर पवित्र भाव तरंगोंके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। यों तो सारा संसार ही भगवान्‌में ओतप्रोत है।" भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु ही नहीं है। फिर जिनका भगवान्‌के प्रति प्रेम है जो भगवत्प्राप्तिके साधनामें ही प्रवृत्त हैं, वे तो एक ही भगवान्‌के परिकर या सेवकके नाते सभी परस्पर विशुद्ध प्रेम सम्बन्धसे आबद्ध हैं। उनकी उससे छूटने-छोड़नेकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। भगवान्‌ने स्वयं कहा है कि मैं तो उन्हें छोड़ ही नहीं सकता। '**कथंतात्यु मुन्सहे**' जिन्होंने स्त्री, पति, पुत्र, बन्धु, बान्धव, प्राण-धन, लोक-परलोक सब छोड़ दिये जो मेरे हो गये उन्हें मैं कैसे छोड़ दूँ? मैं तो उनके पराधीन हूँ, वे मेरा हृदय हैं उन्होंने मुझको वशमें भर लिया है, मैं उनके पीछे-पीछे उनका चरण-रज पानेके लिये सदा डोलता हूँ, वे मेरे हैं मैं उनका हूँ। इत्यादि वाक्य श्रीभागवत्‌में स्वयं भगवान्‌के है। अतएव यदि सांसारिक कामना-वासना-रागद्वेष, ममता-मोह नहीं है, विशुद्ध प्रेम है तो न तो भगवान् छोड़ सकते हैं। न भक्त छोड़ सकते हैं, न प्रेमास्पद प्रभु अलग हो सकते हैं, न वे प्रेमी पृथक् हो सकते हैं और न प्रेमीगण परस्पर ही छूट सकते हैं। विशुद्ध प्रेम बन्धन ही असली बन्धन है जिसमें स्वयं भगवान् बँध जाते हैं। छूटना ही नहीं चाहते। नित्य मुक्त स्वरूप नित्य बन्धनमें रहना चाहते हैं। हाँ, सम्बन्ध होना चाहिये केवल और केवल विशुद्ध प्रेमका।' तुम्हारे पत्रमें जो सुन्दर सुकोमल मधुर भाव है, आत्मीयता है। ..... के साथ तुम्हारा सहोदर भाई-बहिनके स्नेहका वर्णन है—.....से जो परस्पर तुम्हारी भगवच्चर्चा होती है वह सभी बहुत ही आनन्दप्रद तथा पवित्र है।" भगवच्चर्चा ही जीवनका परम लाभ है। भगवान्‌की स्मृति ही परम पुण्य है, भगवान्‌की लीलामें रति ही परम सौभाग्य है।" संसारके अन्य लोगोंके गुण-दोषोंकी स्मृति सर्वथा न करके निरन्तर केवल भगवत् लीला-सेवा-प्रेमरसका ही पान करते रहना चाहिये।

'**अन्येषु दोषगुण चिन्तन माशु मुक्त्वा सेवा कथा रसमहो नितरां**

पिबत्वम्।' यही परमोत्तम लाभ है।

.....से मेरा सप्रेम हरिस्मरण कहना। मनमें तुम सब लोग बहुत प्रसन्न रहना। भगवद्भाव, भगवत्स्मृति, भगवान्‌की सन्निधिकी अनुभूतिको खूब-खूब बढ़ाती रहना। शेष भगवत्कृपा।

शरीर साधारण चल रहा है। शरीर पर आस्था न करके केवल भगवान्‌में ही आस्था करनी चाहिये।

---

(५०)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २७-३-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र परसों मिला था। कल रात्रीको टेलीफोनपर बात हुई, प्रसन्नता हुई। शरीरपर आस्था न रखनेका अर्थ है—यह कभी न समझना कि पञ्चभूतोंसे बना हुआ शरीर दिव्य है और वह स्थायी रहेगा। निश्चय ही भगवान् और भगवान्‌के शरीरमें भेद नहीं है। वे दोनों ही एक तथा चिन्मय ही है। उनमें देह-देहीका भेद नहीं है। और न जन्म-मरण ही है। परन्तु मनुष्यका शरीर तो मरण धर्मा है। उसमें स्थायित्वकी आस्था नहीं रखनी चाहिये। उस शरीरकी यह बात नहीं है कि वह दिव्य चिन्मय नित्य दिव्य तथा अमर है। अब रही शरीरमें भगवान्‌के रहनेकी बात, सो भगवान् तो सभी जीवोंमें और सभीके शरीरोंमें सदा हैं पर शरीर भगवान् नहीं है। इसीसे यह कहा जाता है कि शरीरमें आस्था न रखकर भगवान्‌में रक्खो।

'यह बात सत्य है। प्रेमीके प्रेम रोगकी दवा भगवान्‌के सिवा और किसीके पास नहीं है। भगवान् स्वयं वह दवा हैं 'मीरा की तब पीर मिटै जब वैद सांवलिये होय' भगवान्‌की विरह वेदनाके समान कोई वेदना ही नहीं है उसे कोई वैद्य, डाक्टर कैसे मिटा सकता है।'

बाबल बैद बुलाइया पकड़ दिखाइ म्हारी बांह।
मूरख बैद मरम नहीं जाणै कसक कलेजे मांय॥

इस कलेजेकी कसकको तो श्यामसुन्दरका मधुर मिलन ही मिटा सकता है।..... को केवल यही रोग है या इसके साथ किसी शारीरिक रोगका भी सम्मिश्रण है। यह मुझे पता नहीं। तथापि प्रियतम भगवान्‌का स्मरण तो सहज ही 'सर्वतापशमनैक भेषजम'—सारे पाप-तापोंको, सारे रोग-दोषोंको मिटानेवाली

एक अमोघ औषध है और यह जिसके पास है, जिसको भगवान्‌का स्मरण, चिन्तन और लीलादर्शन भी होता है, फिर भी कोई रोग क्यों है ? सो इसका कारण यह है कि उस रोगमें ही उसको मजा आता है, वह मस्त सा होकर कहता है—

करना तुम मत नाश कभी यह मेरा प्यारा मानस-रोग।
बड़ा मजा आता है इसमें, यद्यपि तनका सदा वियोग॥
हरा रहे यह घाव हृदयका, रहे टीस का नित संयोग।
मधुर तुम्हारी स्मृतिसे बढ़कर सुखद न कोइ सा संभोग॥

तुमने लिखा इधर १०-१५ दिनोंसे उसे भूख नहीं लग रही है और आँखोंमें भी तकलीफ है सो ठीक है। शारीरिक रोगकी तो शास्त्रानुकूल दवा करानी ही चाहिये। परन्तु यदि भूख-नींदको मिटानेवाला प्रेम रोग है तब तो बात ही इसकी दूसरी है, फिर तो यह रोग ही उसके लिये सर्वोत्तम इष्टपदार्थ है इसीसे कहा है—

दिन नहीं चैन रैन नहिं निद्रा, भूख-प्यासका भान नहीं।
हिय में जलती आग अमित, पर उसका भी कुछ ज्ञान नहीं।
रोती आखें नित्य, बरसता रहता नित्य नेहका मेह।
याद नहीं फरियाद नहीं कुछ तेज उज्ज्वलित जर्जर देह।

× × × ×

या दुखिया अँखियान का, सुख सिरज्यो ही नांय।
देखत बने न देखते, बिनु देखे अकुलाय॥
नित के जागत मिट गयो वा संग सुपन-मिलाप।
चित्र दरसहू को लग्यो आंखिन-आँसू पाप॥

विवाह तो भगवान्‌के विधानानुसार गोरखपुरमें ही निश्चित हो गया। यद्यपि कई ऐसी लौकिक बातें हैं जिनके कारण लौकिक दृष्टिसे संतोष कम है तथापि जगत्‌की प्रत्येक वस्तु तथा स्थिति खेल है एवं भगवान्‌का प्रत्येक विधान मंगलमय है इस विश्वासके कारण चित्तमें कोई खेद नहीं है। तुम लोगोंकी बहुत ही स्मृति होती है। यह पत्र ..... को पढ़ा देना।

.....के भावोंमें काफी परिवर्तन है सो बड़े ही आनन्दकी बात है। हृदय पत्थर है या अत्यन्त सुकोमल सुरभित सुमन है इसका पता दूरसे कैसे लग सकता

है। हमारा हृदय तो अवश्य ही पत्थरसे कठोर है पर भगवान्‌का हृदय सदा ही पिघला रहता और नित्य प्रेमानन्दामृतका प्रवाह बहता रहता है।

---

(५१)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १८।४।५१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे २९, ३१ मार्च व ४ अप्रैलके पत्र मिल गये थे। इधर मुझे बहुत ही कामोंमें व्यस्त रहना पड़ता है। इससे कभी नहीं लिख पाता सो क्षमा करना। तुम लोगोंकी मधुर स्मृति तो बनी ही रहती है। तुमने ध्यानके समयका एक मधुर अनुभव लिखा तथा एक दिनकी श्रीराधा श्यामसुन्दरकी सुन्दर लीला लिखी सो पढ़कर बड़ा सुख मिला। तुमपर श्रीकृष्णकी बड़ी ही कृपा है जो वे तुम्हें इस प्रकार अपनी लीला माधुरीका दर्शनास्वादन कराते हैं।

स्वागतकी तैयारीका अर्थ तो साधारण ही है। घरमें अतिथि आवें तो उनका स्वागत करना धर्म ही है। श्रीकृष्णके द्वारा जो स्वागतकी बातें कही गयी थीं। वह तो सर्वथा विलक्षण है उसकी हैरानी तो सारी अनन्त विचित्र सुख-सुविधाओंकी रानी है। उस हैरानीने ही श्रीश्यामसुन्दरको उनका नित्य अपना बना दिया। वैसी हैरानी हो जाय तो बहुत ही आनन्दकी बात है। एक दिनकी एक लीला झाँकीका एक पन्ना इसके साथ भेज रहा हूँ। वस्तुतः श्रीराधामाधवका यह विलक्षण प्रेमराज्य बड़ा विलक्षण है उसमें न तो लौकिक भोगका मोह रोग है, न विषय वासनाकी कोई कल्पना है। समस्त लोक-परलोककी समस्त वस्तुओंसे सहज विरागकी पवित्र भूमिका में इस दिव्य रागका समुदय होता है। यहाँ रह जाते हैं केवल प्रेममय प्रियतम, प्रेममयी प्रिया और प्रेम। ये तीनों अलग अलग होकर भी एक हैं। यहाँ न काम है न लोभ है, न मोह है। पवित्र प्रेमके उज्ज्वल प्रकाशमें प्रेमकी पावन मधुर लीला चलती रहती है।

विवाहके बारेमें तुमने लिखा सो ठीक है। मुझे सदा ही संतोष है और वह संतोष अपने नित्य संतोषकी परम वस्तुको लेकर है। संसारके सारे कार्य संतोष असंतोष सभी खेल हैं, जो जब तक जिस रूपमें नाट्यमंचपर अभिनय किया जाता है तभी तकके लिये है और है केवल नाट्यरूपमें। संसारके हानि-लाभ, अपमान-मान, दुःख-सुख, मरण जीवन सभी इस नाटकके ही विभिन्न दृश्य तथा अंश हैं। गोरखपुरमें भीड़-भाड़में मिलना तथा बातचीत होना कठिन

तो बहुत हो रहेगा पर एक चेष्टा की जायगी जिसमें रोज आध घंटे तुमलोगोंको समय दिया जाय। होगा क्या यों तो मंगलमयको ही पता है। पर मिलना तो होगा ही। ... . का तथा ..... का मेरे प्रति जो भाव है बड़ा ही विलक्षण है। इसकी बीमारीमें बड़े चिन्ता है। बुखार उतरा होगा। शरीर ठीक रहा तो चल आयेगा ही. ... के लिये भी मैंने उनके घरवालोंको फिर लिखा है। होगा वही जो प्रियतम श्यामसुन्दरने रच रखा है। *सबकी मंगलकी सब होय।* शेष भगवत्कृपा।

निभृत निकुंज नवीन मध्य सुरभित मृदु कुसुम सेज आसीन।
प्रियतम के भुजपाश बँधी मुग्धा श्रीराधा लज्जा-लीन॥
अभिनव सुखद समागम में करने मुख शशि-दर्शन-चुम्बन।
अति उत्सुक प्रिय लगे हटाने निज कर प्यारी अवगुंठन॥
लज्जावश 'ना'-'ना' करती प्यारी, मन छाया मोद महान।
मने कर रही, चाह रही पर मनमें मधुर-अधर रस पान॥
शीघ्र खोल घूँघट प्रियतम मम करें निरंकुश मनमानी।
टूटें सभी लाजके बंधन व्यवधानों की हो हानी॥
रहे न भेद परस्पर कोई, रहे न कोई निज-पर-भाव।
स्मृति न रहे निज इन्द्रिय सुखकी बढ़े परस्पर सुखका चाव॥
बहे अनन्त प्रेम रस धारा, डूबे सभी जगत के रंग।
प्रियतम मिलन परम सुखमय अति मुदित उदित हो दिव्य अनंग॥
प्यारी यों कर रही मनोरथ उधर दिया घूँघट पट खोल।
चुम्बक कर कपोल वे मधु अधरामृत पीने लगे अतोल॥
दोनों ही दोनोंकी पूरी करने लगे हृदयकी साध।
तृप्ति न हो पाती बहती अति मधुर प्रेम रस धार अबाध॥
देख रही प्रिय सखी दूरसे भरती मन आनन्द अपार।
देखा करूँ यही रस लीला राधा-माधव ललित बिहार॥

---

(५२)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १८-५-५९

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा १४ ता०का पत्र आज मिला। कल तुमको एक पत्र लिखा था, मिला होगा। स्वास्थ्यकी गड़बड़ीके कारण ही पत्र नहीं

लिखे जा सकें, अन्य कोई रहस्य नहीं है। इतना रहस्य अवश्य है कि मनके पत्रका जो महत्त्व है वह कागजपर लिखे पत्रका नहीं है। तुम्हारा पवित्र भाव सदा ही आदरणीय है। उसकी अवज्ञा कैसे की जा सकती है।

यह प्रेमका स्वभाव है कि उसमें सदा अपूर्णता, अतृप्तिका ही बोध होता है। मिलनमें अन्तर मिलनानन्दकी इच्छा रहती है और विरहमें बाह्य मिलनानन्दकी। मिलनेपर मूकता आ जाती है और वियोगमें हजारों बातें करनेकी मनमें आती है। मिलन-मुग्धता और विरह वाचालता स्वाभाविक है। भगवान्‌की लीला दर्शन माधुरीमें तुमको सदा इसका अनुभव होता ही होगा। लीलादर्शनकी परम्परा उत्तरोत्तर मधुरतम रूपमें बढ़ रही होगी। .....ने लिखा था उसके तो अबकी बार यहाँसे लौटनेके बाद लीला दर्शनका अच्छा क्रम चल रहा है। तुम्हारे भी चलता होगा।

तुम्हारे पिछले छोटेसे पत्रमें कुछ शब्द ऐसे थे जिनकी लंबी व्याख्या हो सकती है। इसको मैंने उस छोटे पत्रको भी लंबे ही रूपमें पढ़ा। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। कलकत्ते आनेका मन तो था परन्तु अस्वस्थताके कारण जब अत्यन्त आवश्यकताके समय ऋषिकेश और किशनगढ़ ही नहीं जा सका, तब इस समय निकट भविष्यमें कलकत्तेका विचार नहीं किया जा सकता। श्रीश्यामसुन्दरकी इच्छा हो तो वे चाहे सो करा सकते हैं। तुम उन्हींसे कहना।

---

(५२)

२७।५।५९, गीताप्रेस, गोरखपुर

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबासे तुम्हारे प्रणाम कह दिये हैं। बाबाका चारके प्रति बड़ा स्नेह है—.....'। वे बार-बार चारोंकी बात पूछते रहते हैं, कहते हैं इन चारोंकी अनन्य निष्ठा मुझे बहुत ही प्रिय लगती है। वे तुम चारोंका नाम आते ही गद्‌गद तथा मुग्ध हो जाते हैं, कभी-कभी तो पृथ्वीपर सिर टेककर प्रणाम करने लगते हैं।

तुमने ..... के साथ तुम्हारे एकात्म सम्बन्धकी बात लिखी सो पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रिय ..... ने भी तुम्हारे साथ एकात्मताकी बात लिखी है। ऐसा ही होना चाहिये। तुम्हारा दोनोंका भाव आदर्श है।

रही स्थानकी बात सो जिसके लिये ऊँचा स्थान निर्दिष्ट हो चुका, वह

तो अब नीचा हो नहीं सकता; वह यदि अपने दोनों साथियोंसे ऊँचे न रहकर उनके साथ ही रहना चाहती है तो उसका यह शील है और उसकी यह महान् आदर्श भावना उन दोनोंको भी उसीके साथ उच्च स्थान पर पहुँचनेमें सहायक निःसन्देह होगी। और ऐसा दृढ़ विश्वास है कि तीनोंको एक ही उच्चस्तर पर स्थान मिल जायेगा। तुम्हारे मनकी बात हो जायगी। चिन्ता मत करना। राधाष्टमीपर तुम लोगोंका यहाँ आना हो जायेगा तो बहुत आनन्द रहेगा। अभीसे घरमें बात चलाये रखना चाहिये, जिससे वे भेजनेसे इन्कार न करें।

..... बाबत तुमने लिखा सो तुम्हारा सुन्दर भाव है। श्रीकृष्ण तो वस्तुतः तुम्हारी मेरी ..... की देख-रेख करते ही हैं, परन्तु उन्हींकी ओरसे जितने अंशमें तुम देख-रेख करके उसे सुख पहुँचा सको, तुम्हें यह भार सौंपा गया है। श्रीकृष्णके सामर्थ्यसे ही तुम्हारेमें यह सामर्थ्य आ गयी है। तुम उन्हींकी सामर्थ्यसे उनकी बनाई हुई पद्धतिसे उनकी सेवा करती रहना। शेष तो जो कुछ उन्हें करना है वे आप ही करेंगे। ..... कभी कभी उदास हो जाती है सो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। नया वातावरण है धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा। तुमको ..... बहुत ही प्यारी लगती है। सो तो ठीक ही है वे तुम्हें सभी सम्बन्धोंकी दृष्टिसे बहुत प्यारी लगनी ही चाहिये।

श्यामसुन्दर सुनकर अनसुनी नहीं करते वे और भी सुनना चाहते हैं उन्हें अपने प्रेमीकी वाणी सुननेमें बड़ा आनन्द आता है इसलिये उसकी बोलनेकी प्रवृत्ति बढ़ानेके लिये ही वे चुप जाते हैं। श्यामसुन्दरने कई बार प्रेयसी गोपाङ्गनाओंसे कहा था—

प्रिये! तुम्हारी वाणी सुननेको जी हरदम ललचाता।
तुम्हें बोलनेको उकसाने, सुनी अनुसनी कर जाता॥
जब मैं नहीं बोलता कुछ तब तुम उत्तेजित हो जाती।
प्रणय कोपमें भरकर मुझको युक्त अयुक्त सुना जाती॥
तब मुझको होता प्रमोद अति, भर उठता मनमें उल्लास।
विनय-विनम्र मनाने लगता, करने लगता हास-विलास॥
तब तुम प्रेम-सुधा-रस-पूरित अतिशय मधुर सुनाती बैन।
जिन्हें न सुन पाता पलभर तो हो उठता बिल्कुल बेचैन॥

..... का बड़ा पत्र मिला है। उसका उत्तर अभी लिख नहीं पाया हूँ।

पीछे लिखनेका विचार है। ..... को भी तभी पत्र लिखूँगा। तुमने मधुर लीलादर्शनका प्रसंग लिखकर बड़ा सुख दिया। उनकी एक से-एक बढ़कर लीला-माधुरी धारा सदा विविध विचित्र तरंगोंको साथ लिये चलती ही रहती है नित्य नवीन, नित्य मधुरतम। तुम धन्य हो जो तुम्हारी आँखोंको यह सुधा सौन्दर्य पान करनेका सौभाग्य मिलता रहता है। तुम्हारे छोटे पत्रके शब्दोंकी व्याख्या लिखनेकी या सुनने भी नहीं है। वह तो हृदयंगम करके सुखी होनेके लिये है। तुम्हें क्या पता उस सुखका जो इस प्रकारकी व्याख्या करता हुआ मन प्राप्त करता है। पदवाली कापीकी नकल नहीं करायी जा सकी। स्वास्थ्यके कारण मैं भी नहीं कर सका। समय मिलनेपर करके भिजवा दूँगा।

मनसे सदा लिखा जाता है; लिखा ही जाता है पर वह वाणीमें आ नहीं सकता। मन की भाषाको मन ही पढ़ सकता है। सो पढ़ता ही रहता है।

---

(५४)

२०-७-५९, गोरखपुर

सप्रेम हरिस्मरण। मेरा पत्र पहुँचा होगा। ..... को पत्र दे दिया था। वह कहती है—मैंने उत्तर लिखा था तुम्हें मिला होगा। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। बाबा तुम्हारी बाबत बड़े भावसे पूछ रहे थे। उनके यथायोग्य।

'..... के बाबत लिखा कि जब मिलती हूँ तभी उसकी आँखें डब डबाई दीखती हैं सो उसका तो यह स्वभाव ही हो गया है, इसीमें उसको आनन्द मिलता है। इस आनन्दराज्यमें जानेके मार्गमें ही रोना, कल्पना शुरू हो जाता है। पर यह रोना, सिसकना, विकल हो जाना, मूर्छित हो जाना (जगत्‌को भूल जाना) दुःखदायक नहीं होता, आनन्दायक होता है। इससे दुःख नहीं मिलता, विश्राम-शान्तिकी प्राप्ति होती है।

नारायण घाटी कठिन जहाँ, प्रेमको धाम।
बिकल, मूर्छा, सिसकिबो ये मगके विश्राम॥

यह सब शुभ लक्षण हैं। मार्गके परम शुभ शकुन हैं। .....ने लिखा—तुमने आजकल चपत लगानेका नियम ले लिया है। पर तुम्हें उनकी कोमलतापर दया आ जाती है। परन्तु यदि उन्होंने बदलेमें चपत लगायी तो फिर तुम्हारी ही दशा दयनीय हो जायगी। बेचारी मीराको महल छोड़कर वृन्दावन

और द्वारकाको खाक छाननी पड़ी। श्रीगौराङ्गदेवको अठारह वर्ष रोते-सिर कूटते बिताने पड़े। उसकी मीठी चपत न लगे तभी तक खैर है। पत्र देना।

---

(५५)

पौष शु० १। २०१५, गोरखपुर

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। उत्तर इसलिये नहीं लिखा था कि ..... यहाँ आनेवाले थे। अतः किस पतेपर पत्र लिखा जाय। ..... तथा ..... की बड़ी प्रतीक्षा थी, पर होता वही है जो विधाताको मंजूर होता है। अपने तो सदा सर्वदा श्रीश्यामसुन्दरके सुखमें सुखी रहना है तथा हर अवस्थामें उनके मुखकी मृदु मुसकानको देखते रहना है। ..... के वहाँ बड़ी पीड़ा हो गयी इधर ..... के पिताजीके कष्ट हो गया इससे बड़ी चिन्ता हुई पर इसमें भी श्यामसुन्दरकी कोई सुखमयी लीला ही काम कर रही है।

दिल्ली वाली ..... से कई बार तुम्हारा मिलना हुआ, ... भी मिला सो आनन्दकी बात है। उसने भी मुझको लिखा था। उसके बहुत अच्छे भाव हैं। तुम्हारी स्मृति बहुत बार होती है। तुमने स्वप्नकी बात लिखी सो पढ़कर प्रसन्नता हुई। श्रीराधामाधवकी तुमपर असीम कृपा है।

श्रीश्यामसुन्दरके सान्निध्यका नित्य अनुभव करना चाहिये। उनका संग कभी बिछुड़ता ही नहीं। सदा सर्वदा सर्वत्र समस्त कारणोंसे उनके सुख स्पर्श की पवित्र मधुर अनुभूति होती रहनी चाहिये। श्रीराधामाधवके प्रेम रस सुधा सागरमें निरन्तर डूबे रहना चाहिये। उनकी कृपासे ही यह संभव है। तुम्हारे लायक सेवा यही है कि तुम निरंतर श्रीराधामाधवकी सेवामें ही संलग्न रहो। तुम्हारी माताजीका स्वास्थ्य कुछ खराब था सो ठीक हुआ होगा।

श्रीराधा श्यामसुन्दर दोनों ही एक दूसरेके प्रेमी प्रेमास्पद हैं। मिलन और विरहरूपी-दो तटों पर इनकी प्रेम सुधा सरिता सदा प्रवाहित होती रहती है। एक बार कुछ समय तक मिलन नहीं हुआ तब श्रीराधाजी अत्यन्त आतुर हो गयी उसीकी एक झाँकी है—

बिरहातुर, अति कातर, सब जग भूलि, गई कालिंदी-तीर।
पकरि कदंब-डारि ठाढ़ी ह्वै बावरि, बहत अमित दृग-नीर॥
चित नहीं धरत धीर नैकहु, पल-पल प्रति काँपि रह्यो मृदु गात।

कल न परत, हिय जरत, दाह अति दारून, भरत आह, बिललात॥
अति आतुर 'प्रिय सखी' आई पहुँची, तहँ, देखि दसा, तजि धीर।
बोलि अति मृदु बैन मैन-मोहनको लखि हिय बिंध्यौ सु-तीर॥
सखि! धीरज धरु, तजु गलानि, मैं जाइ तुरत सब हाल सुनाय।
प्रियतम-मन-मोहन कौं, अब ही, हौं अपने सँग लाउँ लेवाय॥
प्रिय सखिके मृदु बचन सुनत, भूली प्यारी निज तन को भान।
प्रियतम-रूप भई मन, तेहि छिन, करन लगी निज गुन-गन-गान॥
हा राधे! प्रानस्वरि! हा मन हरनि! मधुर सुंदरता-खानि।
सदगुन निधि, नित नव सुखदायिनि, सुमिरत होत सकल दुख-हानि॥
हौं नित बिक्यौ हाथ तुव स्वामिनि! बिना मोलको चेरौ मान।
प्यारी! मधुर दरस-रस कौं तुव तड़पि रहे ये प्यासे प्रान॥
छायौ अति दारून बियोग-बिष तुव, सब तन अति बिषम अपार।
मुख-ससि-सुधा सींचि सत्वर, बिष हरु, अब पिय कौं लेउ उबार॥
प्रिय सखि आई हुती, तबहिं प्यारे हू हे पहुँचे तहँ आइ।
दसा प्रेम-बैचित्त्य मधुर प्यारी की निरखत रहे लुकाइ॥
हा प्रियतमे! राधिके! प्रानाधिके! प्रान-पुत्तलिके! हाय!
कहिं यों, मूर्छित परीं अवनि, ह्वै प्रकट स्यामने लईं उठाय—
भुज भरि निज पट पीत डासि महि, दी ता पर सुबाइ अभिराम।
मस्तक राखि समोद गोद निज, मुख छबि निरखन लगे ललाम॥
गाल-भालके घर्मबिंदु, दृग-सलिल पोंछि निज पट नंदलाल।
भये द्रवित मन, तन पुलकित, दृग प्रेम-सलिल छाये ततकाल॥
मृदु मधु निज कर अँगुरिन तें प्रिय लगे सँवारन कुंचित केस।
प्रियतम लखि प्यारी-सेवारत प्रिय सखि भई मुदित सबिसेस॥
खोलि नयन छिन, निरखि स्याम-घन, 'हा हृदयेस्वरि!' कहि ते काल।
मूँदे पुनि, मुख-पंकज-मधु पी, भये स्याम-दृग-मधुप निहाल॥
भई अर्ध-चेतन प्यारी तब-पुनि-पुनि खोलत-मूँदत नैन।
घोरि अमिय-रस मधुर अमित पिय, बोले अति बिनम्र सुचि बैन॥
नयन उघारि तनिक मो तन निरखौ तुम, हे मम जीवन-मूरि।
सेवक हौं तुव चरननि कौं नित, करौ न मोहि नेक पल दूरि॥

पिय के बचन सुधामय सुनि, करि पूर्न चेत, उठि बैठी बाल।
दोउन के कन-कन उमग्यौ अति प्रेम-सुधा-सागर सुबिसाल॥
सुखी भई सखि, नाचि उठ्यो मन, जिमि घन लखि बन नाचत मोर।
भई सफल-जीवन लखि प्यारी-प्रीतम कौं आनन्द-विभोर॥

---

(५६)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ३०-७-५९

सप्रेम हरिस्मरण। कल बाबासे मिला था। तुम्हारी चर्चा हुई तुमने बाबाके लिये एक पत्रमें जो समाचार लिखे थे वे सुनाये। सुनकर बाबा अत्यन्त मुग्ध हो गये और तुम्हारे चरणोंमें दण्डवत प्रणाम करने लगे। बोले—मेरा उसकी चरणधूलिको प्रणाम लिखना। आपके प्रति उसका जो इतना पवित्र सद्भाव है और श्रीकृष्णकी जो उसपर इतनी कृपा है यह उसकी महान उच्चस्तरकी स्थिति है—मेरा बार-बार सद्भाव तथा प्रणाम।

यह बाबाके भाषणका सार है। ..... के पत्र भी सुनाये; सुनकर खूब हँसे बोले—लिख देना तुम्हारे पत्र बाबाको सुना दिये; सुनकर वे जोर-जोरसे हँसने लगे। तुम प्रसन्न होओगी। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। शेष भगवत्कृपा।

---

(५७)

गीताप्रेस, गोरखपुर ७। ८। ५९,

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा ५-८-५९ का बहुत सुन्दर पत्र मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा स्वास्थ्य पहले जैसा ही है। बाबाका स्वास्थ्य प्रायः ठीक ही है। तुम्हारे प्रति बड़ा ही सद्भाव प्रकट किया करते हैं। उनसे तुम्हारे प्रणाम कह दिये हैं। 'चपत तो तुम्हारे लग ही चुकी है, तभी तो तुम्हारा यह आकर्षण है। उनका नाम इसीसे 'कृष्ण' है। वे दूरसे ही चपत लगाकर खींच लेते हैं। एक बार लगी है तो अब लगती ही रहेगी। इन चपतोंका आनन्द व्रजाङ्गनाओंको पूरा मिला था। इस दयनीय दशाका अर्थ है—लोक-परलोक, मुक्ति-भुक्ति सबसे वञ्चित होकर एकमात्र श्यामसुन्दरको ही अपने अति समीप अव्यवधान बसा लेना सदाके लिये एवं एकमात्र उन्हींको हो जाना।'

तुमने उस दिनका .....पत्र पढ़ा सो ठीक है। पर हम लोगोंसे कितनी-

कितनी भूलें होती हैं, उद्दण्डता हो जाती है सो इस प्रकार लिखना अवश्य ही भूल और उद्दण्डता है। मनमानी बात निःसंकोच लिखना। इसके विपरीत करना ही उद्दण्डता और शरारत है। अतः ऐसा कभी मत कर बैठना। हाँ बाबाकी बात कुछ दूसरी है उनको पत्र लिखनेमें उनकी मर्यादा तथा मनका ध्यान रखना चाहिये। मुझे तो मनकी बात ज्यों-की-त्यों निःसंकोच लिखनी चाहिये। फिर वह पत्र तो .....ने लिखा था। तुम तो यों ही बहुत ही कम लिखती बोलती हो। तुम इतना क्यों डर गयी? जो इस प्रकार क्षमा माँगने लगी। तुम्हें क्षमा न मिले और दण्ड दिया जाय—तभी ठीक है।

तुम लोगोंके मनसे शरारतकी बावत पूछनेकी बात लिखी सो ठीक है। समर्पित मन तो तुम्हारे पास है नहीं। एक कल्पित मनको तुमने बना रखा है। उसीके द्वारा यों क्षमा माँगनेकी शरारत होती है और उससे पूछनेकी आवश्यकता नहीं। समर्पित मनपर तुम्हारा अधिकार नहीं।

..... बाबत लिखा कि वह आजकल अपनेको सबके सामने एकदम दीन सा रखता है। दूसरोंको गुणी और प्रेमी मानता है—सो यही तो प्रेमी भक्तके लक्षण हैं। मेरा स्वास्थ्य ठीक ही चल रहा है। स्वार्थ जब एक है जब स्वका समर्पण हो गया तब स्वार्थ साधनका प्रश्न ही कहाँ रहता है। प्रेमको झलक प्रेमार्णव श्रीश्यामसुन्दर ही दे सकते हैं और वे देते ही हैं। ..... की दवा हो रही है। सो ठीक है तुम्हारी माताजीके स्वास्थ्यकी बड़ी चिन्ता हो रही है। उनको मैंने पत्र लिखा है। तुम्हारे पत्रकी काटी हुई लाइनें मैंने पढ़ ली। उसकी चीज उसकी है ही। फिर दें क्या दें। पदोंकी नकल भेजनेका विचार है। कितने तो कल्याणमें छप गये हैं।

---

(५८)

२९-८-५९, गीताप्रेस, गोरखपुर

सप्रेम हरिस्मरण। इधर तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला। मैंने भी नहीं लिखा। तुम लोगोंके पत्रमें क्या लिखा जाय और तुम भी क्या लिखो। अनिवर्चनीय वस्तुका वाणीसे निर्वचन कैसे हो? मनकी भाषाके लिये शब्द नहीं होते। मनसे पत्र लिखा करता हूँ। मुझे तो पता नहीं पर ..... ने लिखा था कि स्वप्नमें उसे कई लंबे पत्र मिले थे। अवश्य ही वे तो उसकी अपनी भावनाके ही होंगे। पर मैं

भी पत्र लिखा करता हूँ यह सत्य है। मनके लंबे पत्र जल्दी लिखे जा सकते हैं। कागज कलमसे उतनी जल्दी तथा उतना सुन्दर लिखा ही नहीं जा सकता। तुम्हारा मन निरन्तर श्रीप्रभुके चरणोंमें लगा रहता होगा और तुम्हें भगवान श्यामसुन्दरकी लीलाओंके अनुभव होते होंगे। राधाष्टमीपर तुम आ रही हो न? तुम्हारी याद आ रही है। बेटी .....का स्वास्थ्य अच्छा होगा लिखना। उसका बहुत सुन्दर पत्र आया था। मैं उत्तर लिखूँगा। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। तुम बहुत प्रसन्न रहना।

---

(५९)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २१-९-५९

सप्रेम हरिस्मरण। बहुत प्रतीक्षाके बाद तुम्हारा पत्र मिला। प्रसन्नता हुई। तुम्हारे छोटेसे पत्रमें तुम्हारे हृदयके पवित्र भावोंकी झाँकी मिली। बड़ा सुख हुआ। तुम्हारे भावोंका मेरे हृदयमें बड़ा आदर है। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। बेटी ..... प्रसन्न होगी। यह सत्य है कि समयकी कमीसे तथा कार्य व्यस्तासे मैं बातचीत नहीं कर सका, यद्यपि मेरे मनमें तुमसे बात करनेकी बड़ी इच्छा रही। मनकी बातचीत होती ही है। उसके लिये समयका अभाव नहीं है। तुम्हारा भगवत् लीला दर्शनका कार्य ठीक चल रहा है। ऐसा ..... के पत्रसे मालूम हुआ। उससे बहुत आनन्द मिला। तुम लोगोंका पारस्परिक स्नेह तथा रागात्मभाव अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। श्रीराधाके प्रति श्रीकृष्णका सन्देश—एक एक पद इसके साथ भेज रहा हूँ मुझे याद नहीं रहता इसे पहले मैं तुम लोगोंको किसीको भेज चुका हूँ। भेज दिया हो तो दुबारा समझना।

बाबाके अत्यन्त स्नेहपूर्ण यथायोग्य। मेरे जो कुछ तुम समझो या चाहो सो।

जबसे छूटा था राधे! वह मधुर तुम्हारा प्रिय संयोग।
तबसे व्याप रही थी दारुण व्यथा, बढ़ रहा मानस-रोग॥
नहीं चैन पड़ता पलभर था, नहीं सुहाता था कुछ और।
रहना नहीं चाहता था मन लवभर कहीं दूसरी ठौर॥
प्रिये! तुम्हारी प्यारी स्मृति से भरा चित्त मेरा भरपूर।
रोम-रोम खिल उठा अचानक, व्यथा हो गयी सारी दूर॥
मधुर तुम्हारा प्यारा विग्रह तुरत सटा आकर सब-अंग।

तिलभर पृथक् न रहा, बढ़ चला परम नवीन अतुल रस-रंग॥
कभी बड़ी व्याकुलता होती, फिर जब होता अमिलन-भान।
तुरत प्रकट होकर स्मृतिमें तुम करतीं सुखद स्पर्शका दान॥
तबसे कभी वियोग-मिलन होता, फिर कभी मिलन-सम्भोग।
रहती प्रिय अनुभूति बाह्य, अन्तर रहता नित रस-संयोग॥
इस प्रकार तुम राधे! मुझसे होती दूर न पलक कभी।
रहती सदा परिस्थिति अब मेरी रस-आनन्दमयी सभी॥

---

(६०)

गीताप्रेस, गोरखपुर ३-१०-५९

सप्रेम हरिस्मरण। पत्र लिखा था पहुँचा होगा। तुम्हारा छोटा-सा भाव भरा पत्र मिला। प्रसादके आनन्दकी बात लिखी सो यह तुम्हारे हृदयके आनन्दका ही आनन्दानुभव है। "भगवान् श्यामसुन्दरके प्रेम राज्यमें दूर-समीपका प्रश्न ही नहीं है। यहाँ तो नित्य समीप ही नहीं, नित्य एकात्म है। देशकालकी दूरीसे इस नित्य एकात्मतामें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती। इसी प्रकार इस राज्यमें नित्य सौभाग्य तथा नित्य उत्सव है। यहाँ अभाग्य और शोकके लिये स्थान ही नहीं है। तुम भैया-भाभीके भावोंको देखकर मुग्ध रहती हो तथा यह चाहती हो कि मेरे भैया-भाभीको खूब स्नेह नित्य नवीन रस मिलता रहे, मुझे बिल्कुल ही न मिले तो भी मुझे बहुत ही सुख रहेगा। सो तुम्हारी यह चाह ही ऐसी है जो जबदस्ती तुम्हें नित्य नव मधुर दिव्य स्नेह-रस देती रहेगी। ..... भैयाके द्वारा तुम लोगोंको अवर्णनीय रस सुधाका पान करनेका सौभाग्य मिला है। यह उसका बड़ा सौभाग्य है। विषय-रस तो जगत्में बहता ही रहता है, इस रसकी धाराको सुखाकर जो भगवत्प्रेम रस-सुधाका पान करता-कराता है उसीका परम सौभाग्य है। तुम लोगोंके कारण ही भैयाको यह सौभाग्य मिला है। जब तुम लोग परस्पर एक-दूसरेके सौभाग्यको—त्याग तथा पवित्र प्रेमकी रस धाराके द्वारा सदा-सर्वदा बढ़ाते रहो।" लिखते-लिखते तुम्हारी कलम रुक जाती है सो ठीक है। अनिर्वचनीयता ही तो यहाँकी स्वरूप शोभा है। आपकी लाइनके नीचे ..... लगाकर तुमने जो भाव व्यक्त किया वह बड़ा ही पवित्र है तथा सुख ही रस पूर्ण है।

मिले नेत्र नेत्रोंमें जाकर, श्रवण मिले श्रवणोंमें सत्य।

मिलीं अन्य सारी इन्द्रिय, प्रियके इन्द्रिय-समूहमें नित्य॥
हृदय हृदयमें मिला, समाये प्राण सदा प्रियतमके प्राण।
एकरूप हो गये, रहा रंचक भी नहीं भिन्नता-भान॥
किसको कौन समर्पित, किसमें कौन हुआ कब कैसे लीन।
प्रियतम है या प्यारी, कौन बताये यह सुधि-बुधिसे हीन॥

---

(६१)

गीताप्रेस, गोरखपुर ११-१०-५१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा सुखद सुन्दर पत्र मिला। "तुमने पहलेसे अबतक की स्थिति लिखी, ... से मिलनेके बाद उससे पवित्र बहिन-भाईका सम्बन्ध हुआ। श्रीश्यामसुन्दरकी तथा उनकी लीलाओंकी ओर आकर्षण हुआ। फिर लीलामें सखी भावसे दोनोंके द्वारा श्रीराधामाधवकी मधुरार्चना होने लगी, अब अत्यन्त पवित्र एकात्मताका भाव हो गया। सो बहुत ही आनन्दकी बात है। तुम जैसा लिखती हो ऐसा ही पवित्र एकात्म उसके हृदयमें भी है। बाबाने तुम लोगोंको एक उद्देश्य, एक मन, तथा तुम्हारी एकात्म भावनाको जानकर ही तुम लोगोंको एक साथ बुलाया तथा एक ही भावकी महान मानस प्रेरणा प्रदान की। तुम लोगोंका बड़ा सौभाग्य है। लीला राज्यमें तुम दोनोंका तो साथ है ही। ..... भी साथ ही रहेंगी।"

..... ने अपनी लीलाकी बात मुझे लिखी थी। तुम्हारी लीलाकी बात पढ़कर बड़ा सुख मिला। लीला-शीलाका परस्परिक प्रेम तथा श्रीराधामाधवकी उनके प्रति हार्दिक प्रियता तथा श्रीराधाजीके द्वारा ललिताजीके हाथ उनका अन्वेषण कराना तथा बुलाकर हृदयसे लगाकर उनके प्रति अत्यन्त स्नेह प्रकट करना उनकी बड़ी उच्चप्रेमकी स्थितिका सूचक है। "श्रीश्यामसुन्दरकी निकुञ्ज लीलामें जिनका निर्बाध प्रवेश है वे सर्वश्रेष्ठ उनकी प्रिय होती हैं। नहीं तो वहाँकी सेवा तो दूर रही, वहाँ प्रवेशाधिकार भी नहीं मिलता।" तुम्हारी स्मृति कुछ हुआ करती है। पत्र कम लिख पाता हूँ। मैंने पहले भी शायद लिखा था, पत्रमें लिखनेको कुछ है भी नहीं, क्योंकि मनकी भाषाके शब्द नहीं होते तथापि श्रीश्यामसुन्दरकी पवित्र स्मृति करानेवाला होनेके कारण तुम्हें पत्र लिखनेमें बड़ा ही आनन्द होता है। मनसे मनकी भाषामें बातचीत प्रायः होती ही रहती है। तुम्हें

अनुभव होगा।

तुम बहुत प्रसन्न होओ, यही चाहता हूँ।

श्यामकी चर्चा हमारा प्राण है। श्यामकी चर्चा सुखोंकी खान है॥
श्यामकी चर्चा हमारी शान है। श्यामकी चर्चा हमारा मान है॥
श्याम-चर्चा है सुखद हमको परम॥
श्यामकी चर्चा सुनाता जो हमें। श्यामकी चर्चा बताता जो हमें॥
श्याम-परिपाटी सिखाता जो हमें। श्यामकी रतिमें लगाता जो हमें॥
हैं कृतज्ञ सदैव हम उसके परम॥

(६२)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २१-११-५२

सप्रेम हरिस्मरण। बहुत दिनोंकी प्रतीक्षाके बाद तुम्हारा सुन्दर पत्र मिला। इधर बहुत अधिक कार्यव्यस्त रहनेके कारण मैं पत्र नहीं लिख सका। सो कोई विचार मत करना। तुम्हारी स्मृति बार-बार हुआ करती है। पूज्य सेठजी यहीं थे। कल चित्रकूट गये हैं। यहाँसे बहुतसे आदमी साथ गये हैं। मेरे अभी तो विशेषांकका कार्यक्रम चल रहा है। कुछ भागवत सम्बन्धी सत्संगकी बात भी चल रही है। फिर शायद मनमें कलकत्तेकी ओर आना हो जाय। तुमने लीलादर्शनका एक प्रसंग लिखा, सो पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। श्रीश्यामसुन्दरकी तुमपर अपार कृपा है। जो तुम्हारे सामने इस प्रकारके लीला प्रसंग आते हैं।

भगवान् श्यामसुन्दर सदा तुम्हारे पास ही रहते हैं। किसी भी परिस्थितिमें वे पृथक् नहीं होते। उनमें न कामना है न दंभ है। वे किसी मोहमें नहीं पड़ते न लोग दिखाऊ लीला करते हैं। वे सचमुच ही प्रेमपरवश हैं। प्रेमका आकर्षण उन्हें सदा खींचकर प्रेमीके पास रखता है और वे उसके प्रेम-रसास्वादनके लिये नित्य लालायित रहते हैं। श्रीराधाके वियोगमें श्यामसुन्दरकी क्या क्या स्थिति होती है इसका एक शब्द चित्र स्वयं उन्होंने ही श्रीराधाको बतलाया था उसे अलग एक पत्रमें लिखकर भेज रहा हूँ। भगवान् सचमुच ही प्रेमस्वरूप हैं। प्रेमाकांक्षी, प्रेमदानी और प्रेम भिखारी हैं। इनके जैसे वही हैं।

वे कभी ठुकराना जानते ही नहीं। श्रीराधारानी ही मान करती हैं। वे तो उनकी अपेक्षा बहुत ही कम कभी-कभी मान-लीला किया करते हैं। एक बार जो उनका हो जाता है, उसे वे कभी छोड़ते नहीं। वह चाहे या न चाहे, वे 'निज

पद सरसिज सहज सनेह' अनायास रहते हैं तुम्हारे।

भगवान् सचमुच हम सबके मनकी सारी बात जानते हैं। उनसे कुछ छिपा नहीं है। तभी तो वे सच्चे प्रेमीके साथ अपने आपको भूलकर प्रेम करते हैं और उसके हाथों बिक जाते हैं।

बाबाको तुम्हारे प्रणाम कह दिये हैं। बाबाके यथायोग्य। वे तो तुम लोगोंका नाम सुनते ही गद्गद हो जाते हैं।

भागवतका सत्यंग मगसर (मार्गशीर्ष) सुदी २ से करानेका पत्र है। विष्णुकी माँ आदि सब उसके पहले ही वहाँ पहुँच जानेवाली हैं।

प्राणाधिके! प्रियतमे! मुझको सतत स्मरण होता तेरा।
भूल नहीं सकता मैं पलभर कभी शशांक वदन तेरा॥
तेरे प्रेम-सुधानिधिमें नित डूबा रहता मन मेरा।
मधुमय वाणी सुननेको नित चित्त लुभाता है मेरा॥
प्रेम छलकती आँखें तेरी नित मेरे सम्मुख रहती।
सदा समीप खड़ी तू मन भर मन की सब बातें कहती॥
आलिंगन करती, सुख देती, गल-बैंया देकर मिलती।
चिपटी सदा हृदयसे रहती, कभी न रत्तीभर हिलती॥
कभी मधुर संगीत सुनाती, कभी हँसाती औ हँसती।
कभी नयन मटकाती, भौंह चलाकर मनमें आ धँसती॥
प्रीति-विवश हो कभी मनोहर, रसमय तीव्र व्यंग कसती।
रोकर कभी रुलाती, कभी फँसाती, अपने ही फँसती॥
हो अति आतुर कभी दीन, दयनीय बनी चरणों पड़ती।
कभी विचित्र भंगिमा करती, कटुवाणी कहकर लड़ती॥
कभी परम सन्तोष दिलाकर, मनकी सभी व्यथा हरती।
हो करबद्ध कभी अति करुणापूर्ण मधुर विनती करती॥
भोली-भाली निपट मनोहर सूरत मधुर कभी धरती।
कभी सरल-हृदया हो, अति सीधी-सादी बातें करती।
कभी चतुर, अति बुद्धिमती बन, तर्क-विवाद विशद करती॥
कभी कला नैपुण्य दिखाती, कभी ज्ञान उत्तम भरती।
बनती कभी भीम अतिशय, या आहट मनिक मदा डरती।

कभी निडर हो, परम साहसी, भीषणतम भयको हरती॥
मुरली कभी चुराती, ले छिप जाती मोर-मुकुट सुंदर।
कभी भुलाती छद्मवेश धर, कर देती सब इधर-उधर॥
कभी हृदयसे हृदय सटाकर करती मधुमय रसका दान।
करती, कभी कराती अति सुखदायक अधर-सुधा-रस-पान॥
यों नित होता सरस सुधामय सुख-स्पर्श तेरा अभिराम।
मन में सदा चटपटी रहती, छटपट हिय करता अविराम॥
रहता सदा चित्त यह मेरा, तेरे शुभ दर्शन में लीन।
हट सकता न कभी, ज्यों जलसे नहीं पलक हट सकती मीन॥
सदा मिले रहते सारे अंग, होता सदा बड़ा-संस्पर्श।
मग्न-प्रेमरस, रहित शोक-भय, अनुभव करता चिन्मय हर्ष॥

इस प्रकार श्यामसुन्दर जैसे श्रीराधाको नित्य प्रत्यक्ष अपने साथ विविध भावोंसे लीला करती हुई पाते हैं ठीक वैसे ही श्रीराधा भी श्यामसुन्दरको निरन्तर अपने पास ही लीला विहार रत देखती और अनुभव करती है।

---

(६३)

२-१२-५९

.....को पत्र नहीं लिख रहा हूँ। यह एक पद है। उसे पत्र समझकर उसे दे देना।

स्रवननि भरि निज गिरा मनोहर, मधुर मुरली की तान।
सुनन न दै कछु और शब्द, नित बहिरे कीन्हे कान॥
लिपट्यौ रहै सदा तन सौं मम, रह्यौ न कछु बिबधान।
अन्य परस की स्मृति न रही कछु, भयौ चित्त इकतान॥
अँखियन की पुतरिन में मेरे निसिदिन रह्यौ समाय।
दैखन दै न और कछु कबहूँ, एकै रूप रमाय॥
रसना बनी नित्य नव रसिका, चाखत चारू प्रसाद।
मिटे सकल परलोक-लोकके खाटे-मीठे स्वाद॥
अंग-सुगन्ध नासिका राची, मिटी सकल मधुवास।
भई प्रमत्त गई अग-जग की सकल सुवास-कुवास॥

मनमें धरि दीन्हीं मोहन निज मुनि-मोहनि मुसकान।
चित्त कर्‌यौ चिन्तन-रत चिन्मय चारु चरन छबिमान॥
दई डुबाय बुद्धि रस-सागर, उछरन की नहिं बात।
आइ मिल्यौ चेतन में मोहन, भयौ एक संघात॥

(पाँचों इन्द्रियोंको मन, चित्त, बुद्धि, आत्मा सबको अपने वशमें करके श्यामसुन्दरने केवल अपनेमें ही लगा लिया है।)

---

(६४)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ८-३-६०

सस्नेह हरिस्मरण। तुम्हारा कागज, कलमका पत्र इधर बिल्कुल नहीं मिला। मैंने भी नहीं लिखा। वैसे तो मेरे मानस पत्रकी पहुँच ..... ने एक बार लिखी थी। तुम्हारी स्मृति बनी रहती है। पर तुम लोगोंमें पवित्र मधुर भाव सागरमें भी मैं अवगाहन करता रहता हूँ। बस सर्वोत्तम यही है कि चुपचाप अपने नित्य संगी एक मात्र श्यामसुन्दरके साथ भाषण, विनोद होता रहे। जगत्-जगत्का कोई विषय अन्य कोई मति, गति, नाते-सम्बन्ध, आशा, आकांक्षा, साध्य, साधन, प्राप्तव्य वस्तु—गन्तव्य स्थान रहे ही नहीं। एक मात्र प्राणाराम प्रभु और उनके निजजन हम—बस दो ही रहें—

तुम हम बस दो ही रहें न कोई दूजा।

यदि हम ऐसा करें चाहें तो भगवान्‌को यह स्वीकार है। वे भी अपने सिवा और अपने एकमात्र प्रेमीके सिवा अन्य किसी भी प्राणी पदार्थ परिस्थितिकी उपस्थिति नहीं पसंद करते।

'मामेकं शरणं व्रज'

तुम्हारा अधिक न बोलना न जाना आना न लिखना पढ़ना बहुत अच्छा है। इस मौन मिलनमें जो आनन्द है वह मुखर मिलनमें कदापि नहीं है।

बाबा भी ..... बहुत याद किया करते हैं। ..... ने भी तुम्हारी बड़ी तारीफ लिखी तथा तुम्हारी जैसी भाव वाली बननेकी इच्छा प्रकट भी है। तुमलोग अपने मौन-विशुद्ध आचरणसे स्वाभाविक ही श्यामसुन्दर की महिमाका विस्तार कर रहे हो और उनकी प्रीति प्राप्त कर रहे हो। यह बहुत ही सुन्दर है।

---

(६५)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १३ ३ ६०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र बड़ी प्रतीक्षाके बाद मिला। तुम्हें स्वप्नमें रासके दर्शन बहुत बार होते हैं—लीला दर्शन चलता ही है सो बड़े ही आनन्दकी बात है। इधर ..... के पत्रोंमें भी बड़े ही सुन्दर अनुभवके समाचार मिलते रहे। उससे बड़ी प्रसन्नता थी। बीचमें श्यामसुन्दरकी कृपासे यह बीमारीका खेल हो गया। है तो खेल ही और ..... को निश्चय ही खेल ही समझना चाहिये। असलमें तो वह इस शरीरकी भी चिन्ता करनेवाला है ही कौन ? पर मुझे तो बड़ी चिन्ता हो जाती है। श्रीश्यामसुन्दर तो हँसते हैं-हँसते ही रहते हैं। हर हालतमें नये-नये स्वाँग बनाते रहते हैं। उनके राज्यमें न जन्म है न मरण। वहाँ तो एक ही अनन्त धारा बह रही है—प्रेमानन्द सुधारसकी।

..... की बात पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। क्या अनुभव बताती है। दो-एक लिखना। तुमलोगोंके अनुभवोंकी बात भी लिखना। मेरा २६ को यहाँसे ऋषिकेश जानेका विचार तो है ही।

---

(६६)

गोरखपुर, २५। ३। ६०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हें पत्र नहीं लिख पाया। अब तो कल यहाँसे ऋषिकेश जा रहे हैं। पत्र वहींके पतेपर देना। अब ..... का स्वास्थ्य अच्छा होगा। तुम प्रसन्न होओगी। ..... वगैरहका कबतक का विचार है। तुम तो कैसे आ सकोगी। तुम प्रसन्न होओगी। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। ..... प्रसन्न होगी। तुम लोगोंकी भावकी मधुर धारा सदा ही पवित्र सुख दिया करती है। समर्पणका आदर्श बड़ा उज्ज्वल है। उसकी उज्ज्वलता बढ़ती ही रहेगी। ज्यों-ज्यों प्रभुके भावोंका हृदयमें अधिक प्रकाश होगा। त्यों-ही-त्यों उज्ज्वलताका भी प्रकाश बढ़ेगा। यह उज्ज्वलता अनन्त है क्योंकि प्रेम अनन्त है। इसका बड़ा सुन्दर प्रारंभ समर्पणसे होता है। मैं तो सदा वस्तु हूँ उनकी। फिर यह 'मैं' भी वे हो जाते हैं और फिर वे क्या-क्या कैसे करते हैं उसे कौन बतावे, जो करते हैं वही जानते हैं। मैं कुछ भी नहीं रह गया। यह कहनेवाला मैं भी उन्हींका स्वरूपभूत होता है।

क्या कहा जाय ? वाणी बोल नहीं सकती। मन कुछ सोच नहीं सकता।

मिलन-अमिलन दोनोंमें ही एक विलक्षण आनन्दका स्रोत बहता है।

नहीं मिलन में तृप्ति, कभी अमिलन में है न अभाव कभी।
हुए एकरस नित्य प्रेम-सरितामें भावाभाव सभी॥
हर वियोग हर क्षण में होता यह अतुलनीय अनुभव।
कभी दो नहीं हुए आज तक, कभी न होने हैं संभव॥
नित्य एक हैं नित्य मिलन है, है रस-पारावार अनन्त।
मिलन कहाँ, कैसा, जब होता कभी न नित्य-मिलनका अन्त॥
मिलनानन्द विलक्षण पैदा कर देता फिर मिलनोन्माद।
दो बन जाते तुरत, प्रतिक्षण बढ़ता मधुमय रस-आस्वाद॥
होती नहीं कदापि तृप्ति, बढ़ती रहती रस-प्यास अपार।
यही चाहते—बने रहें दो, बहते रहे सदा रस-धार॥
करते रहें पान रस मधुमय, दुर्लभ, दिव्य नित्य अविराम।
हो न कल्पना भी वियोगकी, रहे नित्य संयोग ललाम॥
यों बहती रसमयी मधुर अति संतत प्रेम—नदी पावन।
विप्रलम्भ संयोग मनोहर तट इसके दो मनभावन॥

..... तुम्हारे अन्य अन्तरंग जन इस प्रेमरस सुधा-सरितामें गोते लगाते हो। लगाते ही रहो। कभी इसका विराम हो ही नहीं।

---

(६७)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १९-५-६०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा मधुर पत्र मिला था। मेरे ऋषिकेशसे चले आनेपर प्रिय ..... आदिके हृदयमें होनेवाली वेदनाका तुमने अपने हृदयमें विशेष रूपसे अनुभव किया और उसे जिस मधुर तथा स्पष्ट भाषामें बहुत थोड़ेमें ही दिखाया, उसे पढ़कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। तुम लोगोंकी यह एकात्मता तथा अनुभूति बड़ी ही विलक्षण है।

मेरे वहाँसे आनेके बाद उनके मनकी जो विचित्र स्थिति हुई वह भाषामें व्यक्त नहीं की जा सकती। उसका अनुभव तो हृदय ही करता है। यद्यपि ऋषिकेशमें न तो उन लोगोंसे विशेष मिल ही सकता था न बातचीतका ही अवसर मिलता था। सिर्फ देख लेते थे और पता नहीं क्यों इसीमें उनको ऐसा

आह्लाद रहता था कि जिसका वर्णन संभव नहीं। यह उनके पवित्र प्रेमका ही परिचय है। तुम्हारा मूक भाव तो मूक भाषामें ही बोलता रहता है। इस अमिलनमें भी मिलनकी अनुभूति होती रहती है। अबकी बार ..... बड़ी ही गंभीर रही। बड़ी भीड़ भाड़ थी। गंभीरता उतरनेकी तैयारी करती। उतनेमें समय हो जाता इससे प्रायः गंभीर दर्शन ही होता। अवश्य ही उस गंभीरताके तल देशमें रस तरंगे ही उछला करतीं।

.....का पत्र तो नहीं मिला। उससे मेरा सस्नेह यथायोग्य कहना। घरके पतेपर तुम्हारे पत्रका उत्तर देनेका विचार है। प्रिय.....का स्वास्थ्यकी बातें तुमने लिखी सो ठीक ही मालूम होती है। पर मनसे तो उसे सदा समीपताका ही अनुभव करना चाहिये।

---

(६८)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ११-१०-६०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। तुम्हारे पत्र मुझे कितने अच्छे लगते हैं। यह मैं क्या बताऊँ? इधर मैं पत्र नहीं लिख पाया। सो कोई विचार मत करना। स्थूलकी अपेक्षा सूक्ष्ममें अधिक भाव तथा उसका अधिक मूल्य होता है। स्थूल पत्रोंकी अपेक्षा मानसिक पत्र-व्यवहारका इसलिये अधिक महत्वका है और उसमें न कालकी सीमा होती है न शब्दोंका आडम्बर एवं न भावोंको गोपन रखनेकी आवश्यकता। वे ही पत्र वास्तवमें हृदयके पत्र होते हैं। बाहर कागज, कलमसे तो उनकी छायाका चित्रण भी नहीं हो सकता।

..... का स्वास्थ्य अच्छा होगा। उससे मेरा सप्रेम यथायोग्य कहना। इधर उसकी बहुत स्मृति रही। पूछना, उसके मनकी स्थिति कैसी है।

मेरा स्वास्थ्य साधारण ठीक है। उसकी ओर कोई दृष्टि भी नहीं है। मस्तिष्कवाली चीज बढ़ रही है। परसों दिनमें १२ बजेसे रात्रिके १० बजे प्रायः बाह्य चेतना नहीं थी। सब प्रभुकी लीला है।

बाबासे तुम्हारा प्रणाम कह दिया था। वे सुनकर गद्‌गद हो गये। उनका बदलेमें यथायोग्य।

तुमने बड़े ही मधुर स्वप्नका विवरण लिखा। यमुना विहारका सुन्दर दृश्य है। उस समय पानीमें डूबनेकी कैसी बात। वह तो रमणीय विहार स्थली

है जो डुबानेवाली नहीं, लहरोंपर नचा-नचाकर आनन्द देनेवाली है।.....ने एक स्वप्न तथा दो मधुर अनुभव लिखे थे। भगवान्‌की बड़ी कृपा है। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। सब बच्चे प्रसन्न होंगे।

यहाँ सब राजी खुशी हैं। शेष भगवत्कृपा। पत्र देती रहा करो। मेरा पत्र न पहुँचनेपर कोई दूसरी बात मत समझा करो।

---

(६९)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २४-३-६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे कई पत्र मिले। मैंने पत्र नहीं लिखा। इसके लिये सफाई क्या दूँ। मेरी भूल समझो तो माफ करो तथा असमर्थता समझो तब भी माफ ही करो। मैंने एक पत्र प्रिय ..... को लिखा था। उसको तुमने पढ़ा ही होगा। तुम्हारी अनुभूतियाँ बहुत ही सुन्दर हैं। यह श्यामसुन्दरकी तुमपर कृपा है। तुम्हारे एक स्वप्नके सम्बन्धमें तुमने लिखा था कि स्वप्न देखा सो लिखा नहीं जाता पर मन हो रहा है कि वह कैसा स्वप्न था। और प्रिय ..... ने लिखा है परसों रातको स्वप्नमें बहुत ही मीठा मिलाप तथा वार्ता हुई थी। सो ये दोनों तुम्हारे एक स्वप्नकी बात है और यदि लिखनेमें संकोच न हो तो मुझे लिखना। इसमें सुख-संतोष ही मिलेगा।

मैं न तो प्रसाद भेजा, न कोई समाचार ही। यह तुम्हारा लिखना सत्य है। पर प्रसाद तो तुमको प्राप्त ही है। मैंने भी रोज-रोज भेजा है। और प्रसादके साथ ही समाचारका भेजना तो आप ही हो गया। तुम लोग तो प्रसाद मूर्ति ही हो। विषाद मूर्ति तो वे हैं, जिनको संसारके इन्द्रियोंके भोग प्रिय हैं।

कलकत्ते आनेका मेरा मन था। सीधे तो नहीं पर गोरखपुर होकर चैत बदीमें ही। परन्तु मेरा खास करके सावित्रीकी माँका स्वास्थ्य खराब हो जानेके कारण वह विचार छोड़ देना पड़ा। कलकत्ते जानेसे मेरा कुछ बिगड़ता तब तो मैं जानेकी बात ही क्यों सोचता। मुझे तो मिलता ही और मैंने जानेकी बात सोची भी थी मिलनेकी आशासे ही। मीठे रसगुल्ले न सही नमकीन दालमोठ तो मिलते। और कौन जानता है कि किसको मीठे रसगुल्ले पसन्द हैं और किसको नमकीन-दालमोठ। फिर मैं तो शुगरको बीमारीवाला आदमी हूँ। रसगुल्ले खाना भी नहीं चाहता। मुझे तो दालमोठ ही पसन्द है। पर रसगुल्लोंकी पैदाइश ही बंगालसे हुई

है। फिर कलकत्तेमें उनका अभाव कैसे होता? नवद्वीपके गौराङ्गदेशमें मधुरका अभाव! यह बात तो समझमें ही नहीं आती।

अब भी कलकत्तेकी तरफ जानेका मन तो है ही पर कितने दिनोंमें हो सकेगा यह भगवान्‌के हाथ है। तुम लोग समय बरबाद नहीं करोगे यह सत्य है। मैं भी यही मानता हूँ। वह तो समयकी सार्थकता ही होगी।

मेरा अभी कहीं जानेका विचार नहीं है। ऋषिकेश भी यथासाध्य न जानेका ही मेरा प्रयत्न होगा। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

---

(७०)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १२-४-६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। बड़ा सुख मिला। बाबा तथा .....की माँके सस्नेह यथायोग्य। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। ..... की माँका भी पहलेकी अपेक्षा बहुत ठीक है। पत्र न मिलनेपर तुम लोगोंके मनमें आकुलता हो जाती है। यह मैं जानता हूँ और ऐसा होना स्वाभाविक ही नहीं एक पवित्र रस लक्षण है। अत: बार-बार पत्र देनेके लिये आग्रहपूर्वक लिखना अनिवार्य है। और इससे मुझको बड़ा सुख मिलता है। अत: खूब लिखा करो। लीला कुछ नहीं है। लीला सोचना तो तुम लोगोंकी प्रकृति लीला ही है। मैं तो प्रमादवश ही पत्र नहीं लिख पाता। कभी-कभी पत्र लिखनेका स्तर पीछे भी रह जाता है। तब भी पत्र नहीं लिखा जाता। तुमने स्वप्नका संकेत लिखा सो ठीक है। यह भी सत्य ही है। श्यामसुन्दरका स्नेह रूलानेवाला ही होता है। इतना अवश्य है कि रूलाई क्षोभ-विषादके आँसू न बहकर मधुर दिव्य प्रेम रसका मधुसमप्रवाह बहाती है। जो अन्दर ही अन्दर रस दान देकर हँसाती रहती है।

रसगुल्ले मिले तथा बड़े आग्रहसे खानेकी प्रार्थना करते हुए मिले, तब भी जिसको मधुर रसकी अपेक्षा लवण रस (नमकीन) ही प्रिय और रूचिकर हो, वह विमार न होनेपर भी रसगुल्लेकी ओर झाँकना नहीं चाहता। फिर जिसको सूगरका रोग है वह तो रसगुल्लेसे डरता है—यहाँ तो दोनों ही बातें हैं। रूचि भी नहीं है और डर भी है। बाँटे तो वह जिसके पास वस्तु हो। जहाँ वस्तु और वस्तु वालेमें भेद न रहा हो, वहाँ क्या और कैसे बाँटे। औरोंको खिलवायेगा भी वही जिसके पास खिलानेकी कोई वस्तु उससे अलग होगी। वह तो स्वयं ही रस है

और स्वयं ही रसवाला है। जिसको चखना रस लेना हो वह आप ही उसीसे रस ले ले। वह दे कहाँसे और कैसे ? ..... के कुछ बीमारीके लक्षण प्रिय बन गये हैं सो ठीक है। उन्हें वह बीमारी मानता ही क्यों है ? प्रियतमके दैन मानकर उनका स्पर्शसुख क्यों नहीं अनुभव करता।

बहिन ..... बाबत लिखा सो उसका इष्ट तो सामने ही है। मैं उसे लिख रहा हूँ। तुमसे बन पड़ता है उतनी उसे सुख-सुविधा देती ही हो। उसके साथ प्रेमका, आदरका मधुर व्यवहार करना परमावश्यक है।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। सब बालक प्रसन्न होंगे। शेष भगवत्कृपा।

---

(७१)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २९-५-६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। कई बार तुम्हें पत्र लिखनेका मन किया पर नहीं लिख पाया। कुछ ऐसी परिस्थिति होती जा रही है कि पत्र लिखनेकी सुविधा ही नहीं मिलती। ..... के स्वास्थ्यकी चिन्ता तुमको बहुत अधिक है यह मैं जानता हूँ। तुमलोग सभी उसके प्रति अनन्त स्नेह रखते हो और वह भी तुम लोगोंसे आदर्श प्रीति करता है। इसलिये चिन्ता होना सहज स्वाभाविक ही है। और यह वास्तवमें दोषकी चीज नहीं। प्रेमका पवित्र स्वभाव ही है तथापि उससे भी ऊँची एक और प्रेमकी स्थिति होती है। जहाँ प्रेमास्पदका परम उज्ज्वल अनन्त सुखमय भविष्य ही प्रेमीको परम सुखदायक होता है। चाहे उसमें यहाँ भी नजरमें विषम वियोग या परम क्लेशप्रद अप्रिय प्रसंग ही हो। तुम्हारी पवित्र आत्मीयता इस स्थितिसे डरती है, यह भी ठीक है। इसीलिये तो तुम लिखती हो—"ये सब बातें अब आपकी एक भी नहीं चलेगी, अब तो यह आपको करना ही होगा।" सो पगली! मैं भी यही चाहता हूँ। मुझसे बनता है सो करता भी हूँ, अब भी कर रहा हूँ परन्तु जब प्रियतम हँसकर संकेत करते हैं, तब वृत्तिमें यही आता है, उनसे यही कहना पड़ता है कि—'प्यारे! तुमसे बढ़कर परम कल्याणकारी, परम सुहृद् कौन होगा, जो तुम्हारे विधानमें कुछ भी बात सोचे। तुमपर सन्देह करना तो महापाप है। तुम्हारी इच्छाके अनुसार होनेमें ही सबका परम हित है। अतः तुम जो चाहो, जैसे चाहो, जब चाहो वही वैसे ही उसी समय करो। तुम्हारा प्रेम मंगलमय पूर्ण हो। ..... को तुम जितना प्यार करते हो,

उतना कोई कर ही नहीं सकता। हम तो बाहर तथा वर्तमानको ही देखते हैं। देश-कालमें बँधी है, हमारी नजर। तुम तो सब जानते ही हो, किसका परम कल्याण किसमें है, यह यथार्थ जानते हो। प्यारे! तुम्हारा प्रेम किसी रूपमें आवे वही परम मधुर है निश्चय ही। और वही हमें सानन्द स्वीकार है।'

..... तुम समझती हो मेरे जैसा परतन्त्र मनुष्य क्या करे? वह तो बँधा है—ऐसी दृढ़ डोरीमें, जिसमें जरा भी इधर-उधर होने की उसमें कल्पना शक्ति ही नहीं है। मैं तो तुम लोगोंके आदर्श भावोंको देखकर मुग्ध हूँ और श्रद्धापूर्वक सिर झुकानेमें सौभाग्य मानता हूँ। यह हृदयसे चाहता हूँ शपथपूर्वक। पर उस सुखका स्वरूप निर्णयमें परतन्त्र प्राणी कैसे करूँ। वह तो सर्वथा स्वतंत्र, परम ज्ञानमय प्रियतम श्रीकृष्ण ही करेंगे। उनके चरणोंमें सदा नतसिर हो उसे सिर चढ़ाना ही हमारा कर्तव्य है।

---

(७२)

१०-६-६१, गीताप्रेस, गोरखपुर

सप्रेम यथायोग्य। तुम्हारा पत्र उस दिन मिला। सचमुच आजकल मस्तिष्क बहुत अव्यवस्थित रहता है। इसलिये कामकाज पत्रादि पढ़ना-लिखना बहुत ही कम हो पाता है। रोज ही ऐसी स्थिति होती है और घंटोंतक रहती है। उस समय न जगत् रहता है न जगत्की कोई वस्तु, न यह शरीर ही। अतएव जगत्का काम भी वहाँ बंद ही रहता है। तुम मेरे परतन्त्र शब्दपर आपत्ति करती हो, पर मेरी तो परतन्त्रता प्रत्यक्ष ही है। मैं तो इतना अधिक परतन्त्र हूँ जो कभी अपनी स्वतंत्रताकी बात सोच ही नहीं सकता। और यह परतन्त्रता मुझे प्रिय भी बहुत है।

बँधा बँधा मैं सदा बँधा हूँ अद्भुत एक किसी के पाश।
बँधा रहूँ मैं सदा और भी दृढ़ता यह मनमें अभिलाष॥
पद पद पर पलपलमें देता यह बन्धन नित नव उल्लास।
मेरी परतन्त्रता मधुर यह करती रहे सदा सुविश्वास॥

बस, मेरी इस निरूपाय स्थितिमें तुम चाहे आपत्ति करो या समर्थन—मैं तो विवश हूँ। नहीं तो भला समझदार समझा जानेवाला आदमी मूढ़की तरह चुपचाप किवाड़ बंद किये क्यों तथा कैसे बैठा रहता। गीताभवनमें हजारों नरनारियोंको ज्ञानोपदेश करके उनको तथा अपनेको धन्य क्यों न करता? पर परतन्त्र

आदमी बेचारा क्या करे? इसे तो किसीने बाँध रखा है—अपने कठिन पाशमें।

तुम्हारा मन क्यों घबराता है, क्यों तुम सबको छोड़कर भाग जाना चाहती हो? तुमने किसको पकड़ रक्खा है। जो उसको छोड़कर भाग जाओगी। जगत्के प्राणी पदार्थोंका कहाँ तुमपर बंधन है और कहाँ वे तुम्हारे बंधनमें हैं। तुमने जिसको पकड़ रखा है, उसे छोड़कर तो कहीं एक क्षणके लिये भाग नहीं सकता। भागना चाहोगी तो भी नहीं भाग सकती क्योंकि उसने भी तो तुमको प्रगाढ़ रूपमें पकड़ रखा है।

न तुम भाग सकती हो न वह। भागने लगे श्यामसुन्दर बिल्वमंगलका हाथ छुड़ाकर। बिल्वमंगल बोले अच्छा भागते हो बड़े वीर मर्द बने हो—

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात् कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद् यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते॥

× × × ×

हाथ छुड़ाये जात हौ निबल जानि के मोहि।
हृदय तें जब जाहुगे सबल बदौंगो तोहि॥

नहीं भाग सके और गोपी चाहनेपर भी श्रीकृष्णको नहीं भगा सकी अपने हृदय मन्दिरसे। इसको सोचो। कैसा मधुर बंधन है। यह बंधन जहाँ हो गया। वहाँ दूसरे बंधन रहते नहीं। प्रियतम श्यामसुन्दरका सेवक न तो किसी दूसरेका सेवक होता है न किसी दूसरेका सेवक बनकर उसका स्वामी होता है।

एकान्तमें जो मौज रहती है, वह दिनभर झंझटमें नहीं रहती यह तो ठीक है। पर वह तो सदा बड़ी भारी भीड़में भी एकान्तमें ही रहता है तथा एकान्तमें ही रखता भी है। दूसरा, उसे सुहाता जो नहीं।

बाबाके पास उधर गया नहीं। जाऊँगा तब तुम सबके नमस्कार तथा समाचार सुना दूँगा। तुम मन ही मन बहुत-सी बातें कहती रहती हो, सो ठीक ही है। वे मनमें रहकर तुम्हारी सारी बातें सुनते तथा सब तुम्हारे इच्छानुसार करते ही रहते हैं। फिर पत्रमें लिखनेकी क्या आवश्यकता है।

तुमने जुलूस देखकर मनमें उठे हुए भावकी बात लिखी सो ठीक ही है। तुम्हारा भाव सदा ही वंदनीय है। यह पत्र यहीं पूरा करता हूँ। आज कई पत्र लिखनेका मन है। फिर तुम्हारी वाली बातोंका क्या उत्तर दिया जाय। सयाना आदमी पागलको क्या समझावे?

---

(७३)

गीताप्रेस, २२-६-६१

सप्रेम यथायोग्य। तुम्हारा पत्र मिला था। मैंने उत्तर लिखा या नहीं। मुझको याद नहीं है। आजकल बाहरी चीजोंको भूला-सा ही रहता हूँ। तुम्हारी तबियत अच्छी होगी। 'नित्य-निरन्तर परम प्रेमास्पद श्रीभगवान्‌के पास रहो, उनको पास रखो। वे इतने अधिक प्रेमपरवश है कि अपनेको कभी प्रेमीके रसभरे बन्धनसे छुड़ाना तो चाहते ही नहीं, अपनेको नये-नये बंधनोंमें बाँध देना चाहते हैं। प्रेमीकी सेवा करनेमें उन्हें सुख मिलता है। प्रेमी उनकी की हुई सेवाको परम संकोचके साथ परन्तु ..... के साथ स्वीकार कर लेता है। इसलिये नहीं कि वह क्या पूजनीय है या उस पूजाकी उसे अपने सुखके लिये वाञ्छा थी। वह तो अपनेको सदा खोया हुआ प्रियतमकी सुखकी प्रतिमा बना रहता है। वे अपने सुखके लिये पूजा करे, सेवा करें, भोग लगावे, मान दे, पैर पकड़े या दुत्कारे मारे, ... मार दे, पद-पदपर तिरस्कार करे, ठोकर मार दे। जो कुछ भी करे सभी सहर्ष स्वीकार पर प्रियतमको सुख होना चाहिये। ऐसे प्रेमीकी सेवा करते हैं स्वयं भगवान् अपने सुखके लिये। प्रेमी यही मानता है कि बस एकमात्र यही मेरे प्रियतम हैं। श्रीचैतन्यने कहा है—

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मामदर्शनात् मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लंपटो, मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः॥

वह चाहे गले लगा लें या ठोकर मार दें या कभी भी दर्शन न देकर मर्ममें चोट पहुँचाता रहे, वह लंपट मनमें आवे सो करे पर मेरा प्राणनाथ तो वही है। दूसरा कोई नहीं। फिर प्रेमी प्रेमास्पद बन जाता है प्रेमास्पद प्रेमी। प्रेमास्पद ही वस्तुतः प्रेमीको अपना प्रेमास्पद बना लेता है। फिर तो वहाँ विलक्षण होड़ दृढ़ होते हैं।

लग जाती है होड़ परस्पर प्रेमी-प्रेमास्पदमें शुद्ध।
देते सुख-सम्मान परस्पर करते हठ अविरुद्ध विरुद्ध॥
तुम आरोगो, मैं लूँ पीछे अधरामृतयुत महाप्रसाद।
आता उसमें मुझे विलक्षण परम मधुरतम दिव्य स्वाद॥
मुँह में रख, रस ले, निज रस भर, दो तुम मुझे चबाया पान।
पाउँ मैं अति मधुर, मनोहर रस उसमें विरहित उपमान॥

तुम बैठो, मैं करूँ तुम्हारा निज हाथों सुन्दर शृंगार।
निज कर चुन सुरभित सुमनोंका गूँथ तुम्हें पहनाऊँ हार॥
मान करो तुम, तुम्हें मनाऊँ मैं, कर अति विनीत मनुहार।
तुम पौढ़ो, मैं पग चाँपूँ, मैं करूँ सुशीतल सुखद बयार॥

---

(७४)

७-७-६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम लोगोंका मीठा पत्र मिला। पढ़नेमें बड़ा रस आया। उत्तर क्या लिखूँ। दिमाग ही ठीक नहीं है। एक निर्मल रसमयी के उद्गार लिख रहा हूँ। यही पत्र समझ लेना। तुम्हारे पत्रका उत्तर फिर कभी दिमाग ठीक होनेपर।

कैसे देखूँ दूर मैं, जब प्रभु रहते पास।
करती मैं इससे सदा प्रभु-चरणोंमें वास॥
निरख रहे मुझको सदा प्रभु नित निज रस-नैन।
मेरे दृग भी लग रहें, भोग रहे सुख चैन॥
रस-वर्षा करते मधुर प्रिय मुझपर दिन-रात।
रहती रसमें मग्न, सब डूबे रहते गात॥
मिले नित्य रहते सभी-मन-मति, इन्द्रिय-अंग।
बिना किसी व्यवधानके, नित नव-नव रस-रंग॥
भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा मिटी, रही न देहासक्ति।
प्रियतममें नित बढ़ रही, अति निर्मल अनुरक्ति॥

---

(७५)

२२।७।६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। दिमाग खराब है क्या उत्तर लिखूँ? श्रीकृष्णकी प्रियतम राधाके प्रति कहे हुए शब्दोंका अनुवाद मात्र लिख देता हूँ। उसमें पत्रका उत्तर नया पत्र सब समझ लेना। ..... को पढ़ा सकते हो। ..... के प्रति तुम्हारे भाव बहुत सुन्दर है। वह चाहता है—उसने लिखा है कि भैया एकान्तमें सुख प्राप्त करे। मैं केवल यही चाहता हूँ वह आपका ही अंग होनेके

नाते उसका स्नेह कम नहीं होना चाहिये और मेरे मनसे उसके प्रति भाव बढ़ता रहे। उसका हृदय तो इतना अच्छा है कि वह चाहता है कि जल्दी-से-जल्दी बहुत ऊँचा उठ जाय। फिर अपने पत्रमें अपनी हीनता, प्रेमशून्यता, अयोग्यताकी बातें लिखी हैं जो सराहनीय हैं तथा प्रेम वृद्धिमें अत्यन्त सहायक हैं। प्रिय.....का पत्र आया था। इन सभीको तुम यथायोग्य स्नेह तथा सद्भावोंका दान देते रहना। ..... तो अपना है ही। जो अपनी ओर प्रेमकी भावनासे देखे वे सभी अपने तथा स्नेहके पात्र हैं। मैं इन सभीके शीलका ऋणी हूँ। भगवान्‌के शब्द ये हैं—

विषय-कामना, भोग-रति, इन्द्रिय-सुखका चाव।
नहीं तुम्हारे हृदयमें ये तीनों दुर्भाव॥
इह-परके सुख-भोग से तुमको सहज विराग।
मेरे सुखमें ही सदा पूर्ण नित्य अनुराग॥
छोड़ न सकता इसीसे प्रिये तुम्हारा संग।
अनुपम रस मिलता मुझे मधुर नित्य नव रंग॥
रहता प्यारी! सदा मैं बसा तुम्हारे पास।
क्षणभर भी हटता नहीं, करता नित्य निवास॥
हर स्थितिमें, हर समयमें शुचि आनन्द-निधान।
लेता प्रेमानन्द-रस स्वयं बिना व्यवधान॥
देख-देख तुम रीझतीं, करती मधु रस-दान।
तुम ही मेरी हो परम शुचितम सुखकी खान॥
बिका तुम्हारे हाथ मैं इन भावोंके मोल।
तो भी ऋण न चुका सका, कैसे तुले अतोल॥

---

(७६)

गीताप्रेस गोरखपुर, २२-७-६१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा मधुर, सुन्दर पत्र मिला। वे श्यामसुन्दर तो सदा तुम्हारे पास ही रहते हैं। पास रहनेवाले क्या संदेश भेजें? क्या समाचार दें और उनको पत्र भी क्या लिखा जाय। मीराने कहा था—

औरोंके पिया परदेस बसत है लिख लिख भेजूँ पाती।
मेरे पिया मेरे साथ बसत है मिली रहूँ दिन राती॥

जहाँ दिन-रातका बिना व्यवधान मिलन है वहाँ वियोग, विछोहका कोई प्रश्न ही नहीं। वहाँ केवल वाणीका आदान प्रदान ही नहीं होता। वहाँ तो सब अंग अवयव सदा मिले रहते हैं। मिले रहें—कबहूँ छूटै ना। और प्रतिक्षण प्रति अनुभूति नयी नयी रसभरी चाह उत्पन्न करती रहती है। बस, रस संसारकी रसमयी तरंगे उठती रहती हैं—अनवरत अनन्तकालतक असीम। इसका अनुभव किया करो।

---

(७७)

गीताप्रेस, २३-७-६१

सस्नेह यथायोग्य। तुम्हारा १८-७-६१ का मधुर पत्र मिला। मेरा स्वास्थ्य साधारण ठीक चल रहा है। दिमागका ..... बढ़ रहा है। आरामसे दिन कट जाते हैं।

सचमुच भगवान्‌की बड़ी कृपा है। उनकी कृपा तो हर परिस्थितिमें ही रहती है। मनसे प्रतिकूल परिस्थितिमें मनुष्य मानता नहीं। इससे दुःखी होता है। उसके पतिके हाथमें चूहा काट लिया इंजेक्शन लगते हैं, सो यह सब ऋण उतर रहा है। तुम उसको संभाल लेती हो इससे उसे बहुत आश्वासन मिलता है। अवश्य ही संभालना चाहिये—**बिपतिकाल कर सतगुन नेहा।**

तुमने मूक पुजारिनका पता बताया सो यह पता तो मुझको पहलेसे ज्ञात है। मैं स्वयं उसकी पूजाको—पूजामय हृदयसे पहचानता हूँ।

प्रियतम श्यामसुन्दरकी उसपर बड़ी प्रीति तथा अनुकम्पा है। मूकतामें जो आनन्द है, वह मुखरतामें नहीं है। मिलनानन्दमें तो मूकता स्वयमेव हो जाती है। मन आनन्द रस-सागरमें स्वयं निमग्न हो जाता है। बोले कौन? किससे बोले? क्या बोले? तुम भी तो यह अनुभव करती ही हो।

..... का दैन्य भी निश्चय ही परम सराहनीय है। तुम उसके चरणोंमें लोटना चाहती हो, वह तुम लोगोंके चरणोंमें। यह होड़ बड़ी अच्छी। तुमने अपना अनुभव लिखा—पहले भी लिखे थे। पढ़कर बड़ा आनन्द हुआ। अनुभूतियोंमें जो बातें आती है वे सब तो लिखी जाती ही नहीं क्योंकि वे अनुभवकी ही चीजें होती है। वाणीमें तो उन भावोंके व्यक्त करनेके लिये शब्द (सांकेतिक) होनेपर भी उनको व्यक्त करना उचित नहीं है। अतएव वह चीजें तो अनुभवमें ही रहती है और अनुभवमें ही रहनी चाहिये। संकेतसे मुझे कुछ अनुमान अवश्य हो जाता है। फिर यहाँ भी कुछ तो अनुभव होता ही है। इसीसे तुम्हारे लोगोंके अनुभवोंका अनुमान हो जाता है। अनुभव लिखती रहा करो।

---

(७८)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २९-७ ६१

सप्रेम हरिस्मरण। दुकान तथा ..... का २६। २७ तारीखका पत्र मिला। तुम लोगोंने मेरे जिस पत्रकी बात लिखी है। ऐसा तो कोई पत्र कभी लिखा मुझे याद नहीं है। पता नहीं कैसे क्या लिखा गया। उसमें ..... नाम क्यों नहीं था तथा किस-किसका नाम था यह भी पता नहीं। .....को एक पत्र तो लिखा याद है। पहुँचा कि नहीं पता नहीं।

तुमने पत्र लिखा कि ..... के लिखे हुए कुछ स्वप्न भेज रहा हूँ। पर इसमें तो एक भी नहीं मिला। भूल गये होओगे। अब भेज देना।

दस्तावेज भैया नया क्या लिखना है। वह तो लिखा-लिखाया है—कल तो रातको प्रायः १० बजे तक बाह्य चेतना नहीं थी। आज दिन भरसे ठीक है।

तुम लोग प्रसन्न होओगे। उस समय कुछ भी लिखनेका मन नहीं कर रहा है। बड़ी ही अधिक ऐसी समीपताका अनुभव हो रहा है। जहाँ लिखनेकी परिस्थिति नहीं रह जाती।

---

(७९)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १८-११ ६१

सप्रेम हरिस्मरण। मैंने तुम्हें पत्र नहीं लिखा सो मेरा तो दिमाग खराब हो गया। पर तुमने क्यों नहीं लिखा। एक पत्र ..... का आया था सो तो आता ही दूसरा ..... के बाबत। मुझे तो तुमने पत्र लिखा ही नहीं। तुम्हारा थोड़ा ही माथा खराब हुआ था या यह समझ लिया कि चलो, पत्र आते तो बदलेमें लिखने-पड़ते। अब न आते हैं न लिखने पड़ते हैं। खैर, तुमलोग न याद करो मैं तो भूल सकता नहीं। जब-जब चेतना होती है, तुम लोगोंकी मीठी-मीठी याद आती रहती है। कई बार ऐसा भी लगता है। मानों तुम लोगोंमेंसे कभी एक-दो कभी ज्यादा लोग मेरे समीप ही हो। तुम लोगोंके लिये भावमें जो उद्गार उठते हैं उसका एक पूरा नमूना यह है—

तुम सुखी रहो, संतृप्त रहो, संतुष्ट रहो, नित निर्विकार।
उमड़े उरमें निर्मल पावन रस-सुधा-सिंधु अविरत अपार॥
तुम डूबे रहो नित्य उसमें बन स्वयं रसामृत-सुखागार।

देखो प्रभुका ही नित नूतन अति मधुर रूप सौन्दर्य-सार॥
रह जाय न कुछ भी अन्य भाव, प्राणी-पदार्थ जगके असार।
घुल-मिल जाओ प्रभुमें अनन्त, कर देश-कालकी अवधि पार॥

और क्या लिखूं? मैं तो आजकल अधिकांश समय बाह्य चेतना शून्य-सा ही रहता हूँ। उन लोगोंको, दिमागने सुविधा दी तो कल पत्र लिखनेका विचार है।

---

(८०)

गीतावाटिका, गोरखपुर, २४-१२-६१

सप्रेम हरिस्मरण। मैं उत्तर नहीं लिख सका। ..... लोगोंकी स्मृति तो सदा मनमें रहती ही है। पत्र न लिख सकूँ यह दूसरी बात है। एक पद लिख रहा हूँ। इसीकी तीनों नकल कर लेना और अपना उत्तर इसीसे पा लेना। यह बड़े ही मधुर तथा उच्च प्रेम एवं समर्पणमें और स्वीकृतिके उद्गार हैं। राधाके शब्दोंमें, वे अपनी एक अंतरंग सखीसे कहती हैं—

मिले रहते मुझसे दिन रात। कराते-करते मन की बात॥
न करने देते कुछ भी और। लगे रहते पीछे सब ठौर॥
स्वप्नमें भी न छोड़ते साथ। वहाँ भी पकड़े रहते हाथ॥
तुड़ाकर जगके सब सम्बन्ध। बाँधकर निज ममता के बन्ध॥
दानकर अपना रसमय प्यार। नचाते निज इच्छा-अनुसार॥
प्राप्तकर मैं अपूर्व आनन्द। अतीन्द्रिय निर्मलतम स्वच्छन्द॥
न कुछ भी भाता मुझको अन्य। अनुग मैं रहती नित्य अनन्य॥
स्वयं भी रहते नहीं स्वतन्त्र। बने नित मेरे ही परतन्त्र॥
दुःख सुख रहे न पृथक् नितान्त। हो गया भेद-भाव सब शान्त॥
इसीसे मेरे सुख के हेतु। उड़ाते दिव्य प्रेमका केतु॥
स्वयं बन मेरे मनकी मूर्ति। प्रकट कर मधुर नित्य नव स्फूर्ति॥
विलक्षण देते नित रस-दान। स्वयं भी करते शुचि रस-पान॥
अनोखी उनकी लीला सर्व। दूर कर सारे मिथ्या गर्व॥
खींचती नित अपनी ही ओर। सदा रखती आनन्द-विभोर॥

---

(८१)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २८-१२-६१

सप्रेम हरिस्मरण। बहुत दिनोंके बाद तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्नता हुई। तुमने मुझे विशेष होनेके भयसे नहीं लिखा सो यह तुम्हारी उदारता है। मेरे सुखकी इच्छासे तुम्हारा यह सोचना उचित ही है पर मुझे तुम्हारे पत्रसे विक्षोभ न होकर सुख ही मिलता है। तुम्हारा आपरेशन कब तक होनेवाला है। मनमें घबराना नहीं।

तुमने तीन चार बड़े सुन्दर स्वप्न लिखे। इसका आशय ही समझो कि तुम्हारे हृदयमें श्रीश्यामसुन्दरका नित्य निवास हो गया है, अतएव स्थानमें भी उन्हींका अधिकार बना रहता है।

चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात।
हृदय ते वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥

विभिन्न लीलाओंके रूपमें वे लीलामय ही तुम्हारे सामने आते हैं और तुम्हें लीलानन्द प्रदान करते हैं।

..... बहुत प्रसन्न है। मेरा दिमाग ठीक न होनेसे वह रोज तो मेरे पास नहीं आ पाता, परन्तु मिलता रहता ही है। उसके भाव बहुत अच्छे है। स्वास्थ्य भी ठीक बताता है। देखनेमें भी पहलेसे अब बहुत अच्छा लगता है।

मेरा स्वास्थ्य ठीक है।

तुम लोगोंका भेजा हुआ प्रेम प्रसाद मिला उससे प्रतिदिन ही भोग लग रहा है।

---

(८२)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २८-४-६२

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। इस प्रकारका सुन्दर मधुर आयोजन करके तुम लोगोंने दिव्य सुख प्राप्त किया तथा दिव्य सुख वितरण किया। यह बहुत ही श्रेष्ठ तथा आदर्श कार्य हुआ। तुम लोगोंपर श्रीराधामाधवकी बड़ी कृपा है। जो इस प्रकारकी परम मंगलमयी वृत्ति एवं प्रवृत्ति होती है। तुम लोग सभी धन्य हो। तुम्हारा यह कार्य मुझे बहुत प्रिय लगा। समय-समयपर ऐसा करते रहना चाहिये। इतना ध्यान रहे कि लोग इसको तमाशा न बना लें। यह तो परम पवित्र साध्य वस्तु है।

पर इस बाह्य महोत्सवके साथ ही नित्य आभ्यान्तरिक महोत्सव चलना चाहिये। इसमें तो समय, स्थानकी सीमा तथा अवधि है। वह महोत्सव नित्य निर्वधि चलना चाहिये। श्रीराधामाधवके नित्य महारासका महोत्सव रहना चाहिये। मन उनके स्वरूप सौन्दर्य सुधाका पान करे। आँखे उनके रूप-सौन्दर्य मदसे सदा छायी रहे, अंग-अंग उनका मधुरतम आलिंगन सुख-लाभ करता रहे। हृदय उनके साथ मिला रहे, जीभ निरन्तर उनके गुणनाममृतका पान करे। कोई समय कोई अवस्था, कोई स्थान ऐसा न हो, जहाँ जब हमारे प्राणप्रियतम—अगाध आनन्द सिंधु अपने अंदर हमें न लिये रहें। हम सदा डूबे रहें उनमें और ऊपर लहरें बनकर छलकते भी रहें उन्हींमें ही।

---

(८३)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ११-२-६३

सप्रेम हरिस्मरण। लंबे समयके बाद तुम्हारे शुभ पत्रके दर्शन हुए। बड़ी प्रसन्नता हुई। तुम्हारे पत्रके प्रत्येक शब्दमें विशुद्ध आत्मीयताके मंगल दर्शन हुए। शीघ्र ही तुम लोगोंसे मिलनेका मेरे मनमें बड़ा औत्सुक्य प्रलोभन तथा चाव था। यह बात केवल ऊपरसे नहीं लिखता। हृदय भी है और हृदय हृदयका साक्षी है पर '**करी गोपालकी सब होइ**'। उस परम स्वतन्त्रकी इच्छाके अनुसार ही सब होता है। '**जो अपनो पुरुषार्थ मानत अति झूठो है सोय।**' व्याह तो एक उपकरण था। वास्तवमें तुम लोगोंके मिलनका ही लोभ था और विवाहके लिये आना होता नहीं, इससे ..... का निमित्त था। पर विचार ही नहीं रह गया। मैं मनसे आत्मासे वहाँ रहूँगा। विश्वास होगा तो उसका अनुभव भी होगा। मुझे तो पीछे लोगोंके कहनेसे पता लगा—दो एक विवाहोंमें, दो-एक उत्सवोंमें और दो एक ऑपरेशनोंमें मैं गया नहीं था पर उन लोगोंने (अपने भावोंसे) मुझे प्रत्यक्ष देखा, बातचीत की और एक आध जगह खानपानादि भी हुआ। सो, मेरे शरीरसे न आनेपर भी, संभव है-तुमलोगोंका भाव तुम्हें मेरी उपस्थितिका अनुभव करा दे और तुमलोग यह मान भी लो कि भाईजी आये हैं और सब काम कर रहे हैं।

मैं नहीं आ सका, उसका मुझे स्वयं बड़ा परिताप है। तुम लोगोंके लिये नहीं, अपने सुखके लिये ही मैं आना चाहता था और अब इस सुखसे वञ्चित होनेका मुझे स्वयं बड़ा खेद है। मैं तो तुम लोगोंको दुःख ही देता हूँ। पर तुम उसे

सहकर मुझे अपनाये रहते हो—यह तुम्हारा शील सौन्दर्य है। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। शेष भगवत्कृपा।

(८४)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ३०। ७। ६५

सस्नेह हरिस्मरण। तुम्हारा एक पत्र २५ को मिला था। दूसरा कल मिला। मैंने एक पत्र लिखा था, कैसे नहीं पहुँचा। आजकल पत्रोंमें बहुत देर हो रही है। डाकघरोंमें काम ठीकसे नहीं होता है।

भगवान्‌के लिये मनका व्यथित होना, जलना यह तो भगवत्कृपा तथा परम सौभाग्यके लक्षण हैं। कभी चैन न पड़े—पर इसमें जो भगवान्‌की मधुर स्मृति होती है वह प्रचण्ड ज्वालामें भी कितनी अनन्त शारदीय सुधांशुकी शीतलताको लिये होती है। यह सुख भी तो तुम्हें होता है। फिर तुम्हारे पास तो भगवान् रोज आते हैं, जगाते हैं। दीखते नहीं, पर अनुभव होता है। मौन रहते हैं पर अपना आना तो तुम्हें बतला ही देते हैं। यह जब हो रहा है तब वे तुमसे दूर कहाँ हैं? उनसे प्रार्थना करो—उपेक्षा मत करो, सोओ मत, उनसे बोलनेका आग्रह करो—वे बोलेंगे भी।

तुम्हारे जैसी वेदना किसी बड़े भाग्यशालीको ही होती है। संसारके भोगके लिये सब पीड़ित व्यथित रहते हैं। तुम्हारी पीड़ा-व्यथा भगवान्‌के लिये है। यही तो मानव जीवनका परमफल है।

मुझमें कोई शक्ति तो है नहीं। भगवान् स्वतंत्र हैं। पर जहाँतक मुझसे बन पड़ता है। मैं प्रयत्न करता हूँ। तुम्हारे लिये प्रायः रोज ही कुछ-न-कुछ किया करता हूँ। वे मुस्कुराते रहते हैं। वे खेलते हैं—खेलते रहें। उनकी स्मृति सदा सतत बनी रहे। तुम जरा भी निराश, उदास मत होना। तुम उनके समीप-समीप पहुँच रही हो। वे तुम्हें तपा-तपाकर परिशुद्ध कर रहे हैं। प्रसन्न रहा करो।

मेरे बीचमें ज्वर हो गया था। इसीसे पत्र नहीं लिख सका। यों भी मैं पत्र बहुत कम ही लिखा करता हूँ। शेष भगवत्कृपा।

---

(८५)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १५। ८। ६६

तुम्हारे कई पत्र मिले। तुम मेरे बुरे स्वभावसे अभी परिचित नहीं हो। मुझे बहुत संत स्वभावकी समझती हो तथा बड़ी-बड़ी आशा करती हो। वास्तवमें मेरा स्वभाव बड़ा दुष्ट है। पत्र व्यवहारमें तो अत्यन्त ही निराशाजनक। मैं अपना यह दोष जानता हूँ, पर सुधार नहीं पाता। यह और भी कमजोरी है। महीनेमें एक पत्र लिख देता हूँ तो लोग बहुत समझते हैं। बीसों पत्र इकट्ठे हो जानेके बाद एक पत्र कभी लिख पाता हूँ। जो लोग मेरे इस स्वभाव दोषसे परिचित हो गये हैं —वे तो बुरा नहीं मानते। नहीं तो, बुरा माननेको बाध्य-सा होना पड़ता है और मेरे पास कोई उपाय नहीं—सो बेटी! मेरे इस स्वभाव दोषको समझकर सदा सर्वथा प्रसन्न रहना। मैं मनसे नहीं भूलता तथा मन-ही-मन संदेश भी देता हूँ, पत्र भी लिखता हूँ। पर कागज-कलमसे अधिक पत्रकी आशा करके तो निराश ही होना पड़ता है। यही बात है कि पास रहकर भी मैं प्रायः नहीं मिलता। १५-१५, २०-२० दिन निकल जाते हैं, मैं बोलता नहीं, समय नहीं देता। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं अनादर करता हूँ या प्यार नहीं करता। मेरा सात्विक प्रेम तो सर्वथा निष्काम होनेके कारण उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहता है। पर बाहर कभी-कभी बड़ा रूखापन भी दिखायी देता है। इस बाहरी बर्तावपर ही मुझे कसने पर तो निराश ही होना पड़ेगा। तुम मुझे भीतरसे देखो, समझो। तभी संतोष कर सकोगी। भगवान् श्रीराघवेन्द्रकी तुमपर अनन्त कृपा है। उनकी कृपा तुमपर बरस रही है। उनके दर्शनके लिये तुम जो तरस रही हो यह भी उनकी बड़ी कृपा है। तुम्हारे साथ उनका जो खेल हो रहा है ऐसा सहजमें नहीं होता। तुम्हारा बहुत बड़ा सौभाग्य है जो तुमपर इतनी कृपा है। तुम्हारे साथ जो कुछ भी हो रहा है, मुझको तो उस सबमें उनकी अनन्त कृपा दिखायी दे रही है। वे तुमको जला नहीं रहे हैं। तुम्हारी अनन्त कालतक रहनेवाली अनन्त भीषण जलनको सहज ही जलाकर रहे हैं। शीतल परम शान्तिमय अपने दिव्य चरणारविन्दकी ओर खींच रहे हैं। तुम्हारे सौभाग्यको बड़े-बड़े साधक सराहते हैं। अतः तुम साधनामें लगी रहो—अत्यन्त प्रसन्नताके साथ।

मुझे साधारण हल्का-सा ज्वर रहता है। वैसे कोई भी खास बात नहीं है। केवल थोड़ी कमजोरी महसूस होती है। तुम चिन्ता मत करना।

(८६)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २३। १०। ६६

तुम्हारे दो पत्र और मिल गये। मैं बहुत कार्य-व्यस्त रहता हूँ। विशेषांकके काममें दो दिन तो रातको केवल दो-दो घंटे सो पाया। विगत रात्रिको ४ घंटे सोया।

तुम इतनी व्यथित और बेचैन क्यों रहती हो? भगवान् तो सदा तुम्हारे पास रहते हैं। उनकी संनिधिका अनुभव करो तथा पद-पदपर पल-पलमें प्रसन्न होती रहा करो। भगवान्‌की व्यथा-पीड़ा अत्यन्त दिव्य आनन्दायक हुआ करती है। जगत्‌की व्यथा दुःखदायिनी होती है क्योंकि उसमें मोह रहता है। मोह सदा प्रमाद कराता है और प्रमादसे दुःखका उदय होता है। भगवत्प्रेमसे भगवद्दर्शनकी जो अदम्य लालसा होती है और अदर्शनमें जो असह्य वेदना-व्यथा होती है। उस वेदना-व्यथामें एक परम सुखसुधाका समुद्र लहराता रहता है—जैसे भगवान् परस्पर विरोधी गुण धर्माश्रय हैं वैसे ही भगवान्‌का विरह भी नित्य-निरन्तर एक ही साथ आत्यन्तिक सुख तथा परम पीड़ाका आश्रय है। यह जागतिक मोहजातीय पीड़ा नहीं है। प्रेमजातीय रसानन्दमयी मधुर-मधुरतम पीड़ा है जो व्यथाके साथ ही परम सुख भी प्राप्त कराती रहती है। यही होना चाहिये। कहीं मोह न हो जाय। सावधान रहना है। भगवान् जैसे सदा हैं, वैसे ही भगवान्‌के दर्शन भी सदा सभी देशकालमें हो सकते हैं। दर्शनकी उत्कण्ठाके साथ ही भगवत्कृपामें, तथा दर्शन होते हैं—इसमें परम विश्वास होना चाहिये। किसीके भी कहने-सुननेपर अश्रद्धा-अविश्वास नहीं करना चाहिये।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। आजकल कार्य व्यस्तता बहुत अधिक है। इससे अवकाश शरीरके आरामका बिल्कुल नहीं मिलता और उसकी आवश्यकता भी नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

---

(८७)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २७। १०। ६६

तुम्हारे कई पत्र मिले। तुम्हारे भाव सुन्दर हैं। भगवान्‌की कृपा है। पर सदा-सर्वदा केवल श्रीभगवान्‌का ही स्मरण रहे, भगवान्‌की ही अनुभूति

हो। भगवान्‌में ही प्रेम हो। कहीं भी, किसी भी कारणसे, मोहवश सांसारिक प्रपञ्चका सम्पर्क मनमें बिल्कुल न रहे। संसार कहीं-कहीं—भगवान्‌के नामपर भी मनमें आ जाता है अतएव बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। पता ही नहीं लगता—हम मानते हैं—केवल भगवान्‌से हमारा सम्पर्क है, पर गहराईसे देखनेपर पता लगता है कि छिपकर भगवान्‌के स्थानपर भोग बैठ गया था इसलिये बड़ी सजगताके साथ केवल भगवान्‌को ही शरीर, मन, वाणीसे सदा पकड़े रखना चाहिये। भगवान् यदि दर्शन देते हैं तो बड़ा सौभाग्य है, उनकी महती कृपा है, न देते हैं तो उनकी मर्जी—पर उनकी मधुर पवित्र स्मृति कभी न छूटे, क्षणभरके लिये भी नहीं। उनकी अमिलनकी स्थितिमें भी उनकी स्मृति महान आनन्ददायिनी होती है। वहाँ दुःखका तो कहीं लेश भी नहीं रहता। दर्शनकी तीव्र इच्छा रहती है उसमें व्याकुलता भी तीव्र होती है पर उस व्याकुलताकी अग्निमें सदा सर्वदा अनवरतरूपसे उनकी मधुर स्मृतिकी अत्यन्त शीतल सुधाधारा प्रवाहित होती रहती है। इससे उस अदर्शनकी व्यथामें भी परमानन्दकी उपलब्धि होती रहती है। यही भोगवासनाकी व्यथा और भगवान्‌के अमिलनकी व्यथामें महान अन्तर है। अतएव तुम देखती रहना—अपने हृदयको—उसमें इस मधुर सुधा धाराका कोटि-कोटि चन्द्र-सुशीतल प्रवाह निरन्तर बह रहा है या नहीं।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वस्थ मनुष्य वही है जो अपने असली 'स्व'—भगवान्‌में स्थित है। शेष तो सभी अस्वस्थ हैं।

---

(८८)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १८। ३। ६७

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र कल मिला। तुम्हें बहुत ही विशेष आनन्दकी अनुभूति हुई सो बड़े ही संतोषकी बात है। भगवान् तुम्हारे हैं, तुम्हारा हृदय जब उनका आनन्द पानेके लिये अतिशय आकुल होता है, तब वे भी आकुल हो जाते हैं और अपने आनन्दकी उपलब्धि करा देते हैं। उनकी ओरसे सदा ही इसकी तैयारी है, वे नित्य ही समुत्सुक हैं। भक्तके हृदयको आनन्द प्रदानकर आनन्दरसका आस्वादन करनेके लिये। हमारी ओरसे वैसी तैयारी नहीं होती, इसीसे विलम्ब हो जाता है। तुम्हें फिर भी वैसे ही और

उससे भी अधिक दिव्य आनन्दकी उपलब्धि हो सकती है। तुम बस, अपनी सारी इच्छाओंको सर्वथा छोड़कर एक यही इच्छा बना लो और उसके लिये बिना किसी शर्त अपनेको उसके चरणोंपर छोड़ दो।

कल सबेरे ८:३० बजेसे शामको ४:३० बजेतक मुझे बाह्य ज्ञान नहीं रहा। बाहरी सारी क्रियाएँ बंद रहीं। आज भी कुछ-कुछ असर है। तुम प्रसन्न रहना। शेष भगवत्कृपा।

---

(८९)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ३१। ८। ६७

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे तीन पत्र मिल गये। मैं आजकल प्रायः पत्र लिखता ही नहीं। तुम्हींको कभी-कभी लिखता हूँ। जितना लिख सकता हूँ, मेरी स्थिति देखकर तुम्हें उतनेमें ही संतोष करना चाहिये। शरीर अस्वस्थ रहता है। दर्द तो प्रायः नहीं है पर मन्द ज्वर निरन्तर रहता है और कमजोरी तो कुछ बढ़ी ही है साथ ही मस्तिष्कीं समस्या भी बढ़ रही है। बाह्य चेतना बहुत कम रहती है। इससे आजकल अधिकांश समय सर्वथा अकेला कमरा भीतरसे बंद किये रहता हूँ। सबेरे तुमसे फोनपर बात हुई। उस समय सावित्रीकी माँ नहीं थी नहीं तो टेलीफोन भी बाहर ही रहता है। टेलीफोनपर मेरे न मिलनेकी बात तभी कही जाती है, जब बाहरी चेतना नहीं रहती। वैसे मैं सर्वथा स्वस्थ हूँ। किसी भी बाहरी व्यक्तिसे मेरी स्व-स्थतामें कोई कमी नहीं आती।

राधाष्टमीका उत्सव न मनानेका ही निश्चय है। सबको सूचना भी दे दी गयी है, जिनके नियम हैं ऐसे थोड़ेसे लोगोंको छोड़कर और ज्यादा लोग नहीं आवेंगे ऐसी संभावना है। कोई भी तैयारी नहीं की जा रही है।

मेरा दिमाग इधर कुछ ऐसा हो गया है कि मैं अकेले रहनेके सिवा किसीके भी पास आ जानेपर कुछ बेचैनी-सी बोध करता हूँ। सोचता हूँ कोई न आ जाय। अतएव तुम्हें भी इसीसे नहीं बुलाना चाहता। तुम वही मंगसिरमें (मार्गशीर्ष) आना। अभी तो वहीं रहो। वैसे मैं तुम्हारे पास ही रहता हूँ। ऐसा अनुभव करती रहो। मनमें सदा बहुत-बहुत प्रसन्न रहा करो। विषाद, दुःख तुमको क्यों होने चाहिये? ये तो सब तामसिक विचार हैं। भगवान्‌के

साथ चित्तका संयोग होनेपर तो नित्य-निरन्तर भगवान्‌के आनन्दसागरमें ही डुबकियाँ लगती रहती हैं और नया नया आनन्द—विशुद्ध आनन्द प्राप्त होता रहता है जिसकी तुलना संसारके किसी भी आनन्दसे नहीं हो सकती।

सच्ची बात तो यह है कि प्राकृतिक किसी विषयमें, किसी भी भोगमें आनन्द है ही नहीं। वह तो मिथ्या मोह है। आनन्द तो एक मात्र आनन्दसमुद्र भगवान्‌में ही है।

---

(१०)

गीताप्रेस, गोरखपुर ८। ९। ६७

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। तुमने पद-कीर्तन श्रवणके समयकी अपनी स्थितिका तथा ध्यानके विलक्षण आनन्दका वर्णन लिखा उसे पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी प्रकार तुम यदि इच्छा करोगी तो श्रीराधाष्टमीके दिन भी तुमको विलक्षण आनन्दकी अनुभूति होगी। एक राधाष्टमी क्यों—प्रतिदिन ही तुम भगवान्‌के रसका आनन्द ले सकती हो—यदि तुम्हारी तीव्र भावना हो और तुम यह निश्चय करो कि भगवान् नित्य-निरन्तर प्रतिक्षण तुम्हारे साथ रहते हैं। तुम जब चाहो, तभी जितने समयतक करो उतने समयतक अपने मनके अनुसार उनकी पवित्र पूजा कर सकती हो। खाते-सोते, बैठते-चलते प्रत्येक समय तुम उनके अपने साथ ही वैसे ही आनंदपूर्वक सारे कार्य करती देख सकती हो—उनका 'सर्वांग-स्पर्श कर सकती हो, उनकी मधुरवाणी सुन सकती हो, उनके दिव्य दर्शन पा सकती हो, उनका प्रसाद चख सकती हो, उनके दिव्य अङ्ग-सुगन्धका आनन्द प्राप्त कर सकती हो।

मेरा शरीर अभी वैसे ही चल रहा है। दो दिनोंसे एक क्वाथ शुरू किया है। इससे आशा है शायद ज्वर छूट जाय। यह भी भगवान्‌का मंगलमय स्पर्श ही है। हरेक रूपोंमें वही तो आते हैं, वे स्वतंत्र हैं किसी भी नामरूपसे अपना दर्शन दे—हैं तो वे ही सदा, सर्वत्र।

(९१)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २६। ९। ६७

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे तीन पत्र मिल गये। कल तुमसे फोनपर बात हुई थी। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरा शरीर वैसे ही चल रहा है। पाञ्चभौतिक शरीरका यही स्वरूप है। इसके लिये जरा भी चिन्ता नहीं होनी चाहिये। मन आजकल अत्यन्त उपरत है। स्थिति ऐसी है कि सच्चे अर्थमें मैं दुनियाके लिये मानों मर गया हूँ। सर्वथा बेकाम हो गया हूँ। यह स्थिति इधर इतनी बढ़ रही है कि मैं जगत्‌की बातोंको सुनना, समझना तक भूला जा रहा हूँ। लोग अपनी-अपनी समस्याएँ लाते हैं। वे उनकी दुनियामें बड़ी महत्वकी भी हैं पर मैं उनमें कुछ देख ही नहीं पाता, इससे किसको क्या सलाह दूँ, क्या समझाऊँ? जिस स्तरपर मेरा मानस पहुँच रहा है, उस स्तरपर इस दुनियाका कोई महत्व ही नहीं है। फिर मैं किसका कौन-सा काम कैसे करूँ? इसलिये होना तो यह चाहिये कि लोग मुझे निकम्मा या पागल समझकर मेरी आशा छोड़ दें और मुझे अकेला पड़े रहने दें। पर यह बात भी न कोई समझ पाते हैं, न मैं समझा ही पाता हूँ। परिस्थिति अपने-आप ही इस स्थितिका प्रत्यक्ष करा देगी तब अपने आप ही लोग मुझे छोड़ देंगे।

इसीसे मैं आजकल बहुत अधिक उपरत-सा सर्वथा प्रायः अकेला ही रहता हूँ। कामकाज भी प्रायः बंद है। शेष भगवत्कृपा।

---

(९२)

गीताप्रेस, गोरखपुर, २७। १०। ६७

तुम्हारे बहुत-से पत्र मिले। मैं पत्र नहीं लिख पाया। इसका मुझे स्वयं बड़ा संकोच है। रोज ही लिखनेकी सोचता हूँ पर कोई-न-कोई काम आ जाता है, आजकल विशेषांकका काम करना पड़ता है। मनसे तो मैं इधर तुम्हें कई पत्र लिख चुका हूँ और वे इतने सुन्दर तथा दिव्य थे कि वैसे पत्र कागजपर कलमसे लिखे ही नहीं जा सकते। तुम्हारी दैन्य भावना, तत्सुख-सुखी भावना बहुत ही सुन्दर है। मैं तुम्हारी व्यथाका अनुभव करता हूँ। तुम मनमें नित्य दृढ़ निश्चय रखना कि विशुद्ध प्रेम सदा बढ़नेवाला होता है। वह कभी भी घटता-रुकता नहीं। उसके पवित्र प्रवाहमें उत्तरोत्तर अधिकता तथा

सरसता होती है। अवश्य ही वह कभी शान्त होता है और कभी उछलता हुआ। तुम बहुत-बहुत प्रसन्न रहना। शरीरके दूर-निकटका कोई महत्व नहीं है। अत्यन्त समीपतामें भी बहुत दूरी रह सकती है और बहुत दूरीमें भी व्यवधान रहित नित्य मिलन, नित्य निकटता। अत्यन्त मधुर, अत्यन्त सुखस्वरूप तथा अत्यन्त रसमयी।

..... की सगाईका नेग हो गया है। वे लोग कानपुरसे यहाँ आये थे। विवाह १८ नवम्बर मगसर बदी १ को गोरखपुरमें ही होनेकी बात है। विवाहमें अपने दहेजके रूपमें कुछ भी लेनेका विचार नहीं है। विवाहमें वे अपनी लड़कीको कुछ भी दे सकते हैं। उसपर प्रतिबन्ध नहीं है। हरे-भरेमें फल लड्डू लिये गये हैं—रूपये नहीं आंगीमेवा, कुआंरी मिठाई, दातकी तीलें आदि कुछ नहीं। पहरानीमें सगुनके रूपमें ११ रु० या १०१ रु० और कुछ नहीं। मुकलावेमें सासूकी तीलें नहीं। सगाईमें १।) .....के हाथमें दिया गया। कोई आडम्बर नहीं किया गया। आनेवाले बड़े लोगोंको पान-सुपारी दी गयी और इस खर्चके बदले एक हजार रूपये बाढ़-पीड़ितोंकी सहायतामें दिये गये। तुम बहुत प्रसन्न रहना।

---

(९३)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १४। ७। ६८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला था। दो बार तुम्हारी फोनकी लाइन आयी बताते हैं। पर दोनों ही समय मेरा दिमाग खराब था। इससे बात नहीं हो पायी। पीछे पता लगा। इधर तुम्हारे जानेके बाद दिमाग बहुत अधिक खराब रहने लगा है। शरीर भी शिथिल है ही।

संसारके दृश्य सब काल्पनिक हैं—इनकी जगह एकमात्र श्रीश्यामसुन्दरकी ही नित्य सत्य चिन्मयी सत्ता है! यहां वृत्ति चेतनाकी दशामें प्रायः रहती है पर काल्पनिक रूपसे इसमें संसारकी सत्ता रहती है और भगवान्‌की नित्य सत्ताकी अनुभूति भी वृत्तिजनित ही है। यह भी कमी ही है। चेतना न रहनेकी अवस्थामें वृत्ति ही नहीं रहती है।

आजकल यही भाव रहता है कि संसारकी सत्ता रहे ही नहीं। केवल और केवल भगवान् ही रहें। इसलिये पत्र व्यवहार तो बंद है ही। 'कल्याण'का

काम बड़ी कठिनतासे हो पाता है। मिलना-जुलना बातचीत प्रायः बंद है। बड़ी कठिनाई होती है मिलने-जुलने तथा बात करनेमें। भूलें भी हो जाती हैं जो दूसरोंके मनोंमें प्रकार भेदसे क्षोभ पैदा करती हैं। इसलिये भी मिलने-जुलने तथा बातचीत करनेका मन नहीं करता है।

तुम्हारा एक पत्र मिला था। तुम्हारे भाव बड़े पवित्र हैं। तुम्हारे पवित्र विचारोंके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा है तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। माताजी आयी हों तो उनसे मेरा यथायोग्य कहना।

तुम आनेकी जल्दी न करना। स्वास्थ्य सुधारना। माँकी सेवा करना। मेरे मस्तिष्ककी तथा स्वभावकी जो स्थिति है, उसे देखते ऐसा अनुमान होता है कि यहाँ तुम निराश ही होगी। इसलिये भी दूर रहना अच्छा है। शेष भगवत्कृपा।

---

(९४)

गीताप्रेस, गोरखपुर, १५। ९। ६८

सप्रेम हरिस्मरण। आज तुमसे फोनपर बात हुई तथा तुम्हारे दो पत्र १० तथा १२ तारीखके कल और आज मिले। वातावरणका कुछ प्रभाव तो होता ही है। कलकत्ते रहनेसे संसार प्रपञ्चका स्मृति होना स्वाभाविक है परन्तु मनमें यदि भगवान्‌की ओर विशेष आकर्षण हो; भगवान् ही (एकमात्र न हो तो कम-से-कम) सर्वोत्तम, सबसे अधिक आवश्यक तथा सर्वाधिक प्रिय अपनी वस्तु हों तो संसारी वातावरणका कुछ भी गहरा तथा अधिक स्थायी प्रभाव नहीं पड़ेगा। लहर-सी आयेगी और चली जायगी। सो भी ऊपर-ऊपर। चित्तके अन्तरतम प्रदेशमें तो भगवान् इतने छाये रहेंगे कि वहाँ दूसरेका प्रवेश किसी तरह कभी भी क्षणकालके लिये भी नहीं हो सकेगा। सूर्यके सामने अन्धकार नहीं जा सकता, वैसे ही।

शरीर कहीं भी रहे—वह तो प्रारब्धके अधीन है। मनको केवल और केवल भगवान्‌में रक्खो। या कम-से-कम मुख्य रूपसे मनकी धारा केवल भगवान्‌की ओर ही—भगवान्‌में ही नित्य प्रवाहित रहे। संसारकी कोई स्मृति तरंग रूपसे बाहर-बाहर कभी भले ही आ जाय। शरीरपर अपना अधिकार

नहीं मानना चाहिये—उसे प्रारब्धपर छोड़ देना चाहिये और मनपर अपने भगवान्‌को छोड़कर दूसरे किसी भी प्राणी-पदार्थ, भाव-विचारका क्षण भरके लिये अधिकार होने नहीं देना चाहिये। वह तो केवल उन्हींकी वस्तु रहे।

मेरा स्वास्थ्य ठीक है। कुछ थकावट मालूम होती है। दिमाग ज्यादा खराब रहता है। काममें भी लगे रहना पड़ता है; सो नहीं पाता पूरा। सत्संगमें कभी जाता हूँ, कभी नहीं। बंगालियोंका अखण्ड कीर्तन बड़ा सुन्दर चल रहा है, एक महीनेके लिये। और सभी लोग प्रायः चले गये हैं। शेष भगवत्कृपा।

---

(१५)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ३। १०। ६८

सप्रेम हरिस्मरण। कल तुम्हारे १७, २१, २३, २४, २८ और २९ के लिखे हुए छः पत्र एक साथ मिले और आज ता० २६ का लिखा एक पत्र मिला। कल तुमसे फोनपर बात हुई थी यद्यपि स्पष्ट सुनायी नहीं दे रहा था और उस समय मेरा दिमाग भी पूरा ठीक नहीं था। इससे खुलकर बात नहीं हो सकी।

तुम्हारे यहाँ शरद पूर्णिमाके दिन कार्यक्रम होनेमें कोई अड़चन नहीं होगी। तुम्हारे घरवाले प्रसन्न हैं—वे चाहते हैं—यह बहुत आनन्दकी बात है। किसी तरह सभी लोग भगवान्‌की ओर लग जायँ—यह तो सदा ही वाञ्छनीय है। तुम्हारे सभी पत्रोंमें तुम्हारे हृदयके पवित्र उद्गार रहते हैं—उनमें जो दैन्य तथा समर्पणकी भावना होती है वह मुझे बड़ी ही प्रिय लगती है। समर्पणमें दो बातें प्रधान होती हैं—सर्वथा अनुकूल आचरण एवं उसीमें पूर्ण संतोष। बस, यही उसका स्वभाव होता है। इसीमें वह समर्पणकारी नित्य आनन्दमग्न रहता है। तुम्हारे अंदर इन भावोंका विकास हो रहा है यह बड़े ही शुभ लक्षण हैं।

बड़े भावसे लोग बाहरसे आते हैं और घंटों-घंटों प्रतीक्षा करके निराश लौट जाते हैं—मैं उनसे मिल नहीं पाता। पीछे जब पता लगता है, तब बड़ा दुःख होता है पर मैं कछ कर नहीं पाता। सत्संग भी अधिकतर बंद रहता है। तुम तो जान गयी हो, पर ऐसी मेरी अवस्थामें उनका मन कैसे लगेगा, उनको कैसे संतोष होगा। यह विचारणीय है। मैं चाहता हूँ—सबका सम्मान करूँ? अपने व्यवहारसे सबको सुख पहुँचाऊँ, पर मैं स्वयं निरूपाय

हो जाता हूँ।

..... की भी इच्छा सब कुछ छोड़कर गोरखपुर मेरे पास रहनेकी होती है। यह उनकी बड़ी सद् इच्छा है। पर उनको कितना काम है, कितनी उनपर जिम्मेवारी है इसको वे ही जानते हैं—हमलोग तो उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। भगवान् कृपा करके उनको अपनी ओर खींचें—यह तो वांछनीय है ही। मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। शेष भगवत्कृपा।

---

(१६)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ४। १०। ६८

तुम्हारा ३० ता०का पत्र अभी मिला। दिनमें दिमाग खराब था। इससे अभी संध्याको डाक देख रहा हूँ। तुम्हारी भावुकता विलक्षण है। कभी किसी बातको लेकर अत्यन्त सुखी हो जाती हो कभी किसी बातका कुछ भी अर्थ लगाकर अत्यन्त व्यथित हो जाती हो। यह सत्य है कि मनुष्यको अपनी प्रशंसा सुनकर दुःख होना चाहिये और निन्दा सुनकर सुख। यह साधनाका गुण है। पर तुम्हें न तो मान, बड़ाई, प्रशंसाकी चाह करनी चाहिये, न अपमान निन्दा तिरस्कार की। यह सब भगवान्‌पर छोड़कर भगवान्‌के मनके अनुकूल सदा रहना चाहिये। वे बड़ाई करें या निन्दा। जो मन चाहे सो दें। समर्पण कर चुकनेपर उनकी चीज है। बड़ाई या निन्दा—कुछ भी अपने मनसे अपने लिये चाह करना अपनेको स्वतंत्र मानना जैसा होता है। समर्पणकारी तो नित्य भगवत्परतंत्र है और उसकी यह स्थिति सहज स्वाभाविक होती है—परतन्त्रताका वह पालन नहीं करता—स्वाभाविक होती है—बिना प्रयासके—सदा संतुष्ट रखनेवाली। तुम इस बातको सोचो और इसे पूर्णरूपसे ग्रहण करो।

कल शरदपूर्णिमा है। तुम्हारे यहाँ उत्सवका आयोजन है ही। इस पत्रके पहुंचनेके पहले ही वह सम्पन्न हो गया होगा। तुम्हारी भावना, विश्वास तथा इच्छाके अनुरूप तुमको तथा औरोंको भी भगवत्कृपाके अनुभव हुए होंगे। तुम खूब प्रसन्न रहो। शेष भगवत्कृपा। सावित्रीकी माँके आशीर्वाद।

मैं कभी जानबूझकर असत्य नहीं बोलता। बड़ाई करता हूँ तो सत्य—जैसा अनुभव कहता हूँ, वैसा ही कहता हूँ। मिथ्या-बनावटी नहीं कहता। निन्दा—किसीके निन्दनीय कार्यका अनुभव होनेपर भी सदाचारकी

प्रेरणासे करना नहीं चाहता, पर यदि कहीं करता हूँ तो वह भी सत्य ही करता हूँ। यह विश्वास रखो। मैंने जो कुछ लिखा था वह सत्य था। मैं कभी-कभी संकोच होनेके कारण तुम्हारे दोष बतलाकर तुम्हारी निन्दा भी किया करता हूँ। तुम्हें दोनोंमें ही समान प्रसन्न होना चाहिये। हर्षित-व्यथित नहीं।

---

(१७)

गीताप्रेस, गोरखपुर, ६। १०। ६८

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा २। १०। ६८ का पत्र कल मिला। कल शरद्पूर्णिमाका कार्यक्रम तुम्हारे यहाँ सानन्द सम्पन्न हुआ होगा। भावानुसार अनुभव भी अवश्य होना चाहिये। भगवान्के यहाँ सब कुछ ठीक होता है। भाव जैसा होता है, ठीक वैसी ही अनुभूति भगवान् कराते हैं। तुम सदा-सर्वदाके लिये सब कुछ भूलकर अपने भगवान्की विशुद्ध त्यागमयी सच्ची सेविका बनना चाहती हो सो तुम्हारी यह इच्छा बड़ी मंगलमयी है। भगवान् नित्य हैं। इस शरीरमें ही सीमित नहीं हैं। तुम सदाके लिये—अनन्तकालके लिये भगवान्की नित्य सेवाका सौभाग्य प्राप्त कर सकती हो, यदि तुम्हारा यही विशुद्ध मनोरथ हो।

विरहके पदोंका तुम्हारे हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ा, सो बहुत अच्छे लक्षण हैं। भगवान्की कृपा माननी चाहिये।

तुम्हारे घरवालोंका आकर्षण बढ़ रहा है। मुझे कलकत्ते बुलाना चाहते हैं सो यह उनकी कृपा है। यह सब तुम्हारे सद्भावका परिणाम है। पर प्रथम तो मेरा जाना ही बड़ा कठिन है, दूसरे इस बार तो मैं गया था, तब दिनभर चेतना रहती थी इससे सभीसे मिलना-जुलना तथा आवश्यक स्थानोंपर जाना भी हो जाता था। इस समय तो स्थिति ही बड़ी विचित्र है। दिनभरमें अधिक समय बाहरी चेतनासे रहित बीतता है; लगातार घंटोंतक और जब चेतना रहती है तब भी जल्दी-जल्दी बीच-बीचमें थोड़े-थोड़े समयके लिये चेतना जाती रहती है। यहाँ सत्संग प्रायः बंद-सा है। बेचारे मिलनेवाले आकर लौट जाते हैं। टेलीफोनपर कई दिनोंतक बात नहीं हो पाती। मेरे साथी लोग बात नहीं करवाते, सो बात नहीं है। वे बेचारे प्रयत्न करते हैं, पर मैं बात करने लायक स्थितिमें ही नहीं रहता, तब वे क्या करें।

इस अवस्थामें कहीं जाना-आना न तो सुविधाजनक है, न लाभदायक ही।

यहाँकि आवश्यक कार्योंमें नहीं आ पाता। उस दिन देवरिया कालेजमें एक कार्यक्रम था। बेचारोंने पूछकर मेरा नाम छाप दिया था। बाहरके बहुत बड़े-बड़े लोग आये थे पर मैं नहीं जा पाया। पाँच-छः दिन पहले हिन्दू विश्व परिषदके श्रीआप्टे महोदय आये थे। बड़े विद्वान् तथा सम्मान्य पुरुष हैं। उनके कार्यक्रममें जाना आवश्यक था, उसमें तो जा ही नहीं पाया। बेचारे नीचे आकर दो-तीन घंटे बैठकर चले गये। मैं मिल ही नहीं पाया। उसी दिन उनको जाना था। अभी तीन दिन पहले कुष्ठाश्रमका वार्षिक अधिवेशन था। मैं नहीं जा पाया। कल ..... के आँखका आपरेशन था। बेचारे बहुत कह गये थे पर समयपर मैं चेतना रहित हो गया। यह हाल है। दूसरे, आजकल मुझे आदमी नहीं सुहाते। आदमियोंको देखते ही वृत्ति संसारको छोड़ने लगती है। रात्रिको यहाँ शरद् पूर्णिमाका कार्यक्रम था। मैं ११:३० बजे रातको तो मुश्किलसे नीचे गया और जाकर भी वहाँ कुछ भी बोल नहीं पाया। एक तरहसे मैं अब कामका आदमी रहा ही नहीं। प्रेसवाले बेचारे फोनपर जरूरी बात पूछना चाहते हैं और निराश रह जाते हैं। तुम प्रसन्न रहना। सावित्रीकी माँके यथायोग्य।

---

(९८)

गीतावाटिका, गोरखपुर, २२। ३। ६९,

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा भाव सदा ही सराहनीय है। तुम जो इतना दैन्य प्रकट करती हो—यह है तो बड़ा गुण ही पर इसमें तुम्हें जो मानस कष्ट होता है, वह ठीक नहीं है। सदा मनमें उल्लास रहना चाहिये। तुम्हारे यहाँ आनेमें मेरे मनमें कोई विरोधभाव जरा भी नहीं है। मैं किसी कारणवश ही—तुम्हें जल्दी आनेसे रोक रहा था। यही बात आज सबेरे फोनपर कही थी। उस समय बहुत लोग बैठे थे। पर तुम्हारे मनमें जरा भी तकलीफ हो तो तुम एक-दो दिनके लिये तुरंत आकर मिल जाओ। मुझे इसमें खुशी ही होगी। तुम्हारे स्वास्थ्यमें कुछ सुधार हुआ होगा। सबेरे तुम्हारा फोन आनेके बादसे ही मेरे मनमें तुम्हारे मानस कष्टकी बात आयी और इसीलिये यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम निःसंकोच आ जाना। लाइन मिली तो फोनसे भी तुम्हें

कहनेका विचार है। मेरा मस्तिष्क तथा स्वास्थ्य दोनों ही आजकल ठीक नहीं है पर मैं वैसे सर्वथा स्वस्थ हूँ। तुम बहुत-बहुत प्रसन्न रहना।

---

(९९)

गीतावाटिका, गोरखपुर, श्रा० शु० १४। २०२६.

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे पत्र मिले। मैंने तुमको पत्र लिखा था। मिला होगा। तुम्हें पत्र न लिखनेमें कोई खास कारण नहीं है। आजकल मेरी वृत्ति बहुत ही उपराम हो रही है। संसारकी बहुत कम स्मृति होती है और संसारकी बातें सुनने-कहने-दिखनेकी प्रवृत्ति ही प्रायः नहीं होती। प्रायः दिनभर बंद कमरेमें रहता हूँ। यहाँ बेचारे जो कोई भी इन दिनोंमें आये। सभी निराश-से होकर गये। मैं किसीसे भी खुलकर समय देकर बातचीत नहीं कर पाता। लोग मेरी स्थितिको समझते नहीं, न मैं समझा सकता हूँ। बेचारे मिलना-बात करना स्वाभाविक ही चाहते हैं। मैं उनकी चाह पूरी कर नहीं पाता। मैं दुःखी नहीं करना चाहता पर कर ही देता हूँ। इसबार कैसे क्या होगा, पता नहीं।

राधाष्टमीपर लोग आते हैं। मैं कोई भी व्यवस्था न देख सकता हूँ, कर तो सकता ही नहीं। जगत्का अभाव है ही। सामनेवाली कोठीमें बहुत कम स्थान खाली है। ..... ने मकान भाड़ेपर दे दिया। अतः किनको, कहाँ, कैसी जगह मिलेगी। मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिये मैं सूचना दिलवा रहा हूँ कि लोगोंको समझ-बूझकर ही आना चाहिये।

यह जगत्-प्रपञ्च सर्वथा मिथ्या है और सच माननेपर निरन्तर दुःखदायी है। हमलोग व्यर्थ ही इसमें आशा-आसक्ति करके, ममताका सम्बन्ध जोड़कर फँसे हुए हैं और जीवनके अमूल्य क्षणोंको बरबाद कर रहे हैं। पता नहीं किस क्षण मृत्यु हो जाय। यहाँ तो धर्मशालाका या रेलके डिब्बेका निवास है। सब मिथ्या सम्बन्ध है। एक-एक पल भगवान्की स्मृतिमें बीतना चाहिये। यहाँ तो जो कुछ होना है, हुआ करे। इससे वास्तवमें हमारा सम्बन्ध नहीं है पर सम्बन्ध जोड़ रखा है। इसलिये दुःख पर दुःख, मृत्यु पर मृत्यु, जन्म पर जन्म-भोग करना पड़ता है। कितना बड़ा प्रमाद है।

इस समय होशमें यह पत्र लिख रहा हूँ। दिनमें तो प्रायः गड़बड़ी

रहती है। न पूछ पाता हूँ, न कह ही पाता हूँ। तुम स्वस्थ होओगी। मेरी भूलोंको क्षमा करती रहना।

---

(१००)

गीतावाटिका, गोरखपुर, कार्तिक कृष्ण १४। २०२६

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे दो पत्र मिले। तुम्हारा चित्त प्रसन्न है। सो आनन्दकी बात है। सदा खूब प्रसन्न ही रहना चाहिये। भगवान्‌की कृपा अनवरत बरस रही है, उसमें कभी कमी नहीं होती, रुकावट तो होती ही नहीं, विश्वासकी कमीसे ही मनुष्य उससे वंचित रह जाता है। तुम्हें "भगवान्‌की कृपापर तथा उनकी मङ्गलमयतापर पूर्ण दृढ़ताके साथ विश्वास है, इसमें जरा भी संदेह नहीं है।" तुम्हारे इन शब्दोंको पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। क्योंकि यह विश्वास हो जानेपर 'चिन्ता, भय, विषाद, दुःख' कभी होते ही नहीं।

भगवान् निश्चय ही दीनबन्धु, पतितपावन, सर्वसुहृद हैं। पर वे सर्वज्ञ, सर्वकल्याणमय तथा सर्वशक्तिमान हैं। अतएव वे हमारे मनकी बात (यदि वह हमारे लिये परिणाममें बुरा फल उत्पन्न करनेवाली है) नहीं करेंगे। हम अल्पज्ञ हैं, नहीं जानते पर वे सर्वज्ञ हैं सब जानते हैं—इसलिये वही करते हैं जिसमें यथार्थतः दीनका दैन्य मिट जाय, पतित स्वयं पावन हो जाय, दुःखका बीज ही नष्ट हो जाय। चाहे उनका वह विधान हमारी अल्पज्ञतासे हमें विपरीत ही लगे। वे उसकी परवाह नहीं करते। उनकी परिणाम सुखमयी कृपा कभी कभी बड़े कठोर विधानके रूपमें आती है। पर निश्चय ही वह विधान है परम मङ्गलमय। अतएव उनकी कृपा तथा विधानकी मंगलमयतापर विश्वास हो जानेपर अपने मनकी कुछ रहती ही नहीं। इसलिये न अनुकूलताका सुख रहता है, न प्रतिकूलताका दुःख। एक परम आनन्दमयी अनुभूति रहती है, जो निरन्तर उनकी कृपासुधा धारासे सिंचित होकर बहती रहती है।

तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। मेरा स्वास्थ्य साधारण ठीक है। अभी कमजोरी तथा कुछ घटा हुआ मन्द ज्वर तो रहता ही है, कोई खास बात नहीं है। तुम प्रसन्न रहना। घरमें सबसे यथायोग्य।

---

(१०१)

गोयन्दकाटिकर, गोरखपुर, २० । ११ । ६९

सप्रेम हरिस्मरण। आज तुमसे नवंबर फोनपर बात हुई। तुम्हारे १६ तारीख तकके लिखे कई पत्र भी मिल चुके हैं। इधर दिमाग ज्यादा खराब रहा तथा कुछ कामकाजका झंझट विशेष रहा, इससे पत्र नहीं लिख पाया। कोई विचार मत करना। मेरा शरीर अभी प्रायः वैसा ही है। कमजोरी है ही तथा बुखार भी रहता है। वैसे मैं सदा स्वस्थ, प्रसन्न हूँ।

..... के पत्र आये थे। मैं उनका भी उत्तर नहीं लिख पाया। हो सका तो आजकलमें लिखूँगा। उनके झंझट बढ़ रहा है और वे दुःखी हैं। सो ठीक ही है। उनकी तो वर्तमान परिस्थिति ऐसी ही हो रही है। पर तुम बताओ यहाँ सुखी कौन है?

जगत् बना है प्रकृतिके क्षोभसे—प्रकृतिकी अशान्त स्थितिसे। विपत्ति-दुःख, वियोग-विनाश, जरा-मृत्यु, प्रतिकूलता-अभाव आदि संसारकी नित्य घटना है। उसका स्वरूप ही ऐसा है। सम्राटसे लेकर भिखारी तक कोई भी संसारसे शांति-सुख नहीं पा सकते। एक-न-एक अशान्ति दुःख बना ही रहेगा। पाण्डवोंने भगवान्‌को सखारूपमें प्राप्त किया था। वे उनके साथ भी साक्षात् रूपसे रहे, पर सांसारिक दृष्टिसे पाण्डवोंका दुःख कभी दूर नहीं हुआ। हाँ, उन्होंने दुःखमें-विपत्तिमें भगवान्‌का संस्पर्श प्राप्त किया। इसीसे कुंती देवीने भगवान्‌से वरदान माँगा कि हम लोगोंको तो आप बराबर विपत्ति ही दीजिये, जिससे आपके दर्शन होते रहें।

पण्डितजीके साथ भेजा प्रसाद पहुँचा होगा। प्रसाद मैंने स्वयं भगवान्‌के भोग लगाकर दिया था। पण्डितजी बड़े ही भले पुरुष हैं।

तुम्हारा मन भगवान्‌में नित्य लगा रहे, तुम सदा सर्वदा भगवान्‌को अपने साथ-अपने पास अनुभव करती रहो। उनकी मधुर स्मृतिके आनन्द-समुद्रमें डुबकियाँ लगाती रहो। यही करना चाहिये। तुम अनन्यमनसे चाहोगी तो हो जायगा। ..... से मेरा राम-राम सप्रेम कहना तथा ..... से भी कहना। मैं इन सभीको समय मिलनेपर पत्र लिखूँगा।

तुम्हारे घरमें सब प्रसन्न होंगे। सबसे हरिस्मरण। तुम बहुत-बहुत प्रसन्न रहना। शेष भगवत्कृपा।

(१०२)

गीतावाटिका, गोरखपुर, १०। ७। ७०

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। मुझे तुम्हारे समर्पणके भाव, विचार वास्तवमें बहुत अच्छे लगते हैं। तभी मैं अच्छे बनाता हूँ। तुम्हें खुश करनेके लिये झूटी बात नहीं कहता। उनमें जो कमी है, सो भी बतलाया करता हूँ। मनके प्रतिकूल-अनुकूल दोनोंमें समान अनुकूलता रहनी चाहिये। सो पूरी हो जायेगी।

तुमने गुरुपूर्णिमापर आनेका मन लिखा सो यहाँ कौन गुरु हैं? गुरु पूर्णिमाको तो गुरुके पास जाना चाहिये। कोई सन्यासी महात्मा हों, बड़े आचार्य हों जिनमें गुरुत्व हो और जिनसे दीक्षा ली हो, वे गुरु होते हैं। यहाँ तो न ऐसा कोई गुरु है, न कोई आश्रम है। भगवद्भावकी बात है—उसके लिये तो रासपूर्णिमा होती है, गुरुपूर्णिमा नहीं। भगवान्‌की श्रीकृष्णका पवित्रतम प्रेम जिससे प्राप्त हो वही करना चाहिये।

अतएव अभी यहाँ न आकर भादपद लगनेपर ही आना चाहिये फिर श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीराधाष्टमी, श्रीरासपूर्णिमा—सभी श्रीकृष्णप्रेमके साधन महोत्सव हैं।

मेरा स्वास्थ्य कुछ ठीक है। सावित्रीकी माँका कुछ गड़बड़ है। ब्लडप्रेशर बढ़ा है। शेष भगवत्कृपा।

(१०३)

गीतावाटिका, गोरखपुर, ज्येष्ठ शु० १५। २०२७

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे १५ तथा १६ के दोनों पत्र मिले। मेरा स्वास्थ्य वैसे ही ठीक चल रहा है। ..... ने आपरेशन करानेपर जोर दिया तथा कलकत्तेसे डाक्टर भेजनेकी बात कही सो उनकी कृपा एवं प्रीति है। इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। पर कई कारणोंसे जहाँ तक संभव हो, आपरेशन करानेका विचार नहीं है। दवा हो रही है। भगवान्‌का मंगल विधान कभी टल नहीं सकता। उनसे मेरा सादर सप्रेम हरिस्मरण कहना। मैं तो उनके प्रेमका ऋणी हूँ, जो वे मेरे लिये इतनी चिन्ता करते हैं।

मेरा दिमाग आजकल कुछ ऐसा खराब हो गया है कि जगत्‌की बात सोचना ही नहीं चाहता। लोग बेचारे मेरे प्रति प्रेमके कारण आते हैं और वे

वही बात भी करना चाहते हैं जो उनके दिमागमें है। मेरे दिमागकी खराबीके कारण वृत्ति उसे सुनना नहीं चाहती और वह जगत्‌को सर्वथा छोड़कर स्वयं भी विलीन हो जाती है। मैं बात नहीं कर पाता। इससे लोगोंको असंतोष होता है पर मैं क्या करूँ? आजकल तो बहुत समय यही स्थिति रहती है, यद्यपि मैं इसे छिपाना चाहता हूँ। इस समय बाहरके सब लोग चले गये हैं। दिनभर बड़ी शान्ति रहती है। दरवाजा बंद रखता हूँ और आरामसे रहता हूँ।

कलम यहाँ है ही। उसके लिये बार-बार क्या लिखना है।

(१०४)

गीतावाटिका, गोरखपुर, आ०कृ० ८। २०२७

सप्रेम हरिस्मरण। तुमसे उस दिन फोनपर बातचीत हुई। तुम्हारा पत्र भी मिल गया। ..... का देहावसान हो गया। तुम पहलेसे पहुँच गयी यह संयोगकी बात है। ..... का देहान्त कब (तारीखवार समय), कहाँ (स्थान) हुआ? तथा उनका दाह संस्कार किस घाटपर किसदिन कितने बजे हुआ और उनका गोत्र क्या है? यह सब तुमने लिख दिया होगा। न लिखा हो तो लिख देना। तुम्हारा पत्र मिलनेपर पता लगानेका प्रयत्न किया जायेगा कि वह जीवात्मा कहाँ, किस स्थितिमें है। पता लग ही जायेगा—यह निश्चय नहीं है। किसीकी मुक्ति कराना मेरे हाथकी बात नहीं है। यह तो उसके अपने साधन, भजन तथा भावपर निर्भर है। उनके लिये 'भागवत सप्ताह पाठ' अवश्य कराना चाहिये।

मेरा स्वास्थ्य कुछ ठीक है। कुछ ताकत भी बढ़ी है। आजकल यहाँ बाहरका कोई न होनेसे बहुत आराम है। अधिक समय एकान्त बंद कमरेमें ही रहता हूँ। बड़ी शान्तिसे समयका सदुपयोग होता है तुम स्वस्थ और सानन्द होगी। घरमें सब प्रसन्न होंगे। सबसे मेरा सादर यथायोग्य।

मंगलवारको यहाँसे कारमें ..... इलाहाबादके लिये गये थे। रास्तेमें भयानक एक्सीडेंट हो गया। कार एकदम टूट गयी। ..... का समाचार आज आया है—किसीको भी, जरा भी चोट नहीं लगी। भगवत्कृपाका ही यह आश्चर्य है। मनुष्यको अपनी जानमें कभी बुरी बात नहीं सोचनी चाहिये न जरा भी बुरा काम करना चाहिये। कब क्या फल होगा—यह तो भगवान्‌के हाथ है। फलमें मनुष्य सर्वथा पराधीन है। कर्ममें स्वतंत्र है। शेष भगवत्कृपा।

(१०५)

गीतावाटिका, गोरखपुर, ७। १। ७१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे पाँच-छः पत्र मिल गये। टेलीफोनपर भी बात हुई। मेरे तुमको तीन ही पत्र मिले। मैंने अबतक छः पत्र लिखे थे। कैसे नहीं पहुँचे, पता नहीं। आजकल बहुत गड़बड़ी हो रही है। तुम्हारे पत्रोंमें तुम्हारे स्नेह, समर्पण, पवित्र भाव तथा त्यागके जो सुन्दर समाचार होते हैं, उन्हें पढ़कर बड़ा आनन्द होता है। देखो! शरीर क्षणभंगुर है, कब चला जाय—पता नहीं; इसलिये जो कुछ भी यहाँ हो, उससे मनमें हर्ष-उद्वेग न करके निरन्तर भगवान्‌का मंगलमय स्मरण तथा अपनेको सब प्रकारसे केवल भगवान्‌के ही समर्पणकर रखना चाहिये। प्रत्येक परिस्थितिमें उनकी मंगल समीपताका अनुभव करना चाहिये। उनकी जितनी और जैसी कृपा तथा प्रीति हमपर है उसकी कोई तुलना नहीं है। उसपर विश्वास तथा उसका नित्य अनुभव करके सदा आनन्द मुग्ध रहना चाहिये।

सावित्रीकी माँके सस्नेह यथायोग्य। तुम्हारी याद वह सदा किया करती है और सब लोग प्रसन्न हैं। .....१२ तारीख को .....के लड़केके विवाहमें शामिल होनेके लिये हैदराबाद जा रहा है।

---

(१०६)

गीतावाटिका, गोरखपुर, १२। १। ७१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे भावुकतापूर्ण सुन्दर कई पत्र मिले। इधर ५-६ दिनोंमें मेरे पेटमें हल्का-सा दर्द रहने लगा तथा वायु भी ज्यादा भरने लगी। इसीसे मैं पत्र नहीं लिख पाया। अब कुछ ठीक है।

तुम्हारे भाव-विचार तथा पूर्ण-समर्पणकी इच्छा बहुत ही उत्तम तथा सुन्दर है। भगवान्‌की कृपासे ही ऐसे सद्विचारोंका उदय हुआ करता है। प्रेमके मंगल साम्राज्यमें जितना ही प्रेम विशुद्ध होता है उतना ही समर्पण अधिक शीघ्र तथा निर्मल होता है, उतना ही त्याग अधिक होता है और उतनी ही स्वसुखकी कामनाका नाश होकर चित्तमें पवित्र शान्ति तथा द्वन्द्वातीत भगवदीय आनन्दकी प्राप्ति तथा विशेष अनुभूति होती है। तभी उसके सारे विचार, सारे कार्य केवल भगवत्कार्य होते हैं। इसीको भगवान्‌ने गीतामें

'मत्कर्म कृत्' कहा है। उसका अपने लिये तो क्या अपना ही कोई कार्य— नहीं होता। भगवान् ही उसके माध्यमसे अपना कार्य, अपनी लीला स्वच्छन्दतासे किया करते हैं। तुम ऐसी ही बननेकी क्रमशः तीव्र और अनन्य इच्छा करो। यही लक्ष्य बनाकर चलो। भगवान्‌की कृपासे अवश्य सफलता मिलेगी। विशुद्ध प्रेमकी स्थितिका प्रबल मनोरथ होनेपर प्रेमास्पद भगवान् उसे स्वयं शीघ्र पूर्ण करते और अपना ही प्रेम देकर स्वयं ही उसका रसास्वादन किया करते हैं।

तुम्हें तीन-चार दिन बहुत आनन्दकी अनुभूति हुई। अब वैसी नहीं हो रही है, सो भगवान्‌की कृपाके बलपर तीव्र चाहके साथ फिर चेष्टा करो, अनुभूति होगी। क्योंकि भगवान् भी स्वयं ही यह चाहते हैं।

सावित्रीकी माँने तुमको यथायोग्य लिखवाया है। शेष भगवत्कृपा।

---

(१०७)

गीतवाटिका, गोरखपुर, २६। १। ७१,

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे २०, २१, २२ के तीन पत्र मिले। फिर फोनपर बात हुई। तुम्हें मेरे स्वास्थ्यकी बहुत चिन्ता है। सो तो स्वाभाविक ही है। जहाँ स्नेह होता है वहाँ चिन्ता होती ही है। पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। परम मंगलमय भगवान्‌का प्रत्येक विधान मङ्गलपूर्ण होता है। उन मङ्गलमय भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये। शरीर तो विनाशी है ही। जैसे जन्म स्वाभाविक है, वैसे ही मृत्यु भी स्वाभाविक है। भगवान्‌के सौहार्द पर विश्वास रखना चाहिये।

तुमने २२ तारीखके पत्रोंमें 'विशेष आनन्दका अनुभव' होनेकी बात लिखी सो बड़े ही हर्षकी बात है। तुम्हारा भाव हो तो ऐसा विशेष आनन्द तथा इससे भी और विशेष आनन्द सदा सर्वदा प्राप्त हो सकता है।

तुम्हारे समर्पणके भाव बहुत सुन्दर हैं। मन यदि भगवान्‌के पूर्ण समर्पण हो जाय तो फिर मनके हर्ष-विषाद रहते ही नहीं; भगवान् ही भरे रहते हैं और यदि कहीं कोई हर्ष-विषाद होता है तो उन्हींकी अनिच्छामयी इच्छासे होता है और उसका अनुभव भी उन्हींको होता है। यह सत्य है।

सावित्रीकी माँका स्वास्थ्य भी तीन दिन बहुत खराब रहा। कलसे

कुछ ठीक है और सब राजी-खुशी हैं। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। प्रिय ..... प्रसन्न होंगे। घरमें सब प्रसन्न होंगे। सबसे मेरा सस्नेह यथायोग्य कहना। शेष भगवत्कृपा।

---

(१०८)

गीतावाटिका, गोरखपुर, ३१। १। ७१

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे तीन पत्र मिले। ..... के साथ भेजी हुई सब चीजें मिलीं। पपीते थे तो बहुत अच्छे पर पके होनेके कारण पिच गये थे। अंगूर मैं रोज लेता हूँ। मेरा स्वास्थ्य वैसा ही चल रहा है। पेटमें दर्द हल्का, खूब आफरा सदा बना रहता है। एनिमाके बिना दस्त तो होता ही नहीं, कमजोरी काफी है। प्रायः लेटे ही रहना पड़ता है। तुम चिन्ता मत करना।

वास्तवमें यह सर्वथा सत्य है कि जहाँ अन्तरंग प्रेमजनित आत्मीयता होती है वहाँ संकोचरहित व्यवहार होता है। उसमें बाहरी कड़े-मीठेका ख्याल नहीं किया जाता। जहाँ बाहरी सभ्यताके नाते व्यवहार होता है वहाँ कड़े-मीठेका ध्यान रहता है और देख-देखकर मीठा व्यवहार किया जाता है। पर वह नकली-सा होता है। प्रेमके कड़े-से-कड़े व्यवहारमें भी अमृत रहता है और दिखावेके बहुत मीठे व्यवहारमें कुछ नहीं रहता। इसीलिये सच्चे प्रेमीजन प्रेमास्पदका प्रेम चाहते हैं, बाहरी व्यवहार नहीं। वे हर हालमें प्रेमास्पदके सुखमें सुखी, उनकी रुचिमें रुचिवान और उनकी मूक इच्छाका अनुसरण करते हैं और उसमें आनन्दका अनुभव करते हैं चाहे बाहरसे उसका रूप कैसा ही कठोर-से-कठोर हो। प्रेमके पवित्र क्षेत्रमें प्रेमीजन इसी स्वभावके होते हैं। निर्दोष गर्भवती सीताको रामने जङ्गलमें अकेली छुड़वा दिया पर सीताने रामकी रुचि जानकर उसीमें सुख माना।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। घरमें सब प्रसन्न होंगे। सबसे मेरा सादर सस्नेह यथायोग्य।

वसन्तपञ्चमीको भगवान्‌के चढ़ाई हुई गुलाल जरा-सी एक पुड़िया मैं भेज रहा हूँ। शेष भगवत्कृपा।

अन्तरंग उद्गार

जगत्‌के सारे काम नाट्यमञ्चपर अभिनय करनेवाले अभिनेताकी भाँति केवल खेलके रूपमें ही करना। कहीं भी आसक्ति-ममता न रखना। जहाँ जैसा कर्म करना उचित हो, वहाँ वैसा ही अच्छी तरह करना परन्तु सदा खेल बुद्धि ही रखना।

जगत्‌के प्राणी-पदार्थोंसे आशा न रखना। जगत्‌की आशा रखनेवाला कभी सुखी नहीं होता।

मान कभी नहीं चाहना, पर मान देना। मान चाहनेवालेको पद-पदपर अपमानका भय और अपमानकी अनुभूतिसे दुःख होता रहता है।

दूसरोंसे वही बर्ताव करना, जैसा हम दूसरोंसे चाहते हैं। हम जैसा बर्ताव करेंगे, बदलेमें हमें वही अनन्त रूपमें मिलेगा।

सभीके साथ सम्मान, सत्य, प्रेम तथा हितका बर्ताव करना।

घरमें अतिथिकी तरह रहना, मालिककी तरह नहीं।

सबमें भगवान्‌को देखकर यथायोग्य बर्ताव तो करना परंतु किसीका तिरस्कार कभी न करना। न किसीमें मोह करना।

जगत्‌के भोग सुखरहित, दुःखोंके घर तथा दुःखोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं, यह जानकर उनमें प्रीति कभी न करना।

अपने पास जो कुछ है सो भगवान्‌का है, यह समझकर उसे यथायोग्य अहंकाररहित होकर आदरके साथ भगवान्‌की सेवामें लगाते रहना।

अपना कोई अनिष्ट होता है तो वह अपने प्रारब्धसे ही होता है दूसरा उसमें निमित्त भले ही बने। अतएव दूसरेके द्वारा अपना कभी बुरा होता दीखे तो उसपर क्रोध न करके दया करना, क्योंकि वह अज्ञानवश हमारा बुरा करने जाकर अपना ही बुरा कर रहा है।

किसी दूसरेका बुरा कभी न करना। किसी समय दूसरेको जरा भी बुरा करनेकी मनमें आवे तो यह विचार करना, इसका तो बुरा तभी होगा जब इसके प्रारब्धानुसार होना होगा। पर हमारा बुरा तो इसका बुरा सोचते ही अवश्य हो जायगा।

मानव शरीर भोगोंके लिये नहीं है। केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही है। यह निश्चय रखना और भजनमें लगे रहना।

जीभसे भगवान्‌के नामका जप, मनसे उनके नामरूपका चिन्तन तथा शरीरसे होनेवाले हरेक काममें भगवत्पूजाकी भावना करना।

समयको अत्यन्त मूल्यवान समझकर एक-एक क्षणको भगवत्स्मरणमें लगाना तथा भगवत्स्मरण करते ही सेवाके भावसे उचित कर्म करना।

शरीरपर घरवालोंका अधिकार है, इसलिये शरीरको घरके लोगोंके अधीन रखना, पर मनको तो सर्वथा भगवान्‌में ही लगाये रखना।

भगवान्‌की जरा-सी भी विस्मृतिमें भयानक व्याकुलता होना जैसे श्वास रुक जानेपर होती है।

खानपान शयन सभी कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करना। खानपानमें शुद्धि रखना परन्तु घृणा, द्वेष किसीसे न करना। अभक्ष्य-भक्षण तथा अपेय

पानका सर्वथा त्याग करना।

किसी भी जीवका कभी तिरस्कार न करना। स्वयं अमानी रहकर सबका सत्कार करना।

भोगोंकी कामना ही जलानेवाली है, इसलिये भोगकामनाका सदा त्याग करना। भोगोंकी प्राप्तिसे कामनाकी आग बुझती नहीं, यह जानकर कामनाका नाश ही करना चाहिये।

भगवान्‌को परम सुहृद् मानते ही शान्ति मिल जाती है।

ममता केवल भगवच्चरणोंमें ही होनी चाहिये। बुरे संगका सर्वथा त्याग करना उचित है।

दूसरेकी निन्दा न करना, न किसीका दोष देखना।

सदा सर्वदा अपनेको भगवान्‌के हाथकी कठपुतली समझना। वे जब जो कुछ करवावें, वह करते रहना।

भगवान्‌के प्रेमकी भूख सदा ही बनी रहनी तथा बढ़ती रहनी चाहिये।

संसारकी भोगासक्तिके कारण नये-नये सांसारिक संकल्प तरंगोंकी तरह मनमें उठते रहते हैं, फिर वे समुद्र बनकर हमें डुबो देते हैं अतः सांसारिक संकल्प कम-से-कम उठें, यह उपाय करना है। और वह उपाय है बार-बार भगवत्सम्बन्धी संकल्पोंको उठानेका प्रयास करते रहना।

भगवच्चिन्तनमें ही परम लाभ है, भगवच्चिन्तन ही परम पुण्य, अमूल्यसम्पत्ति, परम सौभाग्य और परम बुद्धिमत्ता है।

'रस-सिद्ध संत श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी जीवन झाँकी'

भगवान्‌के 'विशेष कार्य' हेतु १७ सितम्बर १८९२ ई०, दिन शनिवारको आपका जन्म शिलांगमें हुआ। कुल देवता श्रीहनुमानजीकी कृपासे जन्म होनेके कारण आपका नाम 'हनुमानप्रसाद' पड़ा। युवावस्थामें देश-सेवा—समाजसेवाकी प्रवृत्ति प्रबल होनेके कारण स्वदेशी आन्दोलनमें शुद्ध खादी प्रयोगका व्रत ले लिया। आपके क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण शिमलापालमें २१ माह तक नजरबन्द किया गया। बंगालके क्रान्तिकारियों अरविन्द घोष आदिसे आपका निकट सम्पर्क हुआ। १९१८ में आप बम्बई आ गये। वहाँ लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, पं०मदनमोहन मालवीय, संगीताचार्य विष्णु दिगम्बरजीसे घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। सभीके द्वारा प्रेमपूर्वक आपको भाई सम्बोधन करनेके कारण आपका उपनाम 'भाईजी' पड़ गया।

भगवन्नामनिष्ठाके फलस्वरूप वनवेशधारी भगवान् सीतारामके दर्शन हुये तदनन्तर पारसी प्रेतसे साक्षात् वार्तालापके परवर्तीकालमें अनेक दिव्यलोकोंसे सम्पर्क स्थापित किये। सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिका 'कल्याण' के १९२६ ई०में प्रकाशन प्रारम्भ होनेपर उसके सम्पादनका गुरुतर दायित्व आपने सफलतापूर्वक निर्वाह किया और अपने भगीरथ प्रयत्नोंसे उसे शिखरपर पहुँचाया।

श्रीभाईजीमें अपने यश प्रचारका लेश भी नहीं था। इसी कारण उन्होंने 'रायबहादुर', 'सर' एवं 'भारतरत्न' जैसी राजकीय उपाधियोंके प्रस्तावको नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा उनकी अमूल्य हिन्दी-सेवाके सम्मानार्थ प्रदत्त 'साहित्य—वाचस्पति' की उपाधिका अपने नामके साथ कभी प्रयोग नहीं किया। हालाँकि भाईजीकी शिक्षा पारिवारिक, पारम्परिक ही रही लेकिन यह चमत्कार है कि कई भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार था। उनके द्वारा हिन्दी साहित्यको मौलिक शब्दोंका नया भण्डार मिला। उनकी गद्य-पद्यात्मक रचनायें अपने विषयकी पोलकी पत्थर हैं। पोद्दारजीके

प्रमुख काव्य 'पद-रत्नाकर' की कुल पंक्तियाँ १९६७० है जो गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस, विनय पत्रिका और गीतावलीकी कुल पंक्तियाँ क्रमशः १२५८२, ३२२२ और ३४०२ के योग १९२०५ से अधिक है। इसके अतिरिक्त उनके गद्य साहित्यका विपुल भण्डार है। इनकी ९० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिसमें 'राधा-माधव-चिन्तन' प्रमुख है। उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण'के ४४ विशेषांक अपने विषयके विश्वकोष हैं। हमारे आर्ष ग्रन्थोंको विपुल मात्रामें प्रकाशित करके विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचा दिये जिससे वे सुदीर्घ कालके लिये सुरक्षित हो गये। हिन्दी और सनातन धर्मकी उनकी सेवा युगोंतक लोगोंके लिये प्रेरणास्रोत रहेगी।

भगवद्दर्शनकी प्रबलोत्कण्ठा होनेपर १९२७ ई० में भगवान् विष्णुने दर्शन देकर उन्हें प्रवृत्तिमार्गमें रहते हुये भगवद्भक्ति तथा भगवन्नाम प्रचारका आदेश दिया। क्रमशः दिव्यलोकोंसे सम्पर्कके साथ ही अलक्षित रहकर विश्वभरके आध्यात्मिक गतिविधियोंके नियामक एवं संचालक दिव्य संत-मण्डलमें अन्तर्निवेश हो गया। कृपाशक्तिपर पूर्णतया निर्भर भक्तपर रीझकर भगवान्‌ने समय-समयपर उन्हें श्रीराम, शक्ति, शिव, गीतावक्ता श्रीकृष्ण, श्रीव्रजराजकुमार एवं श्रीराधाकृष्ण दिव्य युगलरूपमें दर्शन देकर तथा अपने स्वरूप तत्त्वका बोध कराकर कृतार्थ किया। १९३६ ई० में गीतावाटिकामें प्रेमभक्तिके आचार्य देवर्षि नारद और महर्षि अंगिरासे साक्षात्कार हुआ और उनसे प्रेमोपदेशकी प्राप्ति हुई। अपने ईष्ट आराध्य रसराज श्रीकृष्ण और महाभावरूपा श्रीराधा किशोरीकी भाव साधना, स्वरूप चिंतनसे उनकी एकाकार वृत्ति इष्टके साथ प्रगाढ़ होती गयी और वे रसराजके रस-सिन्धुमें निमग्न रहने लगे। भागवती स्थितिमें स्थित होनेसे उनके स्थूल कलेवरमें श्रीराधाकृष्ण युगल नित्य अवस्थित रहकर उनकी सम्पूर्ण चेष्टाओंका नियन्त्रण-संचालन करने लगे। सनकादि ऋषियोंसे उनके वार्तालाप अब छिपी बात नहीं है।

भगवत्प्रेरणासे भाईजीने अपने जीवनके बाह्यरूपको अत्यन्त साधारण रखते हुये इस स्थितिमें सबके बीच ७८ वर्ष रहे। कुछ श्रद्धालु प्रेमीजनोंको

छोड़कर उनके वास्तविक स्वरूपकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका। जो उनके निकट आये वे अपने भावानुसार इसकी अनुभूति करते रहे। किसीने उन्हें विद्वान् देखा, किसीने सेवा-परायण, किसीने आत्मीय स्नेहदाता, किसीने सुयोग्य सम्पादक, किसीने सच्चा सन्त, किसीने उच्चकोटिका व्रजप्रेमी और किसीको राधा हृदयकी झाँकी उनके अन्दर मिली। यद्यपि किसी संतकी वास्तविक स्थितिका अनुमान लगाना बड़ा कठिन है तथापि भाईजी निर्विवाद रूपसे उस कोटिके सन्त थे जिनके लिये नारदजीने कहा है—'**तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्**'—भगवान् और उनके भक्तोंमें भेदका अभाव होता है।

हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें कठिनता होगी कि बीसवीं सदीके आस्थाहीन युगमें जो कार्य कई संस्थायें मिलकर नहीं कर सकतीं वह कल्पनातीत कार्य एक भाईजीसे कैसे सम्भव हुआ। राधाष्टमी महोत्सवका प्रवर्तन और रसाद्वैत—राधाकृष्णके प्रति नयी दिशा एवं मौलिक चिन्तन इस युगको उनकी महान देन है। उनके द्वारा कितने लोग कल्याण पथपर अग्रसर हुये, वे परमधामके अधिकारी बने इसकी गणना सम्भव नहीं है। महाभाव—रसराजके लीलासिन्धुमें सर्वदालीन रहते हुये २२ मार्च १९७१ को इस धराधामसे अपनी लीलाका संवरण कर लिये।

'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्'

आलोक : विस्तृत जानकारीके लिये गीतावाटिका प्रकाशन, गोरखपुरसे प्रकाशित 'श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति' पुस्तक अवश्य पढ़ें।